खण्ड 1
Block 1

इकाई 1- ज्ञानमीमांसा : अर्थ , कार्य एवं महत्व, ज्ञान और कौशल में अन्तर, शिक्षण तथा प्रशिक्षण में अन्तर, ज्ञान और सूचना में अन्तर तथा तर्क एवं विश्वास में अंतर

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ज्ञानमीमांसा का अर्थ
  1.3.1 ज्ञान क्या है?
  1.3.2 दर्शन और ज्ञानमीमांसा
  1.3.3 सामान्य ज्ञान
1.4 ज्ञानमीमांसा के कार्य
1.5 ज्ञानमीमांसा का महत्व
1.6 ज्ञान और कौशल में अन्तर
1.7 शिक्षण और प्रशिक्षण में अन्तर
1.8 ज्ञान और सूचना में अन्तर
1.9 तर्क और विश्वास में अन्तर
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण और कठिन समस्या ज्ञान से सम्बंधित है। दर्शनशास्त्र की ज्ञानमीमांसीय विधा के अंतर्गत ज्ञान के स्वरुप, संरचना, उद्भव, विकास और ज्ञान की कसौटियों अथवा प्रतिमानों का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाता है। ज्ञानमीमांसीय समस्याएँ अनुभव और बुद्धि के स्वरुप पर अनुशीलन करने से उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप हमारे समक्ष ज्ञान से सम्बंधित कई प्रश्न उठते है-जैसे तुम कैसे जानते हो? अर्थात ज्ञान कैसे संभव है? मानव ज्ञान का स्वरुप क्या है? क्या

जानने के लिए या ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानव मस्तिष्क सक्षम है? क्या हम कोई ऐसा ज्ञान रखते है, जिस पर हम निर्भर करें, या केवल लोकमत या अन्दाजों से ही संतुष्ट रहना चाहिए? क्या हमे तथ्यपूर्ण अनुभव तक सीमित रहना चाहिए या हम इस योग्य भी हैं कि इन्द्रियाँ जो कुछ भी प्रकट करती हैं, उसके परे भी जा सकते हैं? अर्थात क्या हम इन्द्रिय जगत से परे किसी जगत का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं? आदि। इन प्रश्नों का उत्तर दर्शनशास्त्र की जिस शाखा में प्राप्त करने का प्रयास किया जाता हैं उसको ज्ञानमीमांसा की संज्ञा दी जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात आप-

1. ज्ञानमीमांसा का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
2. दर्शन और ज्ञानमीमांसा के सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. ज्ञानमीमांसा के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
4. ज्ञानमीमांसा के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।
5. ज्ञान और कौशल को में अंतर कर सकेंगे।
6. शिक्षण और प्रशिक्षण को परिभाषित कर सकेंगे एवं इनमें विभेद कर सकेंगे।
7. ज्ञान और सूचना में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
8. तर्क और विश्वास को परिभाषित कर सकेंगे एवं इनमें विभेद स्पष्ट कर सकेंगे।
9. ज्ञान और कौशल को परिभाषित कर सकेंगे।

1.3 ज्ञानमीमांसा का अर्थ (Meaning of Epistemology)

ज्ञानमीमांसा के लिए एक विशेष अंग्रेज़ी का पद 'एपिस्टिमोलाजी' प्रयोग में लाया जाता है जो ग्रीक शब्द एपिस्टिमे(Episteme) और लोगोस (Logos) से बना है। एपिस्टिमे(Episteme) का अर्थ होता है ज्ञान (Knowledge) तथा लोगोस (Logos) का अर्थ विज्ञान(Science) से होता है अतः 'एपिस्टिमोलाजी' का अर्थ हुआ ज्ञान का विज्ञान या ज्ञान का सिदांत। इसमें ज्ञान की विवेचना या ज्ञान की मीमांसा की जाती है। ज्ञानमीमांसा में तीन प्रमुख प्रश्न समाहित रहते है- पहला प्रश्न ज्ञान के स्रोत क्या हैं? वास्तविक ज्ञान कहाँ से आता है अथवा हम उसे कैसे जानते है? यह प्रश्न ज्ञान की उत्पत्ति से सम्बंधित है। दूसरा प्रश्न है ज्ञान का स्वरुप क्या है? क्या मन (Mind) के बाहर कोई वास्तविक संसार है, और यदि ऐसा है तो क्या हम उसे जान सकते है? यह प्रश्न आभास (Appearance) बनाम सत् (Reality) का है। तीसरा प्रश्न है क्या हमारा ज्ञान वैध या प्रमाणिक है? किस प्रकार हम सत्य और भ्रम में भेद करते हैं? यह प्रश्न सत्य की परीक्षा या सत्य की कसौटी का है या सत्य की सत्यपनीयता से सम्बंधित प्रश्न है। संक्षिप्त में यह कहा जा

सकता है कि ज्ञानमीमांसा के अंतर्गत तीन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है – ज्ञान की उत्पति, ज्ञान का स्वरुप और ज्ञान की सत्यता की कसौटी या ज्ञान की प्रमाणिकता।

दर्शन का तीसरा मुलभूत प्रश्न ज्ञान से सम्बन्धित होता है और ज्ञान की विवेचना ज्ञानमीमांसा के अंतर्गत की जाती है एवं ज्ञानमीमांसा वस्तुतः तत्वमीमांसा से सम्बंधित होती है। उदहारण के लिए यदि जगत के संबंध में हमारा चिंतन भौतिकवादी है तो ज्ञान प्राप्ति के साधन भी प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ज्ञान से जुड़े हुए होंगे ज्ञान प्राप्ति की विधियाँ वैज्ञानिक विधि के रूप में स्वीकार्य होंगी तथा केवल प्रत्यक्ष ज्ञान ही माना जाएगा, दूसरी तरफ यदि जगत को आत्मिक रूप में स्वीकार किया जाएगा तो ज्ञान प्राप्ति की विधियाँ तकर्नापरक तथा सहज ज्ञान से सम्बंधित होंगी। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक की ज्ञान क्या है?

ज्ञानमीमांसा का ध्येय ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय के संबंध की व्याख्या करना है। विभिन्न दार्शनिकों ने अपने-अपने दार्शनिक विचारों के आधार पर चिंतन किया जैसे देकार्त ने अपने अनुभव के विश्लेषण से चिंतन आरंभ किया, परंतु इनका मानना था कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अत: उसका अनुभव शून्य में नहीं विकसित होता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने अपना मत इस संदर्भ में संवादों में व्यक्त किया। इन्होनें संवाद में एक से अधिक चेतनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया। इसी लिए विभिन्न दार्शनिक विवेचनाओं में ज्ञानमीमांसा संदर्भित विवेचनाएँ कोई सर्वमान्य अवधारणा विकसित नहीं कर सकी। इस कारण सभी दार्शनिक ज्ञान का अपना अस्तित्व तो स्वीकार करते है व असंदिग्ध मानते है परंतु इसमें निम्नलिखित स्वीकृतियाँ भी निहित मानते है-

- ज्ञान से ज्ञाता अज्ञेय हो सकता है, किन्तु ज्ञान का अस्तित्व है।
- ज्ञान एक से अधिक ज्ञाताओं के संसर्ग का फल है।
- ज्ञान का विषय ज्ञान से भिन्न है।

प्रत्येक धारणा अपने मत को सत्य एवं प्रमाणिक स्वीकार करती है। परंतु ज्ञानमीमांसा इस दावे को उचित जाँच एवं प्रमाणों के बिना स्वीकार नहीं करती है। ज्ञान की अवधारणा पर चितन करने से पहले ज्ञान के स्वरूप पर चिंतन करना आवश्यक है।

ज्ञानमीमांसा के दार्शनिक विवेचन में कुछ यक्ष प्रश्न सदैव निहित रहते हैं जैसे-

- ज्ञान क्या है?
- ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है या नहीं?
- ज्ञान प्राप्त कैसे मानव को प्राप्त होता है?
- मानव ज्ञान की सीमाएँ क्या हैं?

ज्ञान का स्वरूप

मानव में यह सामान्य परिपाटी विधमान होती है कि वह सम्मति, विश्वास और ज्ञान से सम्बंधित या किसी सवांद या विचार या धारणा का श्रवण करता हैं या उस पर अपना चिंतन करता हैं तो उस संदर्भ में मानव वृत्ति सामान्यत: इस प्रकार प्रकट होती है

- सवांद या विचार या धारणा को सत्य स्वीकार करें या उसे असत्य समझकर अस्वीकार करें।
- सत्य और असत्य या विश्वास या अविश्वास की स्थिति में ज्ञान की वृत्ति संदेहात्मक प्रतीत होना।
- प्रमाण या विश्वास के आधार न होने पर भी काल्पनिक या अनुभवात्मक रूप में सत्य मान लेना।

सवांद या विचार या धारणा पर आधरित ज्ञान के स्वरुप को निश्चित कर पाना संभव नहीं प्रतीत होता है। इनकों लेकर जितने भी चिंतन हुए सभी ने अपने-अपने तरीके से विवेचना प्रस्तुत की है किसको सत्य व प्रमाणिक स्वीकार किया जाए इसके कोई निर्धारित व सर्वमान्य मानदंड नहीं प्रागानुभुत होते है। । सबसे निचले स्तर पर सामयिक स्वीकृति रखा जाता है, इसे सम्मति भी कहते हैं। यह स्वीकृति किन्ही निश्चित प्रमाणों पर आधारित नहीं होती है। सम्मति पर आधारित धारणा स्वयं में धार्मिकता एवं वैयक्तिक विश्वासों को समाहित रखती है। ज्ञान सबके लिये एक सा यथार्थ धरातल नहीं प्रदान कर पाता है।

1.3.1 ज्ञान क्या है?

ज्ञान से आशय वास्तविकता के किसी पक्ष के प्रति जागरूकता तथा समझ से है जोकि सत्य विश्वास पर आधारित हो। यह स्पष्ट व सुबोध सूचना या तथ्य है जोकि तार्किक प्रक्रिया के अनुप्रयोग के द्वारा वास्तविकता से प्राप्त किया जाता है। पारम्परिक दार्शनिक उपागम के अंतर्गत ज्ञान के लिए तीन शर्तों का होना आवश्यक एवं पर्याप्त माना गया है। इनके अनुसार ज्ञान को परिभाषित किया जा सकता है कि ज्ञान साक्ष्य पर आधारित सत्य विश्वास है। ये तीन शर्ते निम्न है-

- सत्य
- विश्वास
- प्रमाणिकता या तर्कसंगतता

अमुख तीनों शर्ते प्रतिज्ञप्ति सम्बन्धी ज्ञान के संदर्भ में अधिक तर्कसंगत मानी जाती है।
पहली शर्त के अनुसार किसी प्रतिज्ञप्ति के लिए प्राथमिक है कि वह सत्य हो। किसी प्रतिज्ञप्ति को जानने के अंश के रूप में उस प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना भी समाहित रहता है। इसके विरुद्ध किसी प्रतिज्ञप्ति में विश्वास होना और उस प्रतिज्ञप्ति का असत्य होना संभव है। विश्वास के सामान्यत: दो गुण माने जाते है पहला सत्यता और दूसरा असत्यता। कुछ दार्शनिकों का मत है कि सत्यता एवं असत्यता विश्वास का गुण न होकर प्रतिज्ञप्तियों के गुण है। इनका मानना है कि विश्वास भी एक प्रतिज्ञप्ति सम्बन्धी दृष्टीकोण है।
किसी प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना ही ज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। प्रतिज्ञप्ति को सत्य होने के साथ-साथ उसे विश्वसनीय होना भी आवश्यक है। यह उल्लेखनीय है कि किसी प्रतिज्ञप्ति में विश्वास करना उस प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने की पारिभाषिक विशेषता नहीं है किन्तु एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण शर्त है।
ज्ञान की तीसरी शर्त साक्ष्य से सम्बंधित है। ज्ञाता के पास ज्ञेय प्रतिज्ञप्ति में विश्वास करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य होने चाहिए। किसी प्रतिज्ञप्ति में विश्वास करने के लिए साक्ष्य की मात्राएँ भिन्न-भिन्न हो सकती है। कुछ साक्ष्यों की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि वह किसी प्रतिज्ञप्ति के प्रमाणीकरण की गारंटी तो देते है

किन्तु उसकी सत्यता की गारंटी नहीं देते है। इन्हें तार्किक हेतु (Logical Reason) की संज्ञा दी जाती है। ज्ञान के लिए सिर्फ तार्किक हेतु ही पर्याप्त नहीं माने जा सकते है। इसके लिए निर्णयात्मक साक्ष्य की भी आवश्यकता होती है जो प्रतिज्ञप्ति की सत्यता को सुनिश्चित कर सके। अब यहाँ एक समस्या और प्रकट होती है कि सभी निर्णायक साक्ष्य निरपेक्ष नहीं हो सकते है। प्रत्येक साक्ष्य किसी देश-काल के सापेक्ष ही निर्णायक हो सकता है। इस आधार पर किसी प्रतिज्ञप्ति को शत-प्रतिशत सत्य होने का दावा नहीं किया जा सकता है।

समकालीन दार्शनिकों ने भी इस समस्या पर गंभीर अनुशीलन किया है। इस सम्बन्ध में गेटियर नामक दार्शनिक का उल्लेखनीय है और इन्ही के नाम से गेटियर समस्या अत्यंत प्रसिद्ध है। ज्ञान की परम्परागत परिभाषा के विरुद्ध गेटियर की आपत्ति महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार कोई व्यक्ति अनुमान की प्रक्रिया के माध्यम से एक प्रमाणित तथा असत्य विश्वास रख सकता है, जिसके आधार पर वह एक ऐसी प्रतिज्ञप्ति में विश्वास करता है जो संयोगवश सत्य हो सकता है। इस आधार पर एक न्यायोचित और सत्य विश्वास को तर्कसंगत होने का दावा किया जाता है, जो ज्ञात नहीं है। इसको गेटियर ने कई उदाहरणों द्वारा प्रमाणित किया किन्तु इनके या अन्य दार्शनिकों द्वारा उठाई गई अपेक्षाओं का कोई निरपेक्ष समाधान भी नहीं प्रस्तुत किया जा सका।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि ज्ञान की कोई सर्वमान्य एवं समुचित व्याख्या प्रतिपादित नहीं की जा सकी। अधिकांश दार्शिनकों ने ज्ञान को परिभाषित करने के लिए विश्वास, सत्य, प्रमाण तथा कुछ अन्य शर्तों का सहारा लिया है। ये समस्त घटक (विश्वास, सत्य, प्रमाण तथा अन्य शर्त) संयुक्त रूप से ज्ञान को प्रतिपन्न करते है। वास्तव में इनके द्वारा ज्ञान की कुछ शर्तों और परिस्तिथियों में व्याख्या अवश्य की जा सकती है किन्तु ये ज्ञान को निर्दोष एवं निरपेक्ष रूप से परिभाषित करने मे असमर्थ हैं।

शैक्षिक क्षेत्र में विद्यालय के पाठ्यक्रम का चयन व निर्धारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से ज्ञानमीमांसा से प्रभावित रहता है। पाठ्यक्रम में पाठ्य विषयों के चयन व निर्धारण हेतु, विषयों में पाठ्यवस्तु के संकलन हेतु एवं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण हेतु आदि विशिष्ट दार्शनिक विवेचना से प्रभावित होती है। विद्यार्थियों को किस प्रकार का वैध ज्ञान प्रदान किया जाए, कौन सी पाठ्य सामग्री श्रेयस्कर होंगी, किन शिक्षण विधियों का प्रयुक्त किया जाए आदि प्रश्न ज्ञानमीमांसीय विवेचना पर आधारित होते है।

1.3.2 दर्शन और ज्ञानमीमांसा (Philosophy and Epistemology)

दर्शन में ज्ञानमीमांसा का क्या महत्व है और ज्ञान मीमांसा का क्या स्वरुप है? इन प्रश्नों पर विचार करने से दर्शन और ज्ञानमीमांसा का संबंध, ज्ञानमीमांसा का महत्त्व और स्वरुप भी स्पष्ट हो जाएगा।

जीव, जगत और मानव-अस्तित्व को समझने के लिए दर्शन वह प्रयास है, जो बुद्धि और चिंतन के बल पर सभी समस्याओं का हल ढूढ़ता है। ज्ञानमीमांसा को दर्शन के विषयों को समझने और इनका बोध प्राप्त करने का साधन कहा जा सकता है। दर्शन ज्ञानमीमांसा पर निर्भर करता है, क्योंकि दर्शन में किसी भी प्रकार की विवेचना के लिए तथा उसका सही अर्थ बोध कराने के लिए ज्ञान के साधन, ज्ञान की प्रमाणिकता की आवश्यकता पड़ती है। इसके आभाव में दार्शनिक ज्ञान, दार्शनिक नहीं अपितु सामान्य

श्रेणी का ज्ञान माना जाएगा और इसका बौद्धिक मीमांसा एवं प्रमाणिकता से कोई संबंध नहीं रह जाएगा। ज्ञानमीमांसा का वास्तविक संबंध दार्शनिक प्रश्नों से ही है। लौकिक जीवन के साधारण विषयों को ज्ञानमीमांसा का विषय नहीं माना जाता है। ज्ञानमीमांसा स्वतः ज्ञान के विषय में ही प्रश्न उठाता है- जैसे ज्ञान क्या है? ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है? ज्ञान के साधन कौन-कौन से है? सत्य ज्ञान के क्या प्रमाण है? अथवा इसका निर्धारण कैसे होगा? ज्ञान और भ्रम में क्या अंतर है? आदि। ज्ञानमीमांसा का कार्य, ज्ञान के अतिरिक्त सत्ता या तत्व के विषय में मीमांसा करना है। दर्शन का सीधा संबंध तत्वमीमांसा से है। व्यापक अर्थों में इसे ही दर्शनशास्त्र भी कहा जाता है और तत्व शास्त्र का सही निरूपण ज्ञानमीमांसा के आभाव में संभव नहीं है। सत्ता या तत्त्व को जानने के लिए ज्ञानमीमांसा को साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। सत्ता के स्वरुप का निर्णय होते ही ज्ञान की सत्यता व असत्यता का प्रश्न उठ खड़ा होता है और फिर इसके लिए ज्ञानमीमांसा की आवश्यकता हो जाती है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र में ज्ञानमीमांसा का भी अध्ययन किया जाता है और ज्ञानमीमांसा द्वारा दर्शनशास्त्र के विषयों की सत्यता- असत्यता का निर्धारण भी किया जाता है। दर्शन यदि विश्व के अन्तिम सत्य को 'जानना' चाहता है तो इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस जानने के लिए जो साधन हो, वह प्रमाणिक एवं विश्वसनीय हों। दर्शन केवल न तो सामान्य विचार या ज्ञान पर निर्भर करता है और न ही केवल कुछ धारणाओं, विचारों व परम्पराओं पर निर्भर करता है। इसमें ज्ञान की पूर्ण संतुष्टि की आवश्यकता होती है जोकि प्रमाणिक ज्ञान पर निर्भर होती है। अतः यही प्रामाणिक और सत्य ज्ञान ही दर्शन का अभिन्न अंग बन जाता है। आधुनिक दर्शन तो वैज्ञानिक आलोक में पला बढ़ा है, विशेष रूप से पाश्चात्य आधुनिक दर्शन में ज्ञानमीमांसा की आवश्यकता और भी बढ़ गई है।

1.3.3 सामान्य ज्ञान (Common Sense)

ज्ञानमीमांसा के स्वरुप को समझने के लिए आवश्यक है कि इसका सामान्य ज्ञान या प्रचलित ज्ञान से अन्तर स्पष्ट हो। अनेकों विश्वास. धारणाएं आदि जिनकों प्रारंम्भ में सत्य मान लिया गया था इन्हें सामान्य ज्ञान माना जाता था किन्तु यह आगे चलकर असत्य सिद्ध हुई। जैसे- पृथ्वी समतल है या रोग किसी भूत-प्रेत के कारण होते है या स्वप्न में आत्मा देश-काल में भ्रमण करती है आदि। इन्हें आधुनिक विवेचना में असत्यता की श्रेणी में रखा जाता है। सामान्य ज्ञान के निर्माण के स्रोत अपने आप में प्रमाणिक तथा वैध नहीं होते है जिसके कारण अधिकांशत: इन पर आधारित ज्ञान भी विश्वसनीय नहीं होता है। सामान्य ज्ञान निर्माण के स्रोत निम्न स्वीकार किए जाते है-

- सामजिक समूह
- समाज की प्रचलित विचारधारा, विश्वास, अनुभूति, आदत आदि।
- समाज के व्यावहारिक सूत्र, लोकोक्तियां , अस्पष्ट विश्वास आदि।

1.4 ज्ञानमीमांसा का कार्य (Functions of Epistemology)

ज्ञानमीमांसा से सम्बंधित कार्यों को नीचे उल्लखित बिन्दुओं के रूप में व्यक्त करके भलीभांति समझा जा सकता है-

- ज्ञानमीमांसा में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के संबंधों की विस्तृत व्याख्या की जाती है। जिस प्रकार ज्ञाता को किसी विषय (ज्ञेय) का ज्ञान होता है उसी प्रकार ज्ञान का संबंध विषय और ज्ञाता दोनों से होता है। दार्शनिक चिंतन की विशिष्टता के आधार पर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी की व्याख्या ज्ञानमीमांसा के अंतर्गत की जाती है।
- ज्ञानमीमांसा का प्रमुख उद्देश्य और क्षेत्र ज्ञान के स्रोतों से सम्बंधित प्रश्नों एवं विवादों का समाधान ढूढ़ना है। दर्शन में ज्ञान के प्रमुख चार स्रोत माने गए हैं-आप्तवाक्य या शब्द प्रमाण, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति, चिंतन-स्रोत के रूप में(तर्क बुद्धि का उपयोग) और आन्तरिक सूझ (अंत: प्रज्ञा का उपयोग)। ज्ञानमीमांसा के माध्यम से ज्ञान इन सभी स्रोतों की विवेचना की जाती है।
- ज्ञानमीमांसा में ज्ञान की वैधता तथा ज्ञान की सत्यता व असत्यता की मीमांसा किन्हीं निश्चित कसौटियों के आधार पर की जाती है। अनेक दार्शनिक मतों ने अपने-अपने सिद्धांत के अनुरूप सत्य की कसौटियां निर्धारित की है जैसे- प्रत्ययवादी सुसंगति सिद्धांत , वस्तुवादियों ने संवाद सिद्धांत एवं फलवादियों ने संतोषजनक परिणाम के सिद्धांत आदि का प्रतिपादन किया है। ज्ञानमीमांसा के द्वारा ही सत्य की कसौटी तथा ज्ञान की वैधता का निर्धारण किया जाता है।
- ज्ञानमीमांसा में ज्ञान के स्वरुप को स्पष्टीकृत करने हेतु उसका अन्य ज्ञानमीमांसीय संप्रत्ययों जैसे- चिंतन, स्मृति, विश्वास, अज्ञान, सत्य इत्यादि से संबंधों की विवेचना होती है। ये सब ज्ञान की व्याख्या करने के लिए साधन हैं। ज्ञान ही ज्ञानमीमांसा का केन्द्र बिन्दु और साध्य है।

  संक्षिप्त में ज्ञानमीमांसा के प्रमुख कार्य है-ज्ञान, मानव बुद्धि, ज्ञान के स्वरुप, ज्ञान की सीमा, ज्ञान की वैधता, अवैधता व प्रमाणिकता, ज्ञान प्राप्ति के स्रोत, ज्ञान प्राप्त करने के साधन व विधियाँ, सत्य-असत्य प्रमाण और भ्रम आदि की व्याख्या व तार्किक विवेचना करना ही इसकी विषयवस्तु है।

1.5 ज्ञानमीमांसा का महत्व (Significance of Epistemology)

ज्ञानमीमांसा का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि दर्शनशास्त्र, ज्ञानमीमांसा के अभाव में कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है। ज्ञानमीमांसा दर्शनशास्त्र का वह अभिन्न अंग है जो ज्ञान की उत्पत्ति, आकार-प्रकार, सीमा, सत्यता और उसकी कसौटियों की विवेचना करता है। ज्ञान की क्या प्रकृति है, ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है, उसके क्या आधार है, व्यक्ति जो ज्ञान प्राप्त करता है, वह कैसे प्राप्त करता है,

इन सभी प्रश्नों का समाधान ज्ञानमीमांसा में किया जाता है। प्राचीनकाल में प्लेटो ने और आधुनिक युग में तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने ज्ञानमीमांसा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया।

ज्ञानमीमांसा अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सभी प्रकार के पाठ्य-विषयी अधिगम में समाहित है। इसमें ज्ञान का अध्ययन किया जाता है। ज्ञानमीमांसा लोगों को एक बुनियादी साधन-तंत्र प्रदान करती है जिसके माध्यम से वह मूल आधारभूत प्रश्नों जैसे-ज्ञान क्या है और इसकी क्या सीमाएं है? कैसे ज्ञान न्यायसंगत है? कैसे ज्ञान का संबंध अन्य मतों से है? जैसे-सत्य, विश्वास, और तर्कसंगतता? आदि का अध्ययन, विवेचना एवं विश्लेषण किया जाता है। ज्ञानमीमांसा मे सदैव यह प्रश्न निहित रहता है कि आप कैसे जानते हो व क्या जानते हो? साक्ष्यों के आंकलन, विश्वसनीयता का निर्धारण एवं विवेकी सत्य आदि के लिए आपके क्या आधार है? ज्ञानमीमांसा एक संप्रत्यय के साथ-साथ आधारभूत एवं अमूर्त है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी ज्ञानमीमांसा है यदि आप आलोचनात्मक चिंतन इसके संदर्भ में करते है या स्वयं की वैचारिकता के आधार पर निर्णय लेते है। आप की ज्ञानमीमांसा निर्धारित करती है कि कैसे आप सत्य और असत्य में भेद करें। व्यक्ति ज्ञानमीमांसीय विश्लेषण के आधार पर ही प्रमाणिक परिकल्पनाओं का एक सुसंगत नैतिक तंत्र विकसित करता है जिसके आधार पर अपना जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न करता है।

शैक्षिक परिद्रश्य में इसका अत्यंत महत्व है क्योकिं इस क्षेत्र में ज्ञानमीमांसीय विवेचना के आधार पर ही पाठ्यक्रम का निर्धारण, पाठ्य-विषयों का चयन, शिक्षण विधियों का विधान और नियोजन, पाठ्य-क्रियाओं तथा पाठ्य-सहगामी क्रियाकलापों आदि का निर्धारण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. ज्ञानमीमांसा शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के किन दो शब्दों से हुई है??
2. ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का सम्बन्ध किससे होता है?
3. विद्यालय के पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों का चयन दर्शन के किस भाग के आधार पर किया जाता है?
4. सामान्य ज्ञान के निर्माण के स्रोत कौन-कौन से होते है?
5. सत्य विश्वास पर आधारित तर्कसंगत प्रतिज्ञप्ति को क्या कहते है?

1.6 ज्ञान तथा कौशल में अन्तर (Distinction between Knowledge and Skill)

भारतीय और पाश्चात्य द्रष्टि से ज्ञान की विभिन्न अवधारणाएँ मिलती है। सामान्य रुप से भारतीय विचारधारा के अनुसार 'ज्ञान' का अर्थ (शब्द कोष के अनुसार)इस प्रकार दिया गया है- ज्ञान (ज्ञा + ल्युट)- जानना, बोध, जानकारी, सम्यक् बोध, पदार्थ को ग्रहण करने वाली मन कि वृति, शास्त्रानुशीलन

आदि से आत्म तत्व का अवगम, आत्म-साक्षात्कार, बुद्धिवृति आदि। भारतीय चिंतन में ज्ञान को प्रमा भी कहा गया है। मीमांसा दर्शन में कहा गया है-प्रमा अज्ञात तथा सत्य पदार्थ का ज्ञान है। शब्दकोष के अनुसार प्रमा से आशय शुद्ध बोध, यथार्थ ज्ञान, जो जैसा है उसको उस रूप में जानना है।

ज्ञान को अंग्रेजी में नॉलेज (Knowledge) कहते है। नॉलेज शब्द के निम्नलिखित अर्थ बताए गए है- किसी तथ्य, या सत्य का या अस्तित्ववान वस्तु का निश्चित प्रत्यक्षीकरण, असंदिग्ध ज्ञान, पहचान, सीखना, पांडित्य, संसूचना, किसी चीज में कुशल होना तथा किसी तथ्य या व्यक्ति से परिचय आदि।

ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष ने परिभाषित किया कि ज्ञान शिक्षा या अनुभव के माध्यम से अर्जित सूचना या जागरूकता है। ज्ञान अर्जित करने के अनेकों माध्यम है जैसे- पुस्तकें पढके, समाचार-पत्र के जरिए, इन्टरनेट के माध्यम से, विभिन्न विषयों के अध्ययन के माध्यम से आदि। ज्ञान में सैद्धांतिक सूचना के विभिन्न आयाम समाहित रहते है जोकि एक विषय में अध्ययन किए जाते है। ज्ञान ज्ञानेन्द्रिय माध्यमों से सूचानों का अर्जन है जैसे- पढना, देखना, सुनना, स्पर्श आदि। ज्ञान के प्रत्यय से आशय तथ्यात्मक सूचना और सैद्धांतिक प्रत्ययों के साथ अंतरंगता से है। ज्ञान एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया जा सकता है और इसे अवलोकन एवं अध्ययन के माध्यम से अर्जन किया जा सकता है।

कौशल से तात्पर्य है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ज्ञान को अनुप्रयोग में लाने की योग्यता से है। कौशल वह योग्यताएं जो अच्छे प्रदर्शन में सहायक होती है। किसी भी कौशल का विकास करना व उसमे उत्कृष्ट लाना अत्यंत कठिन कार्य है जिसके लिए अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। कौशलों का विकास अभ्यास के माध्यम एवं ज्ञानेन्द्रियों के प्रभावी संयोजन से होता है। जैसे- सामाजिक कौशल का विकास लोगों से अंत:क्रिया करके, उनसे बातचीत करके, उनकों सुनकर और उनकों देख कर आदि माध्यमों से किया जाता है। किसी भी कौशल में प्रवीणता प्राप्त करने हेतु प्रयत्न एवं त्रुटी का नियम सबसे उपयुक्त है किन्तु कुछ व्यक्तियों में कुछ जन्मजात कौशल होते है जिन्हें आसानी से परिष्कृत किया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कौशलों में प्रवीणता होना आवश्यक है जैसे- शिक्षण कौशल, संगठन कौशल, प्रदर्शन कौशल, तकनीकी कौशल आदि।

संक्षिप्त में ज्ञान शिक्षा या अनुभव के द्वारा सूचना या जागरूकता का अर्जन है जबकि किसी परिस्तिथि मे कौशल के अनुप्रयोग की योग्यता है। ज्ञान शिक्षा या अनुभव के माध्यम से प्राप्त होता है जबकि कौशल अभ्यास के माध्यम से होता है। ज्ञान सैद्धांतिकता को समाहित रखता है जबकि कौशल व्यवहारिक योग्यताओं को। ज्ञान का अर्जन किया जाता है यह जन्मजात नहीं होता है जबकि कुछ कौशल जन्मजात हो सकते है। ज्ञान और कौशल के अन्तर को संक्षेप में नीचे प्रदर्शित तालिक चित्र के माध्यम से भी समझा जा सकता है-

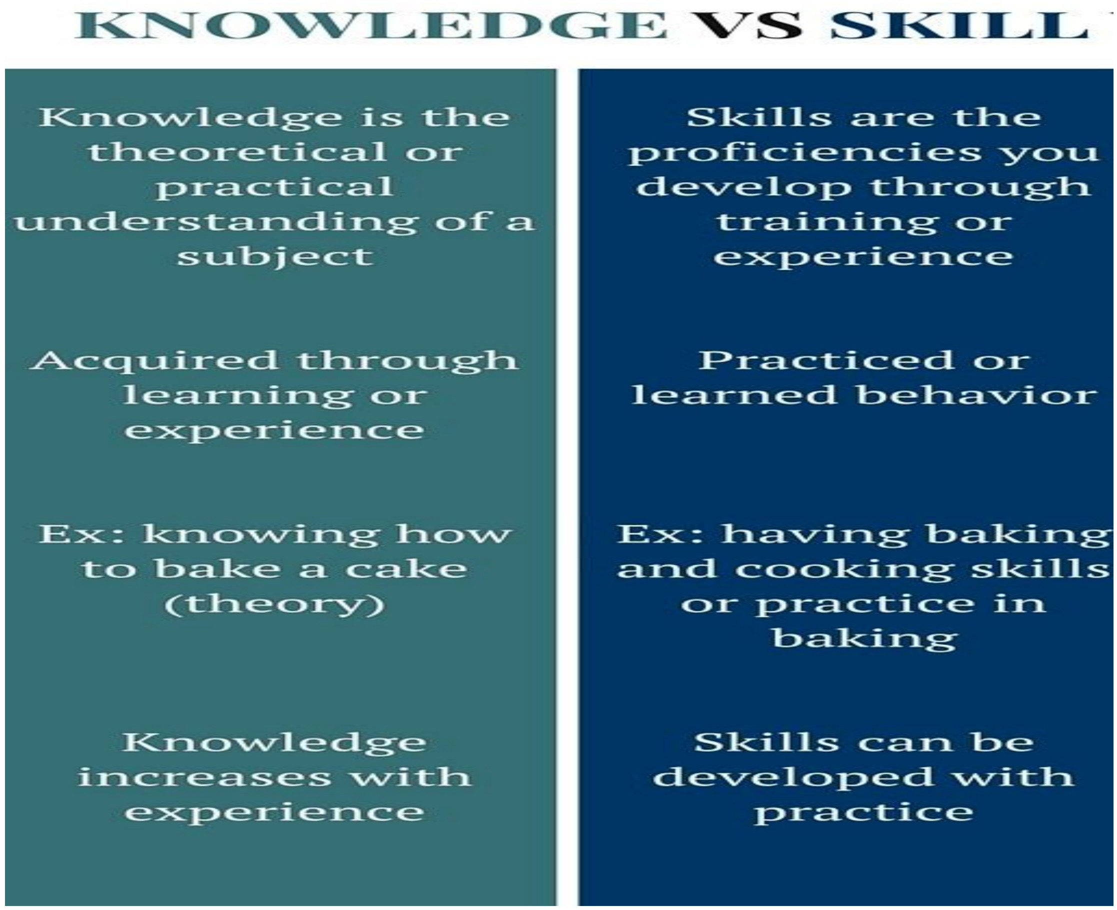

1.7 शिक्षण तथा प्रशिक्षण में अन्तर (Distinction between Teaching and Training)

शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक अर्थात सिखाने वाला शिक्षर्थियो अर्थात सीखने वालों के विभिन्न उपागमों, विधियों, प्रविधियों, युक्तियों एवं साधनों के माध्यम से अधिगम परिस्थितियों का सृजन करते है और सीखने वाले अर्थात अधिगमकर्ता स्व: गति से सीखते है। शिक्षण की प्रासंगिकता तभी मानी जाती है जब अधिगमकर्ता के व्यवहार में वांछित परिवर्तन हो जाए। शिक्षण में सामान्यत: सैद्धांतिक पक्षों का अध्ययन निहित रहता है। इसमें शिक्षक की भूमिका अधिगम में सहायता पहुँचाने वाले या मार्गदर्शक के रूप में, जोकि विभिन्न निर्देशित चर्चाओं, स्वत्रंत प्रश्न व कार्य करने के अवसर प्रदान करके, अधिगमकर्ताओं के सक्रिय प्रतिभागिता में समर्थ बनाने और चिंतन के साथ कार्य करने आदि, होती है।

प्रशिक्षण को सामान्यत: किन्हीं कौशलों के विकास की प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है। इसी कारण प्रशिक्षण को क्रियापरक माना जाता है। प्रशिक्षण हेतु क्षेत्र विशेष के कौशलों में दक्षता व प्रवीणता प्राप्त करने के लिए सैद्धांतिक पक्षों का ज्ञान आवश्यक है। प्रशिक्षण का अर्थ है अधिगमकर्ता को किसी कला,

कौशल, व्यवसाय आदि में अभ्यास द्वारा दक्षता व प्रवीणता लाने से है। प्रशिक्षण एक प्रकार तकनीकी है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र विशेष के स्वीकृत मानकों के अनुरूप एक व्यक्ति में ज्ञान, कौशल और मनोवृति को विकसित किया जाता है।

संक्षिप्त में शिक्षण का किसी वस्तु के सैद्धांतिक ज्ञान या संप्रत्ययों या पक्षों से सम्बंधित होता है जबकि प्रशिक्षण ज्ञान का सम्बन्ध अधिगमित ज्ञान के व्यवहारिक अनुप्रयोग, व्यवहार परिवर्तन एवं दक्षता विकास से है। प्रशिक्षण शिक्षण की अपेक्षा अधिक विशिष्ट, गहन व केंद्रीयकृत होता है। शिक्षण का उद्देश्य होता हैं लोगों की जिज्ञासाओं की संतुष्टि करना तथा व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन, परिमार्जन तथा परिष्करण करना है। जबकि प्रशिक्षण का उद्देश्य वांछित परिवर्तन लाकर कौशलों एवं प्रदर्शन दक्षता विकसित करने से है। शिक्षण सामान्यत: शैक्षिक जगत से ही संदर्भित होता है जबकि प्रशिक्षण शैक्षिक एवं व्यवसायिक जगत दोनों से सम्बंधित होता है। शिक्षण में शिक्षक अपने शिक्षार्थियों को प्रतिपुष्टि देते हैं जबकि प्रशिक्षण में प्रशिक्षणकर्ता प्रशिक्षुओं से प्रतिपुष्टि प्राप्त करते है। शिक्षण सदैव प्रशिक्षण के लिए सशक्त आधार तैयार करने में सहायता देता है। जबकि प्रशिक्षण इसी आधार पर कौशल तथा दक्षता का विकास करता है।

1.8 ज्ञान तथा सूचना में अन्तर (Distinction between Knowledge and Information)

ज्ञान के विषय में पूर्व में चर्चा की जा चुकी है। एक सामान्य धारणा के अनुसार किसी भी विषय के सन्दर्भ में , क्या ?,क्यों ?,कैसे ?,कहाँ ?,कौन ? कब ? आदि प्रश्नों के ऐसे उत्तर को ज्ञान कहते हैं जिस उत्तर में से फिर कभी किसी प्रश्न का जन्म न हो। इन्द्रिओ द्वारा अर्जित वस्तु संबंधी या किसी संदर्भ विशेष की जानकारी को सूचना कहते हैं। सूचना शब्द का वर्णन संदर्भ विशेष से सम्बंधित संरचनात्मक, संगठित एवं संसाधित आकड़ो के रूप मे होता है जोकि प्रासंगिक एवं उपयोगी होते है उसके लिए जो व्यक्ति इन्हें जानना चाहता है। सूचना में निहित प्रदत्त एवं तथ्य एक अपरिपक्व रूप में अवलोकन द्वारा संग्रहित किए जाते है। सूचना का प्रस्तुतीकरण या प्रदर्शन अंक, शब्द, चित्र एवं ध्वनि के माध्यम से होता है। इसे लोगों के मध्य बहुत आसानी से बोधपूर्ण रूप में पहुँचाया जा सकता है। प्रदत्त एवं तथ्य के रूप में संयोजित सूचना की प्रकृति स्वतंत्र एवं मुक्त होती है।

संक्षिप्त में ज्ञान से तात्पर्य अनुभव द्वारा अर्जित प्रासंगिक एवं उद्देश्यपूर्ण सूचनाओं से है जबकि सूचना का संबंध संदर्भ विशेष में निहित तथ्यों के व्यवस्थित क्रम से है। ज्ञान में उपयोगी व प्रासंगिक सूचनाएं निहित होती है जबकि सूचना में केवल संशोधित तथ्य होते है। ज्ञान को सूचना, अनुभव और अंत:प्रज्ञा का संयोजन माना जाता है जबकि सूचना को तथ्यों एवं संदर्भ का संयोजन। ज्ञान से किसी विषय की सारगर्भिता को बढ जाती है जबकि सूचना तथ्यों की प्रतिनिधित्वता को बढाता है। ज्ञान के हस्तांतरण के लिए अधिगम का होना आवश्यक है जबकि सूचानों के हस्तांतरण का आसानी से बिना अधिगम के भी किया जा सकता है। किसी क्षेत्र या विषय के अपेक्षित ज्ञान के आधार पर संभाव्य पूर्व कथन किया जा

सकता है जबकि सूचना के आधार पर ऐसा संभव नहीं है। सभी ज्ञान एक प्रकार की सूचनाएं है जबकि सभी प्रकार की सूचनाएं ज्ञान हो यह आवश्यक नहीं है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ संज्ञानात्मक एवं विश्लेषणात्मक योग्यताओं का होना आवश्यक है जबकि सूचना प्राप्त के लिए संज्ञानात्मक योग्यताओं का होना आवश्यक नहीं है।

1.9 तर्क तथा विश्वास में अन्तर (Distinction between Reason and Belief)

दर्शनशास्त्र में तर्क कथनों की ऐसी श्रंखला होती है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या समुदाय को किसी बात की प्रमाणिकता एवं वैधता प्रस्तुत की जाती है या उन्हें सत्य के प्रमाणन हेतु कारण प्रदर्शित किए जाते हैं। आम तौर तर्क को चिंतन का सर्वोच्च स्तर माना जाता है। तर्क एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें प्राय: औपचारिक नियमों का अनुसरण किया जाता है। जब किसी उद्देश्य विशेष को केन्द्र में रखते हुए संगठित तथा व्यवस्थित स्वरुप में चिंतन प्रक्रिया की जाती है एवं इसमें कार्य-कारण संबंधों को स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है तो उसे तर्क कहते है।

तर्क वास्तव में कार्य-कारण संबंध स्थापित करने की एक ऐसी उच्च स्तरीय संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसमे ज्ञान तथा अनुभव पर आधारित बौद्धिक कसौटियों के द्वारा कुछ संगठित तथा व्यवस्थित सोपानों का अनुसरण करते हुए किसी समस्या का सर्वोत्तम समाधान निकालने का प्रयास किया जाता है। तर्क में संकेतों, प्रतीकों, भाषा, प्रत्ययों आदि का प्रयोग किया जाता है। तर्कों को मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है- पहला निगमन तर्क और दूसरा आगमन तर्क।

सामान्यत: विश्वास किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति मानव की मनोस्थिति का अभिव्यक्तिकरण है। विश्वास मानव के व्यक्तित्व का एक स्थायी एवं अभिव्यक्त रूप है जोकि उसके विचारों व क्रिया-कलापों के प्रदर्शन में दिखता है। विश्वास एक मानसिक शक्ति है। इसमें व्यक्ति अनुभाविक सक्ष्यों के आधार पर किसी विषय में तथ्यात्मक निश्चय के साथ कथन या कार्य करता है। एक व्यक्ति जो कुछ जानकारी रखता है उसे वह एक सकरात्मक या नकारात्मक कथन में व्यक्त करता है क्योकि इस पर उसका विश्वास होता है। विश्वास की सत्यता व असत्यता विषय एवं व्यक्ति की ज्ञान की सीमा पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति को ज्ञान केवल अनिवार्य सत्यों का जैसे गणित, विज्ञान, तर्कशास्त्र आदि का ही हो सकता है, शेष सभी विषय विश्वास की सीमा परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं जहाँ प्रत्येक अनुभाविक विषय के प्रमाण उपलब्ध होना संभव नहीं है। ज्ञान को एक सत्य विश्वास भी माना गया है जोकि किसी अटकल या अंदाज़ पर निर्भर न हो।

संक्षिप्त में तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान सदैव प्रमाणिक व वैध माना जाता हैं जबकि विश्वास पर आधारित ज्ञान प्रमाणिक या अप्रामाणिक तथा वैध या अवैध किसी भी श्रेणी का हो सकता है। तर्क के लिए एक उच्च स्तरीय मानसिक चिंतन प्रक्रिया आवश्यकता होती है जबकि विश्वास एक सामान्य मनोस्थिति होती है। तर्क कार्य-कारण नियमों पर आधारित होते है जबकि विश्वास के साथ ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी।

तर्क प्रागनुभाविक एवं इन्द्रियानुभविक प्रकथनों पर आधारित होते है जबकि विश्वास केवल इन्द्रियानुभविक प्रकथन पर आधारित होते है।

अभ्यास प्रश्न

6. प्रतिज्ञाप्ति ज्ञान के लिए परम्परागत चिंतन में कितनी आवश्यक शर्त मानी गई है?
7. किसे सामान्यत: एक जटिल मानसिक प्रक्रिया माना गया है जिसमें प्राय: औपचारिक नियमों का अनुसरण किया जाता है?
8. किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति मानव की मनोस्थिति का अभिव्यक्तिकरण है, को क्या माना जाता है?
9. शिक्षण को कब पूर्ण माना जाता है?
10. किसी कला, कौशल, व्यवसाय आदि में अभ्यास द्वारा दक्षता व प्रवीणता लाने की प्रक्रिया को क्या कहा जाता है?
11. किसे सूचना, अनुभव और अंत:प्रज्ञा का संयोजन माना जाता है?

1.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में ज्ञानमीमांसा की उत्पत्ति, ज्ञानमीमांसा के अर्थ, सामान्य ज्ञान, ज्ञान की शर्तों, ज्ञानमीमांसा के कार्य तथा इसके महत्व की व्याख्या की गई है। इसमें ज्ञानमीमांसा की परिधि में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न प्रत्ययों तथा उनके अन्तरों जैसे- ज्ञान और कौशल, ज्ञान और सूचना, शिक्षण और प्रशिक्षण, तर्क और विश्वास आदि का वर्णन किया गया है।

1.11 शब्दावली

1. **ज्ञानमीमांसा-** दर्शनशास्त्र का वह अंग जिसमें ज्ञान, ज्ञान की उत्पत्ति, स्रोत्त, प्रमाणिकता-अप्रमाणिकता, वैधता-अवैधता तथा सत्यता- असत्यता की व्याख्या की जाती है। ।
2. **सामान्य ज्ञान-** ऐसा ज्ञान जो सामाजिक विश्वासों, लोकोक्तियों, विचारों, व्यवहारों, आदतों तथा अनुभूतियों आदि पर आधारित है।
3. **ज्ञान-** परम्परागत रूप में ज्ञान को साक्ष्यों पर आधारित एक सत्य विश्वास माना गया है।
4. **तर्क-** कार्य-कारण संबंध पर आधारित ऐसे उच्च स्तरीय संज्ञानात्मक न्याय वाक्य जो संगठित व व्यवस्थित सोपानों के द्वारा समस्या समाधान पर केन्द्रित होते है।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एपिस्टिमे (Episteme) और लोगोस (Logos)
2. ज्ञानमीमांसा
3. ज्ञानमीमांसा
4. सामाजिक समूह, समाज के विश्वास, अनुभूति, विचार आदत एवं लोकोक्तियां, व्यावहारिक सूत्र, अस्पष्ट विश्वास आदि
5. ज्ञान
6. तीन शर्तें
7. तर्क
8. विश्वास
9. जब अधिगमकर्ता के व्यवहार में वांछित परिवर्तन हो जाए
10. प्रशिक्षण
11. ज्ञान

1.13 सहायक उपयोगी ग्रंथ

1. तिवारी, केदारनाथ (2009) तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
2. निगम, शोभा (2007) पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
3. मिश्रा, नित्यानंद (2007) समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
4. Rescher, N. (2003) Epistemology: An Introduction to the Theory of Knowledge, State University of New York Press, Albany, New York

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. ज्ञानमीमांसा को परिभाषित करते हुए इसके कार्यों का वर्णन कीजिए?
2. ज्ञानमीमांसा को स्पष्ट कीजिए एवं इसके महत्व की विवेचना कीजिए?
3. ज्ञान एक तर्कसंगत सत्य विश्वास है? इसकी विवेचना कीजिए?
4. सामान्य ज्ञान को स्पष्ट करते हुए ज्ञान और सूचना के अन्तर को स्पष्ट कीजिए?
5. ज्ञानमीमांसा के महत्व को विवेचित करते हुए तर्क और विश्वास में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
6. ज्ञानमीमांसा के शैक्षिक आधार को स्पष्ट करते हुए शिक्षण और प्रशिक्षण में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

इकाई 2- गाँधी जी, रवीद्रनाथ टैगोर, जॉन डीवी, प्लेटो / मार्टिन बुबेर / पाउलो फ्रेरे के संदर्भ में गतिविधि या क्रिया बाल-केंद्रित शिक्षा की एक प्रमुख अवधारणा

Activity', as a salient concept of child-centered education with reference to Gandhi, Tagore, Dewey, Plato / Buber / Freire

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 गतिविधि अथवा क्रिया की अवधारणा
2.4 बाल केन्द्रित शिक्षा
  2.4.1 बाल केन्द्रित शिक्षा के आधार
  2.4.2 बाल केंदित शिक्षा के उद्देश्य
  2.4.3 बाल केन्द्रित शिक्षा के अंतर्गत पाठ्यक्रम का स्वरुप
2.5 गाँधी के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.6 रवींद्रनाथ टैगोर के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.7 प्लेटो के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.8 जॉन डीवी के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.9 मार्टिन बुबेर के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.10 पावलो फ्रेरे के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा
2.11 सारांश
2.12 शब्दावली
2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.15 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मानव को जन्म से ही एक बुद्धिमान एवं विवेकशील प्राणी के रूप में जाना जाता है। मानव ने अपने विवेकशील प्रयासों एवं बुधिमत्तापूर्ण क्रिया-कलापों से सभ्यता का विकास अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। मानव अपनी चेतना में प्रस्फुटित होने वाले अमूर्त विचारों को अपने विभिन्न प्रयासों, गतिविधियों एवं क्रिया-प्रक्रियाओं के माध्यम से साकार रूप प्रदान करने का प्रयास करता है। मानव स्वभावता अपने आप को चेतना में विभिन्न प्रकार की गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों में शारीरिक, भावात्मक एवं क्रियात्मक रूप से क्रियाशील रखता है। उसकी क्रियाशीलता के कारण ही अनेकों नवीन उत्पादों का सृजन होता है। क्रियाशीलता का गुण या गतिविधियों में भाग लेने व क्रिया करने आदि का गुण केवल मानव में ही नहीं अपितु पशु-पक्षी में भी समान रूप से पाया जाता है। इनमें विभिन्नता सिर्फ प्रयोजनशीलता एवं उद्देश्यपूर्णता को लेकर रहती है। मानव सदैव अपने प्रयोजन के अनुकूल बुद्धि और विवेक का प्रयोग करता हुआ कोई कार्य करता है जबकि पशुओं और पक्षियों में ऐसी प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है। मानव ने अपने प्रयासों द्वारा सभ्यता एवं संस्कृति का अपेक्षित विकास किया। मानव ने विकास की धारा को अविरल बनाए रखने के लिए अनेकों नूतन अवधारणाओं को अंगीकृत किया उनमें से शिक्षा सबसे प्रमुख स्थान रखती है क्योकि यही एकमात्र वह माध्यम माना जाता है जिसके माध्यम असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है। शिक्षा का स्वरुप यधपि मानव समाज में सदैव विद्यमान रहा है किन्तु प्रारंभिक समय में यह अनौपचारिक माध्यमों के रूप चलायमान थी। विकास के क्रम में मानव ने धीरे-धीरे औपचारिक माध्यमों को स्थापित करते हुए शिक्षा का प्रसार जनमानस में करने लगे। वर्तमान में अनगिनत संस्थान शिक्षा की सर्वसुलभता के उद्देश्य को प्राप्त करने में लगे हुए है।

शिक्षा की अवधारणा अपने आप में अत्यंत व्यापक है जो वर्तमान परिद्रश्य में कक्षा की चार दीवारों को पार करते हुए केवल इस मुख्य ध्येय में स्व-केन्द्रित है कि एक बच्चे का सर्वांगीण कैसे किया जाए। यहाँ पर बच्चे के सर्वंगीण विकास से आशय बच्चे के भौतिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक आदि पक्षों के विकास से है। विकास के यह अपेक्षित मानदंड केवल शिक्षा के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावों के माध्यम से ही प्राप्त किए जा सकते है। इसी कारण प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों के सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट विकास के लिए एक बेहतर शिक्षा प्रणाली का नियोजन करता है। शिक्षा की परम्परागत अवधारणा में शिक्षा को पूर्णतया शिक्षक या गुरु केन्द्रित स्वरुप था जहाँ पर यह अवधारणा थी कि योग्य शिक्षक या गुरु के संसर्ग में कोई भी बच्चा अपने विकास के सर्वोत्तम शिखर को प्राप्त कर सकता है एवं शिक्षक द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान को ग्रहण एवं स्मरण करने पर अधिक प्रमुखता दी जाती थी किन्तु धीरे-धीरे इस अवधारणा को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, नियमों व अनुप्रयोगों ने पूर्णतया परिवर्तित कर दिया एवं शिक्षा के स्वरुप को बाल-केन्द्रित बना दिया जहाँ बच्चे की आवश्यकताओं के अनुरूप ही शिक्षा का पूर्ण नियोजन किया जाता है। बाल-केन्द्रित अवधारणा में न केवल बच्चे की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया जाता है अपितु बच्चों को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों या क्रिया-विधियों में प्रतिभाग करते हुए सिखाने का प्रयास किया जाता है।

मानव का बाल रूप स्वभावता अत्यंत चंचल माना जाता है। बाल मन सदैव अपने चारोंओर की विद्यमान गतिविधियों पर केन्द्रित रहता है वह किसी विशेष परिस्थिति पर केन्द्रित न होकर सभी प्रकार की गतिविधियों पर क्षणिक-२ रूप में ध्यान देने का प्रयास करता है। इसी कारण सैद्धांतिक शिक्षण मात्र के माध्यम से बच्चों को अधिगम कर पाने की संभावना बहुत कम होती है क्योकि वह अपने अवधान को किसी विषय मात्र पर अधिक समय तक केन्द्रित रख पाता है। बच्चों के स्वाभाव में यह विशिष्टता देखने को मिलती है वह स्व-सहभगिता लेते हुए विभिन्न क्रियाओं एवं गतिविधियों के माध्यम से कुछ सीखने व आनंद प्राप्त करने का प्रयास करता है। एक बच्चा असहाय जीव से सहाय जीवधारी बनने की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं गतिविधियों में भाग लेता हुआ अधिगम करता है। क्रियाओं एवं गतिविधियों में सभी बच्चों की स्वभावता अधिक रूचि होती है एवं उनका अभिज्ञान व ध्यान इन पर अधिक केन्द्रित रहता है। इसी कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विभिन्न क्रियाओं या गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा प्रदान करने पर अधिक बल दिया जा रहा है। इनके माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का अधिक प्रयास इस लिए भी किया जाता है क्योकि किसी भी क्रिया या गतिविधि में प्रतिभाग करने पर बच्चे की एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियां एक साथ सक्रिय रहती है जिस कारण अधिगम ग्रहणशीलता की सीमा उच्च हो जाती है एवं अधिगमित तथ्य,विषय या ज्ञान चिर स्थायी रूप से स्मरण हो जाते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

1. गतिविधि या क्रिया की अवधारणा को परिभाषित कर सकेंगे।
2. बाल केन्द्रित शिक्षा की आवश्यकता की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बाल केन्द्रित शिक्षा के महत्व को स्पस्ट कर सकेंगे।
4. बाल केन्द्रित शिक्षा के आधारों का वर्णन कर सकेंगे।
5. बाल केन्द्रित शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे।
6. बाल केन्द्रित शिक्षा के संदर्भ में गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का वर्णन कर सकेंगें।
7. रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिंतन की व्याख्या कर सकेंगे।
8. जॉन डीवी की शैक्षिक विचारधारा को स्पस्ट कर सकेंगे।
9. प्लेटो के शैक्षिक चिंतन की उपादेयता को स्पस्ट कर सकेंगे।
10. मार्टिन बुबेर के बाल केन्द्रित शैक्षिक चिन्तन की विवेचना कर सकेंगे।
11. बाल केन्द्रित शिक्षा के संदर्भ में पाउलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 गतिविधि अथवा क्रिया की अवधारणा

सामान्य रूप में क्रिया या गतिविधि से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से हैं जो वास्तविक एवं सहभागी अनुभवों के माध्यम से सीखने को प्रोत्साहित करती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो एक व्यक्ति या समूह के द्वारा वास्तविक परिस्थितियों में प्रतिभाग करते हुए संपन्न की जाती है। यह अपने आप में स्व-निर्देशित या समूह निर्देशित हो सकती है एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में यह एक सामाजिक रचनात्मक दृष्टिकोण परिपूर्ण एक प्रक्रिया है जिसके अपने निहित शैक्षिक प्रयोजन होते है। गतिविधि या क्रिया एक प्रकार की वह प्रक्रिया है जिसमें किसी चेतना पूर्ण प्रयास के माध्यम से शारीरिक व मानसिक रूप से किसी कार्य या प्रक्रिया में शामिल होते हुए कोई व्यक्ति सुख एवं आनंद को प्राप्त करता हुआ विशेष ज्ञान या अनुभव का अर्जन करता है। गतिविधि किसी कार्य को करने या आनंद प्राप्ति हेतु विशिष्ट पद्धतियों से पूर्णता प्राप्त करने की एक संगठनात्मक इकाई है जिसमें किसी विशेष परिस्थिति में कई कार्य या चीजें एक साथ क्रियान्वित हो रही होती है। किसी गतिविधि की प्रकृति व्यक्तिगत या सामूहिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। गतिविधि का प्रत्यय और गतिविधि की अवधारणा को स्वभावता अंतर्विषयक रूप में ग्रहण किया जाता है। किसी भी गतिविधि का स्वरुप दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, और शारीरिक पहलूओं आदि से सम्बंधित हो सकता है।

इस धरातल पर मानव की सबसे पहली गतविधि जन्म के समय उसका रोना माना जाता है और वह अपने प्रारंभिक काल में अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति रोने की गतिविधि के माध्यम से करता है। विकास की विभिन्न समयकालों से गुजरता हुआ नवीन अनुभवों के अर्जन व अधिगम के फलस्वरूप वह अपनी गतिविधिओं को भी परिवर्तित एवं परिमार्जित करता रहता है। उसका अपनी क्रिया-विधियों या गतिविधियों में परिवर्तन एवं परिमार्जन की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। प्रारंभिक समयकाल में मानव केवल अवलोकन के आधार पर प्राप्त अनुभवों को स्मृति में संचित करता है फिर धीरे-धीरे सुख एवं आनंद प्रदान करने वाले अनुभवों को अनुकूलन करने के साथ-साथ उनका अनुकरण भी करने लगता है। मानव विकास के क्रम में पहले व्यक्तिगत रूप से किसी क्रिया या गतिविधि का संपादन करता है किन्तु जैसे-२ परिपक्वता का विकास होता जाता है वह दूसरों के साथ मिलकर व सहयोग करते हुए क्रियाओं व गतिविधियों का संपादन करता हुआ नवीन अनुभवों का अर्जन व अधिगम करता है।

बालक के मनोविज्ञान को समझते हुए व उसकी आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा एवं शिक्षण की व्यवस्था का नियोजन करना तथा उसके अधिगम में आने वाली कठिनाइयों को दूर करना बाल केन्द्रित शिक्षा का मुख्य ध्येय होता है। बाल केन्द्रित शिक्षा के अंतर्गत बच्चों की रुचियों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा का विधान किया जाता है। बाल केन्द्रित शिक्षा में कक्षा शिक्षण में भी व्यक्तिगत शिक्षण प्रदान करने को महत्त्व दिया जाता है। इसमें बच्चे का व्यक्तिगत अवलोकन व निरीक्षण कर उसकी दैनिक कठिनाइयों को निवारण करने का प्रयास किया जाता है। बाल केन्द्रित शिक्षा में बच्चे की शारीरिक और मानसिक योग्यताओं के विकास के स्तर एवं परिपक्वता के आधार पर शिक्षण का नियोजन किया जाता है तथा बच्चे के व्यवहार और व्यक्तित्व में असामान्यता के लक्षण होने पर जैसे-

बौद्धिक दुर्बलता, समस्याग्रस्त बच्चे, रोगी बालक, अपराधी बालक इत्यादि का भी निदान करने का प्रयास इसके माध्यम से किया जाता है। बाल केन्द्रित शिक्षा के आभाव में बच्चों में व्याप्त दोषों एवं समस्याओं का निवारण कर पाना आसान नहीं होता।

2.4 बाल केन्द्रित शिक्षा

आधुनिक युग में यह एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन है जब विषय-केन्द्रित शिक्षा का स्थान पर बाल-केन्द्रित शिक्षा ने लिया। इस स्वरुप में सम्पूर्ण शैक्षिक विषयों एवं क्रियाओं व गतिविधियों का नियोजन बच्चे को केन्द्र में रख कर किया जाने लगा। यह परिवर्तन प्रयोगवादी विचारधारा पर आधारित है जिसका अभिमत था कि ' अनुभव किसी व्यक्ति के वातावरण की भांति स्थिर नहीं है इस कारण पाठ्यक्रम में पूर्व निर्धारित पाठ्यवस्तु को आधार न बनाकर बच्चों की रुचियों एवं आवश्यकताओं को केन्द्र में रखा जाए। बाल केन्द्रित शैक्षिक व्यवस्था में बच्चे की परिवर्तित आवश्यकताओं, अभिप्रायों, सवेंगो आदि को आधार बनाया जाता है।'

बाल केन्द्रित शिक्षा में बच्चों की मूल प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं और संवेगों पर आधारित शैक्षिक योजना का स्वरुप निर्धारित किया जाता है साथ ही साथ इसमें शिक्षा के उस नूतन व नवीन व्यूहरचनाओं को सुमेलित करने का प्रयास किया जाता है जो बच्चों की आवश्कताओं की प्रतिपूर्ति में सहायक हो और उनके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक व आध्यात्मिक पक्षों का सन्तुलित व समुचित विकास किया जा सके।

2.4.1 बाल केन्द्रित शिक्षा के आधार

बच्चों को क्रियाशील रखकर शिक्षा प्रदान करना ही बाल केन्द्रित शिक्षा का मुख्य प्रयोजन है। इस शिक्षा का ध्येय है कि बच्चों को क्रिया या गतिविधि के माध्यम से संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक स्तर पर क्रियाशील करते हुए शिक्षा प्रदान करना। इस व्यवस्था का अभिमत है कि बच्चों के ज्ञान या अनुभव का निर्माण उनके द्वारा विभिन्न क्रियाओं या गतिविधियों में प्रतिभाग का परिणाम होता है।

इसके अंतर्गत बच्चों को महापुरुषों, वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं, नायकों के अनुकरणीय व्यवहार, नैतिक कहानियों, व् नाटकों आदि का उदहारण प्रस्तुत कर अभिप्रेरित किया जाता है साथ ही साथ विभिन्न प्रकार की गतिविधियों व क्रियाओं में प्रतिभाग करते हुए निश्चित तथ्यों या विषयों का भी ज्ञान व अनुभव प्रदान किए जाने का प्रयास किया जाता है। बच्चों के जीवन से जुड़े हुए ज्ञान एवं अनुभवों को क्रियाओं एवं गतिविधियों के माध्यम से उद्देश्यपरक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

2.4.2 बाल केंदित शिक्षा के उद्देश्य

बाल केंदित शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि-

- बच्चे को उनकी योग्यता, क्षमता और रूचि के अनुरूप अधिगम ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध कराना।
- बच्चो को अधिक से अधिक रचनात्मक कार्य करने व उसमें प्रतिभाग करने के अवसर देना एवं विभिन्न प्रकार के क्रियात्मक व गतिविधि आधारित शैक्षिक कार्यक्रमों को उपलब्ध कराना।
- बच्चों के विषयी विषयों को उनके विद्यालीय जीवन, घर, आस-पड़ोस के जीवन से जोड़ते हुए अध्ययन के अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। बच्चों को स्कूल में अपने वाह्य अनुभवों को अभिव्यक्त करने के अवसर दिया जाना। उन्हें अपनी बातों को अभिव्यक्त करने का अधिक से अवसर प्रदान करना।
- बच्चों को शैक्षिक वातावरण में आत्म-क्रिया के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना । उन्हें स्वयं से कार्य या क्रिया करने, खोजने, अन्वेषण करने नियम जानने व बनाने आदि के अवसर प्रदान करना।
- बच्चों के समक्ष शैक्षिक वातावरण का प्रारूप आदर्श या प्रतिमान के रूप में इस प्रकार से प्रस्तुत करना कि वह अपने आचारण में नैतिक एवं मूल्यपरक शिक्षा को आत्मसात कर सके। इसके लिए विद्यालय का वातावरण व दैनिक क्रिया-कलापों का स्वरुप आदर्शवादी रूप में प्रस्तुत करना।
- बच्चों के वैयक्तिक अंतर के महत्व को स्वीकार करना एवं प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमताओं और कौशलों को व्यक्त करने के समुचित अवसर प्रदान करना। जैसे उन्हें संगीत, कला, नाट्य, चित्रकला, साहित्य, नृत्य, खेल-कूद एवं प्रकृति के प्रति अनुराग इत्यादि के अवसरों के माध्यम से अधिगम के अवसर उपलब्ध कराना।

2.4.3 बाल केन्द्रित शिक्षा के अंतर्गत पाठ्यक्रम का स्वरुप

बाल केन्द्रित शिक्षा के पाठ्यक्रम में बच्चे को शिक्षा प्रक्रिया के केंद्रबिंदु में रखा गया है। बच्चों की रुचियों, आवश्यकताओं एवं योग्यताओं व क्षमताओं के आधार पर पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। इस प्रकार की शिक्षा के अंतर्गत पाठ्यक्रम का स्वरुप निर्धारण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पहलूओं में ध्यान दिया जाना चाहिए:-

- पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम बच्चों के पूर्वज्ञान एवं उनके पास-पड़ोस के वातावरण पर आधारित होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम बच्चों की रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम नम्य व लचीला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम बच्चों के चारों तरफ व्याप्त वातावरण के अनुरूप होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करने वाला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम समाज एवं राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजित होना चाहिए।

- पाठ्यक्रम बच्चों के मानसिक स्तर एवं परिपक्वता के अनुकूलर होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत भिन्नता को समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।
- गतिविधि या क्रिया आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा पर विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों का अभिमतों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

गतिविधि या क्रिया आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा पर क्रिया-वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों आदि ने इस पर बहुत अध्ययन किया है और इस बिन्दु पर अपने-अपने विचारों को भी व्यक्त किया है। गतिविधि या क्रिया आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा पर इनके विचारों में अनेकों विभिन्नताएं है। यहाँ पर कुछ शिक्षाशास्त्रियों के विचारों पर चर्चा की जा रही है।

अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक युग में विषय केन्द्रित शिक्षा का स्थान किस प्रकार की शिक्षा ने लिया?
2. बाल केन्द्रित शिक्षा के केन्द्र बिन्दु में किसे रखकर शिक्षा का नियोजन किया जाता ?
3. इस धरातल पर मानव की सबसे पहली गतविधि किसे माना जाता है?
4. किसी चेतना पूर्ण प्रयास के माध्यम से शारीरिक व मानसिक रूप से किसी कार्य या प्रक्रिया में शामिल होते हुए कोई व्यक्ति सुख एवं आनंद को प्राप्त करता हुआ विशेष ज्ञान या अनुभव का अर्जन करता है। इस प्रक्रिया को क्या कहते हैं ?
5. बाल केन्द्रित शिक्षा के विधान में बच्चे किन पहलूओं को अधिक ध्यान दिया जाता है?

2.5 गाँधी के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

गाँधी जी एक महान राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री थे। गाँधी जी के शैक्षिक चिंतन की अभिव्यक्ति हिन्द स्वराज नामक पुस्तक व हरिजन नामक पत्र एवं बेसिक शिक्षा योजना में अभिव्यक्त होती है। इनकी बेसिक शिक्षा योजना भारत की राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता पर आधारित एक अदभुत शैक्षिक योजना है। इस शिक्षा योजना का उद्देश्य बच्चे को ज्ञान एवं कौशल के अर्जन के साथ-साथ उन्हें व्यावहारिक जीवन में इनके उपयोग करने के लिए सक्षम एवं आत्मनिर्भर बनाने से है। बेसिक शिक्षा योजना शिक्षा बच्चे की बुनियादी आवश्यकताओं एवं रुचियों मध्य एक ऐसे सामंजस्य को स्थापित करने का प्रयास करती है जिसका केन्द्र बिन्दु सदैव बच्चे हो।

शिक्षा को लेकर गाँधी जी का चिंतन निश्चित रूप से व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विचार से ओतप्रोत है। 1937 में गाँधी जी द्वारा बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में प्रस्तावित नई तालीम या नई शिक्षा के केन्द्र में एक स्वतन्त्र बच्चे की परिकल्पना निहित थी, इसके साथ-साथ यह आत्मनिर्भरता तथा समाज के हित से भी सम्बंधित था। गाँधी जी स्वतन्त्र भारत में एक न्यायसंगत, शान्तिपूर्ण, गैर-लाभकारी

सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे। जिस परिकल्पना की अभिव्यक्ति नई तालीम की योजना में निहित थी।

गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा में प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग की व्यवस्था लाने का भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए। प्रतिस्पर्द्धा अर्थात बच्चों को 'प्रथम' और 'अन्तिम' के रूप में आंकलित करना ही ईर्ष्या और बेईमानी को जन्म देता है। बच्चे को उसके दिलचस्पी के विषयों पर काम करने के अधिक अवसर प्रदान करने का प्रयास किया जाना चाहिए इससे उनके लिए उन्हें किसी बनावटी या कृतिम उत्प्रेरक की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बच्चों में सहयोग की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसके लिए प्रत्येक कक्षा में कुछ समय बच्चों द्वारा इकट्ठे काम करने के लिए अलग से रखा जा सकता है – जैसे, गणित की कुछ समस्याओं के लिए या कला के किसी प्रोजेक्ट के लिए आदि। इस तरीके की अनेकों क्रियाओं एवं गतिविधियों का शिक्षा में नियोजित करने का सुझाव गाँधी जी के द्वारा दिया गया। उदाहरण के रूप में जैसे चर्चा, इसको कक्षा की एक गतिविधि बनाने से उन्हें अनेकों साथियों के साथ कार्य करने का अवसर मिलता है जो बच्चों में सहयोग के साथ कार्य या प्रतिभाग करने और दूसरों के साथ सम्पर्क में आने का अवसर प्रदान करता है। सहयोग की यह भावना धीरे-धीरे बच्चों में साझेपन और शान्तिपूर्ण तरीके से मिलकर काम करने की प्रवृति का विकास करती है।

गाँधी जी ने नई तालीम में बुनियादी शिक्षा की योजना में सिर्फ सातवें से चौदहवें साल तक के आयु वय के लिए प्रस्तावित है। जिसका मुख्य ध्येय इन्द्रियों का विकास और उनका समन्वय हैं। इनका मानना था कि शिक्षण का माध्यम प्रारम्भिक स्तर पर मातृ-भाषा ही होन चाहिए। गाँधी ने व्यक्तिगत प्रयोगों एवं अनुभवों के आधार पर एक ऐसी शैक्षिक प्रारूप से सभी अवगत करवाया जिसकी पृष्ठभूमि की आधारशिला भी भारतीयता पर अवलम्बित है।

शिक्षा की वैश्विकता में ख़ासतौर पर बच्चों का सम्मान करने के संदर्भ में उनका विश्वास था। आज भी शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों का चहुँमुखी विकास करना है। गांधी जी बच्चे की नैसर्गिक अच्छाई में यक़ीन रखते थे, चीज़ों को करके सीखने पर ज़ोर देते थे, साथ ही बनावटीपन और आडंबर के प्रखर विरोधी थे। उन्होंने शिक्षा को चारदीवारी से मुक्त कराने का प्रयास किया और कहा कि बच्चे को प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा दी जानी चाहिए। वह मानते थे कि बच्चों को शिक्षा स्वतंत्रता के वातावरण में दिया जाना चाहिए। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज की आधुनिक, बाल-केंद्रित और मानवतावादी शिक्षण के सरोकार भी यही हैं।

2.6 रवींद्रनाथ टैगोर के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

विश्व विख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री रवींद्रनाथ टैगोर शिक्षा को 'जीवन के अपूर्व अनुभव के स्थाई रूप' के बतौर अपने अनुभव अभिव्यक्त करते है। उनका मानना था कि ''शिक्षा बच्चों की संज्ञानात्मक अनभिज्ञता के रोग का उपचार करने वाले तकलीफ़देह अस्पताल की तरह नहीं है, बल्कि

यह उनके स्वास्थ्य एवं जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है साथ ही साथ उनके मस्तिष्क के चेतना की एक सहज अभिव्यक्ति है।"

उन्होंने अपने विचारों में यह अभिव्यक्त किया है कि लोगो की सामान्य अवधारणा है कि वह अधिकतर बच्चों को इशारों एवं निर्देशों पर नाचने वाली कठपुतलियां के रूप में समझते हैं और शिक्षा के एक ऐसे अप्राकृतिक स्वरुप में विश्वास करते है जो बच्चों को बचपन से महरूम कर देता है। बच्चों को अपने अध्ययन के लिए केवल स्कूल की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनको एक ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिए जिससे उनकी मार्गदर्शक चेतना व्यक्तिगत प्रेम के रूप में अभिव्यक्त हो। टैगोर जी का मानना था कि 'प्रेम और कर्म' के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन में सीखने के लिए तीन सिद्धांतों को अधिक महत्वपूर्ण माना हैं-

1. स्वतंत्रता
2. सृजनात्मक स्व-अभिव्यक्ति
3. प्रकृति और इंसानों के साथ सक्रिय सहभागिता

उनका कहना था कि स्वतंत्रता की स्थिति में ही बच्चे वास्तविक एवं सही मयानों में शिक्षा के अर्थ और औचित्य के अनुरूप अनुभवों को ग्रहण कर पाएंगे।उन्होंने तत्कालीन शैक्षिक परिवेश में स्थापित विद्यालयों को 'शिक्षा की फ़ैक्ट्री, कृतिम, रंगहीन, दुनिया के सही सन्दर्भों से विलग और सफेद दीवालों के बीच से झांकती मृतक के आँखों की पुतली' आदि अभिव्यंजनाओं से विभूषित किया है। बच्चों के संदर्भ में वह स्वतंत्र, मुक्त गतिविधि और उनके स्वास्थ्य व शारीरिक विकास के लिए खेल के अधिक हिमायती थे। उन्होंने कहा कि, "अगर बच्चे कुछ नहीं सीखते हैं या कुछ नहीं सीखना चाहते है तो भी उनको खेलने का पर्याप्त एवं समुचित समय दिया जाना चाहिए। बच्चों के खेलने का प्रारूप कुछ भी हो सकता है जैसे- पेड़ों पर चढ़ना, तालाब में तैरना, फूल तोड़ना और छिलना, प्रकृति के साथ हज़ारों प्रकार की शरारतें करना आदि। बच्चे इस प्रकार की क्रियाओं एवं गतिविधियों के माध्यम से अपने शरीर को पोषण, मन को ख़ुशी और बचपन की नैसर्गिक प्रेरणाओं को संतुष्टि प्रदान करने का प्रयास करते है। इन्होनें इस वास्तविकता अत्यंत दुःख प्रकट किया कि तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था किताबों को अधिक प्राथमिकता प्रदान कर इनकी गुलामी को प्रोत्साहन देती थी। भारत और दुनिया के तमाम विकसित एवं विकाशील देशों में यह स्थिति आज भी व्याप्त है।

टैगोर जी ने अपने शैक्षिक विमर्श में एक नूतन सिद्धांत को प्रतिपादित किया जिसे गतिविधि के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। यह शैक्षणिक विधियों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। यह इस दार्शनिक अवधारणा पर आधारित है कि शरीर और मन को विभाजित नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह स्पस्ट रूप में व्यक्त किया कि शारीरिक गतिविधि से केवल शरीर को ही स्फूर्ति नहीं मिलती अपितु इससे मन भी ऊर्जावान एवं स्पूर्तिमय हो जाता है। इसी सिद्धांत के कारण ही उन्होंने चलते-फिरते या सचल विद्यालयों की स्थापना पर बल दिया और इन्हें एक आदर्श विद्यालय की संज्ञा प्रदान की। गुरुदेव अपने विद्यालय को

प्रकृति की गोद में स्थापित करना एवं शिक्षण-अधिगम के समय पूर्णतया प्राकृतिक परिवेश का होना आवश्यक मानते है। इनका विचार था कि प्राकृतिक वातावरण में अध्ययन करने से स्थाई एवं प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है और मन की व्याधियों का भी अंत सुरम्य एवं मनोरम वातावरण हो जाता है।

उनका मानना था कि चलते-चलते पढ़ाना अथवा सीखना शिक्षा प्रदान करने का सबसे अच्छा तरीका है। ऐसा इसलिए क्योंकि चलते समय हमारा मानसिक संकाय ज़्यादा जाग्रत एवं सजग रहता है और किन्हीं भी चीज़ों को ग्रहण करने वाली स्थिति में होता है। जिस कारण इस समय सीखा या ग्रहण किया गया ज्ञान या सूचना अवधारणा में अधिक समय तक स्थायी रहता है। टैगोर जी शांति निकेतन में इस प्रकार के शैक्षिक वातावरण प्रदान किया जो बच्चों के नियंत्रण में हो यहाँ पर बच्चे अपनी क्रियाओं व गतिविधियों में स्वयं ही नियंत्रण करते थे एवं अनुचित कार्य करने पर उनके ही द्वारा स्व दण्ड का विधान था।

टैगोर जी के अनुसार सक्रिय रूप से सीखने की उपयोगिता- इनका मानना था कि सक्रिय रूप से सीखना किसी भी जीवित इंसान के लिए प्रत्येक दृष्टिकोण से उपयोगी होता है क्योकि कक्षा के स्थिर वातावरण में जो शिक्षा प्रदान की जाती है उससे शिक्षा और बच्चों की अपनी पहल के बीच एक अलगाव की भावना को जन्म देती है। इन्होनें अपने इस सिद्धांत को 'शांति निकेतन' में अपनाया । जहाँ पर इन्होनें शैक्षणिक व्यवस्था का नियोजन अपनी विचार व चिंतन के आधार पर गतिविधि सिद्धांत के अनुरूप किया।

2.7 प्लेटो के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

प्लेटो एक महान शैक्षिक दार्शनिक थे इनके शैक्षिक चिंतन की अभिव्यक्ति इनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिपब्लिक' एवं 'लाज' में देखने को मिलती है। प्लेटो के शैक्षिक चिंतन का ध्येय बुराइयों की समाप्ति एवं सद्गुणों का विकास, सत्य व शिव की प्राप्ति, राज्य की सुदृढता, नागरिकता की शिक्षा, सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास आदि है। प्लेटो अपने शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का विधान करते है जिसमें बच्चों के लिए कविता, गणित, खेलकूद, कसरत, सैनिक-प्रशिक्षण, शिष्टाचार तथा धर्मशास्त्र की शिक्षा दिए जाने आवश्यकता को व्यक्त करते है। यह बच्चों के लिए खेल-कूद को अत्यंत आवश्यक मानते है किन्तु इसका ध्येय प्रतियोगिता को जीतना न होकर स्वस्थ शरीर तथा मनोरंजन की प्राप्ति के रूप में स्वीकार करते है। इनका मानना था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क एवं आत्मा का निवास संभव है। यह अपनी शिक्षा व्यवस्था में कसरत (जिमनास्टिक) एवं नृत्य को अधिक प्राथमिकता देते है और इसके समन्वय का आग्रह करते है। इनका मानना था कि ' कसरत विहीन संगीतज्ञ कायर होता है और संगीत विहीन कसरती पहलवान आक्रामक पशु के समान होता है'। इसी कारण यह इन दोनों को युद्धकाल एवं शांतिकाल दोनों ही परिस्थितियों में अत्यंत उपयोगी मानते है।

प्लेटो का यह मानना था कि बच्चों को शारीरिक प्रशिक्षण एवं कसरत (व्यायाम) के विषय में उनके बचपन से ही सिखाया जाना चाहिए। इनका मानना था कि शारीरिक शिक्षा की भांति बच्चों का सांस्कृतिक प्रशिक्षण भी छोटी अवस्था से ही आरंभ कर देना चाहिए। अभिभावक कहानी के माध्यम से बच्चों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में परिचित करा सकते हैं। लेकिन इसके यह ध्यान रखना

चाहिए कि उन्हें वही कहानियां सुनाई जानी चाहिए जो उनकी उम्र एवं मानसिक परिपक्वता स्तर के लिए उपयुक्त हों। कहानियों के अतिरिक्त खेल को भी प्लेटो बच्चों के चरित्र विकास में सहायक मानते हैं। इसलिए उनका मानना था कि एक पूर्ण विकसित मानव के रूप में जो भी शिक्षा या ज्ञान आवश्यक है, उसकी शिक्षा उसको बचपन से ही खेलों, क्रियाओं व गतिविधियों के माध्यम से प्रदान किया जाना चाहिए। यह खेलों या क्रियाओं या गतिविधियों का नियोजन इस प्रकार से करने का सुझाव देते है कि बच्चे को उसकी रूचि, योग्यता व क्षमता के अनुकूल विकास करने में सहायक हो। जैसे कि यदि किसी बच्चे में अच्छा भवन निर्माता बनने का गुण है, तो उसके खेलों की रूपरेखा इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए जिससे उसको भवन–निर्माण की बारीकियों की जानकारी खेल–खेल में मिलती रहे । इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति काष्ठकला में रुचि रखता है तो उसको उस उद्यम के बारे में बताया जाना चाहिए. इससे बच्चों की रुचि में स्वाभाविक निखार आएगा एवं बच्चे आगे चलकर अपने कार्य में पूरी तरह दक्ष सिद्ध होंगे।

प्लेटो विचार था कि तीन से छह वर्ष तक के बच्चों को माता–पिता अपनी देखरेख में खेलने का समुचित अवसर दें। इस कार्य के लिए वह गृहणियों को अधिक उपयुक्त मानते है क्योकि प्रारंभिक लालन-पालन का कार्य गृहिणियां अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती हैं। बच्चे को छह वर्ष का होते ही उसे स्कूल या विद्यालय में प्रवेश दिया जाना चाहिए। वहाँ उन्हें प्रारंभ में पढ़ना, लिखना और गिनती करना सिखाया जाना चाहिए। छह वर्ष के बाद लड़के और लड़की को अलग–अलग, उनके कार्य और रुचि के अनुसार शिक्षा देने की अनुशंसा प्लेटो ने की है लेकिन उनका यह विधान किसी भी प्रकार के लैंगिक भेदभाव से परे है। प्लेटो के अनुसार दस वर्ष का होते ही बालक की विधिवत शिक्षा या एक प्रकार से पूर्ण औपचारिक शिक्षा आरंभ कर दिया जाना चाहिए। इस अवस्था से लेकर अगले तीन वर्ष तक उन्हें अक्षर–ज्ञान दिया जाना चाहिए। तेरह वर्ष की अवस्था से बच्चों को संगीत की शिक्षा दी जानी चाहिए इस अवस्था में बच्चे संगीत की धुनों को समझने योग्य हो जाते है। इसके पश्चात पूरे तीन वर्ष तक न इससे कम और न इससे अधिक बच्चे को संगीत आदि कलाओं के विधिवत अध्ययन के समुचित अवसर दिया जाना चाहिए। प्लेटो एथेंस की समकालीन शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट थे उनका मानना था कि वर्तमान शिक्षा–पद्धति अंकगणित तथा ज्योतिष के अध्यापन के प्रति उदासीन है जबकि प्राचीन यूनान में ये दोनों ही विषय अत्यंत लोकप्रिय थे। इसलिए वह बच्चों को गणित और ज्योतिष पढ़ाए जाने के पक्ष में थे। इनके अनुसार नृत्य, संगीत, व्यायाम तथा गणित जैसे विषय शिक्षा का अनिवार्य अंग होने चाहिए और बिना किसी लैंगिक भेदभाव के यह शिक्षा सभी को अनिवार्य रूप से दी जाना चाहिए। संगीत, गणित तथा व्यायाम की पढ़ाई के अलावा बच्चों को सभी प्रकार के खेल भी सिखाना जरूरी है, ताकि वे शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहें।

प्लेटो का मानना था कि व्यक्ति की संपूर्ण शिक्षा अनिवार्य निर्देशों के दबाव से मुक्त रहनी चाहिए। किसी भी मुक्त आत्मा अर्थात बच्चे को पराधीनतापूर्ण स्थितियों में अध्ययन नहीं करना चाहिए और न ही उसे जोर–जबरदस्ती से सीखने का प्रयास किया जाना चाहिए क्योकि इस प्रकार की सिखाया हुआ ज्ञान मस्तिष्क में अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता है।

प्लेटो ने शिक्षा के सभी स्तरों पर अपने शैक्षिक विमर्श की व्याख्या की। इसका विशद वर्णन उनके महान ग्रंथों में परिलक्षित होता है और इन्होनें अपने शैक्षिक विमर्श को साकार रूप प्रदान करने के लिए अकादमी की स्थापना की।

2.8 जॉन डीवी के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

जॉन डीवी अनुभव को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते है। इनके अनुसार बच्चों को अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए किन्तु अवसरों की उपलब्धतता बच्चों के आयुवय व मानसिक स्तर के अनुकूल किया जाना चाहिए। डीवी शिक्षा का उद्देश्य इस रूप में निर्धारित करने का प्रयास करते है कि जिससे बच्चों का सर्वंगीण विकास हो सके व उनका भावी जीवन जीवन सुखमय हो सके साथ ही साथ वह एक समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सके।

डीवी बच्चों को करके सीखने एवं प्रयोग द्वारा शिक्षा प्रदान करने के पक्षधर थे। इनका मानना था कि इस पद्धति से बच्चों में सहयोग, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता आदि भावों का विकास होता है तथा मौलिकता, सृजनशीलता आदि के गुणों का उत्तरोत्तर विकास होता है। शिक्षा प्रदान करते समय बच्चों के समक्ष ऐसी परिस्थितिया तैयार या उत्पन्न की जानी चाहिए जो उनमें भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से सम्बंधित समस्याओं का समाधान करने का कौशल का विकास कर सके।

डीवी जी का अभिमत था कि बच्चे को उसकी शिक्षा के लिए खुले एवं स्वतन्त्र वातावरण को प्रदान किया जाना चाहिए एवं उसके ऊपर किसी भी प्रकार के अनावश्यक दबाव व अंकुश या भय को आरोपित नहीं किया जाना चाहिए और न ही बच्चों को किसी भी प्रकार के नैतिक या अनैतिक कृत्यों या कार्यों को करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए क्योकिं इससे उनकी स्वतंत्रता, मूल प्रवृति एवं भावनाओं का विकास परिसीमित हो सकता है। बच्चों को ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो उनके ज्ञानर्जन के लिए सर्वथा उपयुक्त हो साथ ही साथ बच्चों को क्रियाशील, जिज्ञासु व सीखने के लिए तत्पर रखने में सहायक हो। बच्चों को स्वक्रिया, गतिविधियों में प्रतिभाग करने एवं प्रयोग करने के समुचित अवसर दिए जाने चाहिए। डीवी जी ने अपने शैक्षिक विचारों को अपने ‘ प्रयोगशाला विद्यालय’ में साकार रूप में दिया जहाँ पर बच्चों को स्वयं करके सीखने की शिक्षा एवं प्रेरणा दी जाती थी एवं उन्हें अपना कार्य चुनने, उसकों पूरा करने, अपने आदर्शों एवं मूल्यों के निर्माण लिए स्वतंत्रता प्रदान की जाती थी। इनका विचार था कि यदि बच्चों को स्वतंत्रता पूर्वक उसकी अपनी योग्यता, क्षमता, रूचि, गति एवं सामर्थ्य के अनुसार सीखने दिया जाए तो वह अपने रूचि के क्षेत्र में सदैव सफल रहेगें।

जॉन डीवी ने बाल केन्द्रित पद्धति शैक्षिक व्यवस्था का रूप प्रस्तुत जिसमें उन्होंने बच्चे की रूचि के अनुसार शिक्षा प्रदान किए जाने का सुझाव दिया। डीवी जी का मानना था कि बच्चे की रूचि एवं प्रयास

को शिक्षा में सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए। शिक्षकों को बच्चों की रूचि क्रियाकलापों की योजना बनाने के पूर्व, अवश्यता एवं महत्व को समझना चाहिए। अगर बच्चों को स्वयं कार्यक्रम बनाने का अवसर दिया जाय तो वह रूचि के अनुसार ही कार्यक्रमों को बनायेंगे। सबसे अच्छा साधन यह होगा कि बच्चों को बिना भय या दबाव के कार्य करने के अवसर दिए जाए जहाँ वह वह स्वतंत्रता पूर्वक अपने कार्यक्रम बना सके।

इनका मानना था कि एक बच्चा न केवल विद्यालय मात्र का ही सदस्य नहीं होता अपितु वह परिवार एवं समाज का भी सदस्य होता है। बच्चे के समक्ष अनेकों प्रकार की शैक्षिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएं उपस्थित होती है जिनका समाधान वर्तमान शैक्षिक प्रणाली से हो पाना असंभव है क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली मात्र पुस्तकों पर आधारित एवं अमनोवैज्ञानिक है। शिक्षक का यह परम दायित्व है कि वह सबसे पहले बच्चे को समझने का प्रयास करे इसके उपरान्त उसकी समझ, योग्यता, इच्छा, दृष्टीकोण एवं क्षमता के अनुकूल उसके समक्ष परिस्थितियों का निर्मित किया जाना चाहिए एवं उसे स्व से समस्या में विचार करने व उसका समाधान निकालने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

2.9 मार्टिन बुबेर के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

मार्टिन बुबेर वियना में जन्मे एक महान शिक्षाशास्त्री थे। मार्टिन बुबेर, संवादात्मक अस्तित्व के अपने विश्लेषणात्मक मीमांसा के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसा कि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ' मैं और तुम' में वर्णित किया है। यद्यपि उन्होंने कई क्षेत्रोँ में कार्य किया एवं अपने विचारों को प्रस्तुत किया किन्तु धार्मिक चेतना, आधुनिकता, बुराई की अवधारणा, नैतिकता, शिक्षा और बाइबिल सम्बन्धी विचार अत्यंत प्रसिद्ध है।

इन्होनें सीखने या अधिगम को अपनी तरह से परिभाषित किया। इनका मानना था कि बच्चा सबसे पहले संबंधपरक दुनिया का संश्लेषण और परिवर्तित हो रही दुनिया का अनुभव करके परंपराओं और मूल्यों को फिर से खोजने का प्रयास करता है। इनके अनुसार सीखना या अधिगम वास्तव में "अर्थ के लिए खोज" या कहा जा सकता है कि "एक व्यक्ति द्वारा प्रभावी दुनिया का चयन" अथवा "सुनिश्चित मूल्य-निर्णय प्राप्त करना" आदि प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

इनका मानना था कि बच्चे अपने विकासक्रम में अधिगम को अर्थपूर्ण बनाते हुए अपनी दुनिया के साथ समागम करते है और अपनी वास्तविकता के साथ प्रभावी रूप से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते है। बच्चे अपनी इस प्रक्रिया में चयन के कार्य के माध्यम से अपनी वास्तविकता के संदर्भ में दुनिया से हुए समागम या आमना-सामना के प्रतिफलस्वरुप प्रत्येक परिस्थिति में अर्थपूर्ण या महत्वपूर्ण सार को ग्रहण करते है। बुबेर महोदय का मानना था कि बच्चे अपनी प्रभावी दुनिया का निर्माण स्वयं करते है। इसीकारण उन्होंने कहा था शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक की प्रभावशाली भूमिका तो होनी चाहिए किन्तु बच्चों के "प्रभावी दुनिया के चयन" में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए।

इनका मानना था कि सीखना केवल एक महत्वपूर्ण परिणाम की प्राप्ति और व्यक्तिगत चयन की प्रक्रिया ही नहीं है अपितु सीखना या अधिगम बच्चे के विनयशील अन्वेषण और समझ की प्रक्रियाओं के माध्यम से आत्म-जागरूकता और आत्म-चेतना को केन्द्रित व मजबूत बनाते हुए उसके दुनिया के साथ संवादबद्धता से संबंधित कार्य के परिणाम को निरूपित करती है। एक बच्चा अपनी खोजपूर्ण प्रवृति के अनुरूप सबसे पहले स्वयं के विषय में जागरुक होना सीखता है फिर वह अपने अस्तित्व की उपस्थिति का परिमापीकरण किन्ही वाह्य सन्दर्भों के आधार पर करता है। बुबेर जी का मानना था कि केवल प्रारम्भिक अनुभवों के माध्यम से ही सीखना पूर्ण नहीं होता है और शिक्षा के लिए सचेतन एवं इच्छाशक्ति पूर्ण प्रयास का भी होना आवश्यक। एक बच्चा जब कोई ज्ञान या कौशल ग्रहण या अर्जित करता है तो उसके पीछे निश्चित रूप से संवाद की व्यवस्था या माध्यम निहित रहते है। इन्होनें संवाद को ही शिक्षा का हृदय माना है। संवाद के माध्यम से अपनी जिज्ञासा का उत्तर एवं दूसरों की जिज्ञासाओं की तृप्ति एवं समाज के विभिन्न आयामों के साथ स्व का सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

2.10 पावलो फ्रेरे के विचार में क्रिया या गतिविधि आधारित बाल केन्द्रित शिक्षा

ब्राजीलियन शैक्षिक विचारक एवं चिन्तक पावलो फ्रेरे के शिक्षिक चिंतन एवं दर्शन की अभिव्यक्ति उनके द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकों जैसे- पेडागाजी ऑफ़ अप्रेस्ड, पेडागाजी ऑफ़ होप, प्रौढ़ साक्षरता, एजुकेशन ऐज दि प्रैक्टिस ऑफ़ फ्रीडम, दि पॉलिटिक्स ऑफ एजुकेशन आदि में हुई। वे अपने देश में चले साक्षरता अभियान से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। इस दौरान उन्होंने अपने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया एवं अपने काम के दौरान होने वाले शोषण को गहराई से देखा, समझा और उसका विश्लेषण किया। इसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शिक्षा भी राजनीति है। जिस तरह राजनीति वर्गीय होती है, उसी तरह शिक्षा भी वर्गीय होती है। इन्होनें अपने शैक्षिक विचारों को अत्यंत समझपूर्ण तरीके एवं स्पष्टता से व्यक्त किया।

पावलो फ्रेरे के अनुसार शिक्षा का मुख्य आधार मानव का विश्वास है। शिक्षा तो एक प्रकार का प्रेम कर्म है एवं प्रेम में साहस को होना नितांत आवश्यक है। शिक्षा अपने आप में यथार्थ का विश्लेषण है और सत्य को प्रकट करने का एक माध्यम है एवं साथ ही साथ सृजनात्मक सवांद को जन्म देने की प्रक्रिया है। उनका विचार था कि व्यस्क शिक्षा का उद्देश्य लिखना पढ़ना सीखने के साथ साथ समाज का आलोचनात्मक संज्ञाकरण है जिसमें गरीब व शोषित व्यक्तियों को अपने समाजों, परिवेशों, परिस्थितियों और उनके कारणों को समझने एवं जानने की शक्ति मिले ताकि वे अपने पिछड़ेपन और गरीबी के कारण समझ सके और उन कारणों से लड़ने के लिए सशक्त हों अथवा उनका निराकरण का सके। इसके लिए उन्होंने सुझाव दिया कि किसी भी समुदाय में पढ़ाने से पहले शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह वहाँ अनुशोध करे और यह समझने का प्रयास करे कि वहाँ के लोग सामान्य वार्तालाभ में किन शब्दों का प्रयोग बहुतायत में करते हैं, उनकी क्या चिताएं हैं, वे क्या सोचते हैं, उनकी क्या आकांक्षाएं है आदि। फ़िर शिक्षक को यह प्रयास

करना चाहिए कि उसकी शिक्षा उन्हीं शब्दों, चिताँओं, चिंतन एवं आकांक्षाओं आदि को समाहित करते हुए शिक्षा का विधान करना चाहिए।

पाउलो फ्रेरे ने अपने शैक्षिक चिंतन को सरल से सरलतम रूप रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इनकी शिक्षा पद्धति को सरल रूप में एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता हैं। जैसे- वर्णमाला का "क, ख, ग" पढ़ाते समय "स" से "सेब" नहीं बल्कि "सरकार" या "साहूकार" या "समाज" भी हो सकता है. इस तरह से "स" से बने शब्द को समझाने के लिए शिक्षक इस विषय से जुड़ी विभिन्न बातों पर वार्तालाप व बहस प्रारम्भ करता है जिसमें पढ़ने वालों को वर्णमाला सीखने के साथ साथ, अपनी सामाजिक परिस्थिति को समझने में भी मदद मिलती है। जैसे - सरकार कैसे बनती है, कौन चुनाव में खड़ा होता है, क्यों हम वोट देते हैं, सरकार किस तरह से कार्य करती है, इत्यादि या फ़िर, क्यों साहूकार के पास जाना पड़ता है, किस तरह की ज़रूरते हैं हमारे जीवन में, किस तरह के ऋण की सुविधा होनी चाहिये, इत्यादि।

इस तरह वर्णमाला का हर वर्ण, पढ़ने वालों के लिए नये शब्द सीखने के साथ साथ, लिखना पढ़ना सीखने के साथ साथ, उनको अपनी परिस्थिति समझने का अवसर भी प्रदान करते है। फ्रेरे मानते थे कि व्यस्क गरीबों का पढ़ना लिखना व्यक्तिगत कार्य नहीं सामुदायिक कार्य है, जिससे वह जल्दी सीखते हैं और साथ साथ उनकी आलोचनक संज्ञा का विकास होता है, ताकि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें।

पाउलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारधारा के आधार पर प्राथमिक विद्यालय भी स्थापित किए गए। जहाँ पर बच्चों को इनके विचारों पर आधारित शिक्षा दी जाती है। इस शैक्षिक परिवेश का सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि बच्चों को हर बात को प्रश्न पूछ कर अपने आप समझने का अवसर दिया जाता था। इस विद्यालय की कक्षाओं में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि यहाँ बच्चों को कुछ भी रटने की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि सभी विषय प्रश्न-उत्तर के माध्यम से बच्चे स्वयं पढ़ें व समझने के अवसर दिए जाते है। बच्चा कुछ भी सोचे और कहे, उसे बहुत गम्भीरता से लिया जाता है। बच्चे केवल स्कूल की कक्षा में नहीं पढ़ते बल्कि उन्हें प्रकृति के माध्यम से भी पढ़ने सीखने का अवसर दिया जाता था। स्कूल की कक्षाओं में एक शिक्षक के साथ बच्चों का अनुपात बहुत कम रखा जाता था। सामान्यतया एक शिक्षक के अनुपात में केवल आठ या दस बच्चों को रखा जाता था, ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सके।

अभ्यास प्रश्न

6. गाँधी जी ने किस शिक्षा योजना में अपने विचारों को साकार रूप दिया?
7. रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने शैक्षिक दर्शन में सीखने के किन तीन सिद्धान्तों को महत्वपूर्ण माना है?
8. प्लेटो के किन दो प्रसिद्ध ग्रंथो में अपने शैक्षिक विचारों को अभिव्यक्त किया है?
9. किसने अपने शैक्षिक विचारों में ‘ प्रयोगशाला विद्यालय’ स्थापना पर जोर दिया?
10. किसने सीखना या अधिगम को वास्तव में "अर्थ के लिए खोज" के रूप परिभाषित किया?

2.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत क्रिया या गतिविधि आधारित शिक्षा की अवधारणा, इसकी आवश्यकता एवं उपादेयता, बाल केन्द्रित शिक्षा की अवधारणा, इसके आधार, पाठ्यक्रम स्वरुप आदि व्याख्या की गई है साथ ही साथ बाल केन्द्रित शिक्षा के संदर्भ में गाँधी जी, रविन्द्र नाथ टैगोर, प्लेटो, जॉन डीवी, मार्टिन बुबेर एवं पाउलो फ्रेरे आदि के शैक्षिक चिंतन का वर्णन किया गया है।

2.12 शब्दावली

1. क्रिया या गतिविधि : गतिविधि या क्रिया एक प्रकार की वह प्रक्रिया है जिसमें किसी चेतना पूर्ण प्रयास के माध्यम से शारीरिक व मानसिक रूप से किसी कार्य या प्रक्रिया में शामिल होते हुए कोई व्यक्ति सुख एवं आनंद को प्राप्त करता हुआ विशेष ज्ञान या अनुभव का अर्जन करता है।
2. बाल केन्द्रित शिक्षा: बाल केन्द्रित शिक्षा से आशय बच्चों की मूल प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं, रुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं और संवेगों आदि के आधार पर सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम का नियोजन करने से है।
3. करके सीखने एवं प्रयोग आधारित सीखना : इससे आशय उस शिक्षा पद्धति से है जो बच्चों में सहयोग, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता आदि भावों का विकास करते हुए एवं मौलिकता, सृजनशीलता आदि के गुणों का उत्तरोत्तर विकास सहायक हो तथा उन्हें क्रिया व प्रयोग के अवसर प्रदान करे।

2.13 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. बाल केन्द्रित शिक्षा
2. बच्चे/बालक/शिक्षार्थी
3. जन्म के समय उसका रोना
4. क्रिया या गतिविधि
5. बच्चों की रुचियों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं का
6. बेसिक शिक्षा योजना
7. स्वतंत्रता, सृजनात्मक स्व-अभिव्यक्ति, प्रकृति और इंसानों के साथ सक्रिय सहभागिता
8. रिपब्लिक एवं लाज
9. जॉन डीवी
10. मार्टिन बुबेर

2.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुनरो, पाँल (१९४७) ए ब्रीफ कोर्स इन दी हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, दी मैकमिलन, न्यूयार्क
2. शर्मा, जी० आर० (२००२) वेस्टर्न फिलासफी ऑफ एजुकेशन, अटलांटिक पुब्लिसर्स, न्यूयार्क
3. दुबे, अखिलेश प्रसाद, (2003) गांधी दर्शन की रूपरेखा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली
4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा (2005) सामाजिक विज्ञान का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
5. कौल बद्रीनाथ. (२००७) प्लेटो संवाद, हिन्दी पाकेट बुक्स प्रा० लि०, नई दिल्ली
6. रस्क, आर० आर० (२०००) दी डोकटराइन्स ऑफ ग्रेट एडुकेटर्स, कनिष्क पब्लिसर्स, नई दिल्ली
7. रस्क, आर० आर० (१९९०) शिक्षा के दार्शनिक आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (अनुवादक- एल. के. ओड़)

2.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल केन्द्रित शिक्षा को परिभाषित करते हुए बाल केन्द्रित शिक्षा के महत्व का वर्णन कीजिए?
2. बाल केन्द्रित शिक्षा की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता की प्रासंगिकता की व्याख्या कीजिए?
3. बाल केन्द्रित शिक्षा की अवधारणा, आधारों एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए?
4. बाल केन्द्रित शिक्षा से आप क्या समझते है? आप के दृष्टीकोण से इसकी उपादेयता की विवेचना कीजिए?
5. बाल केन्द्रित शिक्षा के संदर्भ में गाँधी जी के शैक्षिक विचारों एवं अवधारणाओं को स्पस्ट कीजिए?
6. जॉन डीवी के संदर्भ में बाल केन्द्रित शिक्षा के स्वरुप की विवेचना कीजिए?
7. प्लेटो किस प्रकार के शैक्षिक नियोजन के माध्यम से शिक्षा के सर्वोत्तम उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते थे, विवेचना कीजिए?
8. मार्टिन बुबेर के बाल केन्द्रित शैक्षिक विचारों की अवधारणा का वर्णन कीजिए?
9. पाउलो फ्रेरे किस प्रकार के शैक्षिक नियोजन के माध्यम से अपने ऊद्देश्यों की प्राप्ति करना चाहते थे, विवेचना कीजिए?

इकाई 3- बाल केन्द्रित शिक्षा के केन्द्रीय विचार के रूप में 'खोज'

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्लेटो (428-347 ई. पू.)
    3.3.1 शिक्षा संबधी विचार
    3.3.2 समाज का वर्गीकरण
    3.3.3 'खोज' की संभावनाएं
3.4 जॉन डीवी (1859 ई.-1952 ई.)
    3.4.1 शिक्षा और लोकतंत्र
    3.4.2 गतिविधि और खोज
    3.4.3 शिक्षा की विषयवस्तु
3.5 रवीन्द्रनाथ टैगोर (1859 ई.-1941 ई.)
    3.5.1 बचपन और विद्यालय
    3.5.2 पेड़ पर कक्षा
3.6 महात्मा गाँधी (1869 ई.-1948 ई.)
    3.6.1 शिक्षा के साथ प्रयोग
    3.6.2 नयी तालीम और आमूलचूल परिवर्तन
    3.6.3 शिक्षा का माध्यम: मातृभाषा
3.7 मार्टिन बूवर (1878 ई. -1965 ई.)
    3.7.1 शिक्षा की परिकल्पना
    3.7.2 संवाद
3.8 पाओलो फ्रेरे (1921 ई. -1997 ई.)
    3.8.1 शिक्षा की बैंकीय अवधारणा
    3.8.2 संवाद
    3.8.3 सारांश
3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची /सहायक ग्रंथ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप सब जानते हैं बाल केन्द्रित शिक्षा, शिक्षा के दर्शन का वह विचार है, जिसके आने के बाद तमाम शैक्षिक प्रक्रियाओं का केंद्र अध्यापक न होकर छात्र हो गए. इसके कारण पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें, कक्षा की गतिकी में गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिलते हैं. यह छात्र केन्द्रित विचार है. इस इकाई के अंतर्गत हम बाल केन्द्रित शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में 'खोज' को जानने और समझने का प्रयास करेंगे। हम इस इकाई में यह देखेंगे कि प्लेटो, जॉन डीवी, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मार्टिन बूबर और पाओलो फ्रेरे ने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों में 'खोज' को किस तरह स्थान दिया है। वह सीधे-सीधे इस 'खोज' की बात करते हैं या उनके विचारों में इसकी व्याप्ति किस तरह दृष्टिगोचर होती है। ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा के दर्शन और इतिहास में 'बाल केन्द्रित शिक्षा' अपने आप में एक आधुनिक विचार है। जैसा कि आप यहाँ देख रहे हैं, इन विचारकों का कालखंड यूनान के महान विचारक प्लेटो (428-347 ई. पू.) से लेकर बीसवीं शताब्दी के यहूदी दार्शनिक मार्टिन बूबर तक फैला हुआ है।

इतने लम्बे सफ़र में यह विचार किस तरह खुलता है, यह अपने आप में एक ऐतिहासिक यात्रा से कम नहीं होगा। हमें प्रत्येक दार्शनिक, चिन्तक, विचारक को उसके देश और काल के सापेक्ष समझने का प्रयास करना है। अध्ययन की इस कड़ी में हमें यह भी ध्यान रखना है, हम आज इक्कीसवीं शताब्दी में 'खोज' को रेखांकित करने जा रहे हैं। उपरोक्त दार्शनिकों, विचारकों, चिंतकों के समक्ष ऐसा कोई पैमाना नहीं था। प्रत्येक चिन्तक के शिक्षा सम्बन्धी विचार अतीत के अपने-अपने कालखण्ड विशेष में तत्कालीन परिस्थितियों के मध्य जन्म लेते हैं। उनके यह विचार वास्तव में उनके द्वारा अपने समय के लिए देखे गये कुछ स्वप्न थे। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हुए ही हम उनके विचारों को बेहतर ढंग से जान पायेंगे। साथ ही, हम उनके विचारों में 'खोज' शब्द के बिना भी यह समझ पायेंगे, वह हमारे इस विशिष्ट सन्दर्भ में क्या कह रहे हैं।

इस इकाई के उपरान्त आप बाल केंद्रित शिक्षा के अनिवार्य तत्व 'खोज' से परिचित होंगे. लेकिन इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, यह जान लीजिये 'खोज' का अर्थ है, ढूँढना. जो उद्घाटित नहीं है, उसका उद्घाटन. छात्र के समक्ष 'ज्ञान' का उद्घाटन कोई और नहीं, वह स्वयं करेगा. चलिए देखते हैं, उसकी यह 'खोज' किन प्रक्रियाओं से गुज़रकर आगे बढ़ेगी.

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. बाल केन्द्रित शिक्षा के अंतर्गत खोज क्या है तथा इसकी महत्ता से परिचित होंगे।
2. क्यों प्लेटो के विचारों की ध्वनि आज भी हमें शिक्षा के विचारों में स्पष्ट दिखाई देती है।
3. यह स्पष्ट कर पायेंगे कि टैगोर और महात्मा गाँधी का विश्वास औपनिवेशिक शिक्षा पर क्यों नहीं था।
4. संवाद की विशेषताओं को जानने के साथ-साथ शिक्षा में उसकी भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे।
5. समझ सकेंगे कि खोज के सन्दर्भ में अध्यापक की भूमिका कितनी जटिल होती है।
6. भविष्य में कक्षा के भीतर छात्रों के लिए किस तरह के माहौल की आवश्यकता होती है, इससे आप भली भांति परिचित हो सकेंगे।

3.2 प्लेटो (428-347 ई. पू.)

प्लेटो यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक हैं, जिन्हें 'अफ़लातून' के नाम से भी जाना जाता है। प्लेटो का जन्म(428 ई. पू.) एथेंस के समीपवर्ती ईजिना नामक द्वीप में हुआ। वह सुकरात के शिष्य तथा अरस्तु के गुरु थे। प्लेटो होमर के समकालीन थे। सुकरात की मृत्यु के बाद उन्होंने मेगोरा, मिस्र, इटली और सिसली आदि देशों की यात्रा की तथा एथेन्स(यूनान) लौट कर 'अकादमी'(387 ई.पू.) की स्थापना की।

मुख्यतः उन्हें राजनीतिक चिन्तक माना जाता है। लेकिन उसी अनुपात में वह पाश्चात्य दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्लेटो की कृतियों में 'द रिपब्लिक', 'द स्टैट्समैन', 'द लॉज़', 'इयोन', 'सिम्पोजियम' आदि प्रमुख हैं।

3.3.1 शिक्षा संबधी विचार

प्लेटो के शिक्षा सम्बन्धी विचार उनकी दो पुस्तकों 'रिपब्लिक' और 'लॉज़' (The Laws) में देखने को मिलते हैं। शिक्षा ऐसा विषय रहा, जिसे उन्होंने सर्वाधिक महत्त्व दिया, 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने 'शिक्षा' को युद्ध की कोटि में रखा है। इसकी पृष्ठभूमि में यूनान के स्पार्टा के साथ चल रहे दीर्घकालीन युद्ध को नहीं भूलना चाहिए। उन्हें यह शिक्षा ही उस युद्ध को जीतने का साधन प्रतीत होती है। वह शिक्षा को इस संसार की भव्यतम और सुन्दरतम विषय मानते हैं। जहाँ 'रिपब्किल' में उनके आदर्श की रुपरेखा और सीमांकन स्पष्ट दिखता है,वहीं 'लॉज़' में यह अपेक्षाकृत धुंधला जाता है।

प्लेटो के समय में कवि को समाज में आदरणीय स्थान प्राप्त था। उन्हें उपदेशक, मार्गदर्शक तथा संस्कृति का रक्षक माना जाता था। किन्तु उनका मत इसके बिलकुल विपरीत था। उनके अनुसार 'कविता जगत की अनुकृति है, जगत स्वयं अनुकृति है; अतः कविता सत्य से दोगुनी दूर स्थित है। वह भावों को उद्वेलित कर व्यक्ति को पथभ्रष्ट बनाती है। अत: कविता अनुपयोगी है'। प्लेटो काव्य के महत्व

को उसी सीमा तक स्वीकार करते हैं, जहाँ तक वह राज्य के नागरिकों में सत्य, सदाचार की भावना को प्रतिष्ठित करने में सहायक हो। प्लेटो के लिए कला और साहित्य की कसौटी 'आनंद एवं सौंदर्य' न होकर उपयोगितावाद थी।

उनके काव्यशास्त्र सम्बन्धी इन्हीं विचारों की छाया उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में भी देखने को मिलती है। प्लेटो का मानना था कि किसी समाज में सत्य, न्याय और सदाचार की प्रतिष्ठा तभी संभव है, जब उस राज्य के निवासी वासनाओं और भावनाओं पर नियंत्रण रखते हुए विवेक एवं नीति के अनुसार आचरण व व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत करें। भावुकता, संवेदना, इच्छा आदि के लिए उनके आदर्श राज्य में कोई स्थान न था।

प्लेटो ने शिक्षा को एक आदर्श राज्य के सृजन का साधन माना था। इसके लिए उन्होंने शिक्षा की ऐसी रूपरेखा बनायीं, जो उनके दिए आदर्श राज्य की स्थापना में सहायक हो। अगर हम इस प्रस्थान बिंदु से शुरू करते हैं, तब आज वर्तमान में शिक्षा के अर्थों में और तब की समझ में हमें गुणात्मक अंतर स्पष्ट रूप से दिखेगा।

उनके लिए शिक्षा का अर्थ, कोई भी अनुभव नहीं था। वह शिक्षा को 'अनुभव' का पर्याय नहीं मानते हैं। वह इस वृहद् परिभाषा से थोड़ी संकीर्ण परिभाषा की तरफ़ झुक जाते हैं, जहाँ अनुभव सिखाते अवश्य हैं पर यह अनुभव शिक्षार्थी को एक विशेष परिवेश में किसी अन्य की सहायता से प्राप्त होते हैं। इस अर्थ में हम बाल केन्द्रित शिक्षा में 'खोज' की किसी भी संभावना को नहीं देख पाते। लेकिन ऐसा नहीं है, वह इस (खोज) का पूर्णतः निषेध करते हों।

3.3.2 समाज का वर्गीकरण

वह 'रिपब्लिक' के अपने संवादों में जब समाज का वर्गीकरण करते हुए उसे तीन वर्गों (औद्योगिक, सैनिक और शासक) में बाँटते हैं, तब हम इस 'खोज' की संभावनाओं को टटोल सकते हैं। इसके लिए हमें देखना होगा, वह इस वर्गीकरण का आधार किसे मान रहे हैं? तथा, यह तीन वर्ग अगर राज्य बना रहे हैं, तो शिक्षा कैसे व्यक्तियों को तीन वर्गों में बाँटती है? उनके अनुसार वह समाज में कुछ को शासक की तरह देखते हैं, जिनमें शासन करने की क्षमता है। यह समाज में सबसे उच्च स्तर पर स्थित हैं। वह कहते हैं, 'इस प्रकार के लोगों का संघटन करते हुए ईश्वर ने उनके निर्माण सामग्री में सोना मिलाया है और इसी कारण उन्हें सबसे अधिक सम्मान मिलता है'। वह क्रमशः बताते हैं, अन्य लोग सहायक की श्रेणी में आते हैं और उन्हें चाँदी से निर्मित किया गया है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो खेतिहर और शिल्पियों की श्रेणियों में आते हैं, इन्हें ईश्वर ने पीतल और लोहे से बनाया है।

प्लेटो व्यक्तिओं में आरम्भ से ही असमानता की कल्पना करते हैं तथा कहते हैं, समानधार्मियों से राज्य का निर्माण नहीं होता। हालाँकि इसके साथ वह यह भी कहते हैं, सभी लोगों के निर्माण में एक ही प्रकार की मूल सामग्री का प्रयोग हुआ है, फ़िर भी यह संभव है, कि सोने के माता-पिता से चाँदी जैसा पुत्र उत्पन्न हो या चाँदी जैसे माता पिता से सोने के सामान पुत्र पैदा हो। वह इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि व्यक्ति की सामजिक हैसियत जन्म, संपत्ति या परंपरागत रिवाजों पर आधारित न होकर इस बात से

निर्धारित होना चाहिए कि शिक्षा की प्रक्रिया में उसका मूल स्वभाव किस तरह प्रकट होता है। शिक्षा ही मूलतः सामाजिक विभाजन का आधार है।

3.3.3 'खोज' की संभावनाएं

इसी बिंदु पर हम खोज की संभावनाओं की देख सकते हैं। प्लेटो के आदर्श राज्य में 'शिक्षा' व्यक्तियों को सामाजिक हैसियत प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान करती है। शिक्षा समाज को वर्गीकृत करने का साधन है। उनके आदर्श राज्य में कोई जन्म से कोई भी स्तर प्राप्त कर सकता है। शिक्षा के द्वारा इस बात का पता लगाया जा सकता है कि कौन सा व्यक्ति किस काम के लिए उपयुक्त है। वह मानते थे, शिक्षा का प्राथमिक कार्य व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों से परिचय कराना है, तत्पश्चात व्यक्ति को वही कार्य दिया जाना चाहिए जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो। इस स्वतंत्रता को हम 'खोज' के सन्दर्भों में रेखांकित कर सकते हैं।

सैद्धांतिक स्तर पर यह आदर्श राज्य की स्थापना के लिए एक सांचा मुहैया प्रदान कराता दिखता है। किन्तु यह उतना ही अलोकतांत्रिक है। जहाँ प्लेटो ने सैनिक और शासक वर्ग के लिए विस्तार से वर्णन किया है, वहीं इतने मनोयोग से औद्योगिक या शिल्पियों या खेतिहरों की शिक्षा का कोई वर्णन तक नहीं किया है। शिक्षा अगर इस तरह के वर्ग का उत्पादन कर रही है, तो राज्य को किस तरह उन्हें शिक्षित करे, इस पर प्लेटो का मौन, उनके आदर्श राज्य का दोष ही माना जाएगा। वह स्त्रियों के सन्दर्भ में भी कुछ स्पष्ट नहीं कहते। परन्तु वह अन्यत्र चर्चा का विषय है।

'रिपब्लिक' पुस्तक के अलावा अपनी प्रौढ़ावस्था की पुस्तक 'लॉज़' नामक पुस्तक में वह क्रीडा को महत्त्व देते हैं। एक अर्थ में शिक्षा प्रक्रिया के दौरान सभी व्यक्तियों की सावधानीपूर्वक देखभाल की जानी चाहिए और अनेक विधियों से उनकी जाँच और परीक्षण होते रहना चाहिए।

किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में जहाँ ज्ञान के क्षेत्र में होने वाली प्रगति देख रहे हैं, वहाँ इस तरह का वर्गीकरण किसी काम नहीं आने वाला। लेकिन विचार के स्तर पर हमें उन विचारों को वहीं स्थित करके देखना समझना होगा। एक तरफ़ शिक्षा का समाजशास्त्र श्रम विभाजन के जटिल होते जाने की व्याख्या करता है। वहीं श्रमिक और स्त्रियों के विषय में कुछ संकेत न करके प्लेटो कुछ अनुत्तरित प्रश्न छोड़ जाते हैं।

3.4 जॉन डीवी (1859 ई.-1952 ई.)

जॉन डीवी का जन्म 1859 ई. में अमेरिका के बर्लिंगटन, वरमोंट में हुआ। वरमोंट विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद वे बर्लिंगटन के निकट एक छोटे से ग्रामीण विद्यालय में एकमात्र शिक्षक के रूप में अध्यापन करने लगे। डीवी ने सन् 1884 ई. में मिशिगन विश्वविद्यालय में दर्शन और मनोविज्ञान के शिक्षक के रूप में अध्यापन प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में भी अध्यापन किया और वहाँ से इस्तीफा देकर सन् 1939 तक वे कोलंबिया विश्वविद्यालय में दर्शन का शिक्षण करते रहे। उन्हें अमेरिका में को 'व्यवहारवाद' का प्रमुख पैरोकार माना जाता है। कोलंबिया विश्वविद्यालय में ही डॉ. भीमराव अम्बेडकर उनके छात्रों में से एक छात्र रहे।

उनकी प्रमुख पुस्तकों में 'विद्यालय और समाज'(1899), 'द चाइल्ड एंड द करिकुलम' (1902), 'हाउ वी थिंक' (1910), 'शिक्षा और लोकतंत्र' (1916), द पब्लिक एंड इट्स प्रॉब्लम(1927) आदि शामिल हैं।

3.4.1 शिक्षा और लोकतंत्र

अमेरिका उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध में औद्योगीकरण के फलस्वरूप तेज़ी से सरल खेतिहर समाज से औद्योगिक शहरी राष्ट्र के रूप में उभर रहा था। डीवी अपने शिक्षा दर्शन द्वारा जीवनपर्यंत चिंतन करते रहे, कैसे इन सामजिक और आर्थिक परिवर्तनों के बीच किसी लोकतान्त्रिक समाज को बचाया जा सकता है? उनके अनुसार, वास्तविक लोकतंत्र महज़ सरकारी तंत्र और रस्मों तक सीमित नहीं रहता, अपितु वह ऐसी गत्यात्मक प्रक्रिया है, जिसमें सिर्फ़ राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तंत्र ही नहीं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय और बराबर की भागीदारी अपेक्षित है।

डीवी यह मानते थे, विद्यालय को समाज के छोटे रूप में होना चाहिए, जो लोकतंत्र के विकास में सहयोगी हो। उनकी दृष्टि में स्कूल भविष्य में स्थित जीवन की तय्यारी मात्र नहीं बल्कि अपने आप में जीवन ही है। बच्चों को लोकतान्त्रिक जीवन में सक्रीय भागीदारी के अवसर मिलें इसलिए विद्यालय में बच्चों को लोकतंत्र की सबसे बेहतर तय्यारी के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। वही भविष्य में देश के नागरिकों के रूप में अपनी विविध भूमिकाओं को निभायेंगे। उनका विद्यालयी जीवन लोकतान्त्रिक आस्थाओं का पूर्वाभ्यास होना चाहिए.

3.4.2 गतिविधि और खोज

डीवी उन सार्वजनिक विद्यालयों के गंभीर आलोचक थे, जो छात्रों की रुचियों पर मौन रहते हैं या उनकी तरफ़ कभी दृष्टि भी नहीं डालते। उनकी दृष्टि में छात्र किसी विद्यालय में निष्क्रिय प्राणी की तरह नहीं आता। यह नजरिया विद्यालयों को कारखानों के सामान मानने वाली व्यवस्था से उपजा विचार है, जहाँ छात्र और छात्राएं कच्चे माल की तरह हैं, जिन्हें कक्षा के भीतर शिक्षक अपनी मर्ज़ी से आकार देते हैं। डीवी की दृष्टि में यह आकार देने की बात उनके विचारों से एकदम मेल नहीं खाती। बच्चे स्वयं तय करेंगे, उन्हें कैसा दिखना है। अध्यापक उसके एवज़ में कोई निर्णय नहीं करेंगे।

उन्होंने अपनी पुस्तकों ('विद्यालय और समाज') तथा अनेकों लेखों ('मेरी शिक्षाशास्त्रीय आस्था' आदि) में कई दफे इस बात को स्पष्ट किया है कि बच्चों के निरंतर बौद्धिक विकास और विषयों के प्रति रूचि बनाये रखने के बाद ही हम उनके शैक्षिक अनुभवों को गुणात्मक रूप से परिवर्तित कर सकते हैं। इसमें वह शिक्षकों की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहते हैं, बच्चों की कक्षा में निरुद्देश्य स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। शिक्षक ही वह व्यक्ति होगा, जो शिक्षा के अनुभवों को पुनर्गठित कर सकने की क्षमता रखता है। वह निर्देश नहीं देगा। वह बस बच्चों में उन अनुभवों को निर्देशित करने के कौशल का विकास कर सकता है। वह उसके सीखने का साथी है।

लेकिन वह यहीं सबसे ज़्यादा सचेत होने की आवश्यकता पर भी लगातार बल देते हैं। उनके अनुसार वह युक्तियाँ, उदाहरण, कौशल जो उनके शिक्षक के पास हैं, वह उन बच्चों की युक्तियाँ, कौशल आदि नहीं हो सकते। जिन उपायों से शिक्षक किसी समस्या का हल निकालता है, वह उसका कौशल है। बच्चे जब तक अपने आप से उन समस्याओं के हल निकालने के लिए प्रेरित नहीं किये जायेंगे और वह स्वयं उन प्रक्रियाओं में लगातार असफल होते हुए भी हिम्मत के साथ उन्हें सुलझाने में लगे रहेंगे, तब एक क्षण ऐसा आएगा, जब उनके द्वारा खोजा गया हल केवल उनका अपना होगा। उसे सुलझाने का अनुभव जब तक वे स्वयं नहीं करेंगे, तब तक यह सीखना पूरा नहीं होगा।

3.4.3 शिक्षा की विषयवस्तु

अब चूँकि हमें पता है, डीवी के यहाँ सीखना किसे कहते हैं। उनकी दृष्टि में गतिविधि में शिक्षक की भूमिका क्या होनी चाहिए, इसका भी एक नक्शा हमारे पास है, तब हमारे लिए यह समझ पाना इतना कठिन नहीं होना चाहिए कि डीवी की नज़र में शिक्षा की विषयवस्तु क्या होनी चाहिए।

चलिए एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। एक छोटा सा सवाल कक्षा में पूछा गया, 'हमारे घरों में रोटी किससे बनती है'? बच्चों की पाठ्यपुस्तक के पास एक उत्तर है, गेहूँ। पर डीवी इससे संतुष्ट नहीं होने वाले। वह कहेंगे, इस प्रश्न को बच्चे के सामजिक जीवन से जोड़ना ज़रूरी है। उनकी नज़र में भूगोल, विज्ञान, इतिहास अपने आप में विषयवस्तु नहीं हैं न इस विषयों के मध्य का सह-सम्बन्ध ही शिक्षा का वास्तविक केंद्र हो सकता है। उनके अनुसार विद्यालय और कक्षा के चारों तरफ़ छितरी हुई सामजिक गतिविधियाँ ही इस ज्ञान का केंद्र हो सकती हैं। आपको समझने में यदि समस्या आ रही हो, तब हम प्रश्न पर वापस लौट सकते हैं।

सवाल था, रोटी किसकी बनती है? डीवी के लिए बच्चों का सिर्फ़ जवाब के रूप में 'गेहूँ' को जान लेना शिक्षा या ज्ञान का पर्याय नहीं है। उनकी दृष्टि में गेहूँ के बीज से लेकर खेत में छह महीने का इंतज़ार, फ़िर उसे पीसने पर आटा बनने और उसके घर में रोटी बनने तक की प्रक्रिया को जान लेना 'शिक्षा की विषवस्तु' है।

3.5 रवीन्द्रनाथ टैगोर (1859-1941)

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविख्यात कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार, चित्रकार और दार्शनिक थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म 7 मई सन् 1861 ई. को कोलकाता में हुआ। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर और माता शारदा देवी थीं। वह अपने माँ-बाप की तेरह जीवित संतानों में सबसे छोटे थे। उनके पिता उन्हें बैरिस्टर बनाना चाहते थे, लेकिन वह अपनी पढ़ाई पूरी न कर सके। वह पढ़ाई बीच में ही छोड़कर भारत वापस लौट आते हैं.

औपचारिक शिक्षा को लेकर उनके अनुभव बचपन से ही कितने कष्टप्रद थे, यह हम क्रमशः नीचे जानेंगे। 14 नवम्बर 1913 को रवीन्द्रनाथ टैगोर को साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला। वे अकेले ऐसे भारतीय साहित्यकार हैं, जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला है। वह नोबेल पुरस्कार पाने वाले प्रथम एशियाई और साहित्य में नोबेल पाने वाले पहले गैर यूरोपीय भी थे। स्वीडिश अकादमी ने 'गीतांजलि' के आधार पर उन्हें ये पुरस्कार देने का निर्णय लिया था। ब्रिटिश हुकूमत ने उन्हें वर्ष 1915 में 'नाइटहुड' की उपाधि प्रदान की, जिसे रवीन्द्रनाथ ने 1919 के जलियावाला बाग़ हत्याकांड के बाद उन्हें लौटा दिया। वह दुनिया के अकेले ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाएं दो देशों का राष्ट्रगान हैं – भारत का राष्ट्रगान 'जन गण मन' और बाँग्लादेश का राष्ट्रीय गान 'आमार सोनार बाँग्ला'।

सन 1921 में उन्होंने कृषि अर्थशास्त्री लियोनार्ड एमहर्स्ट के साथ मिलकर उन्होंने अपने आश्रम के पास ही 'ग्रामीण पुनर्निर्माण संस्थान' की स्थापना की। बाद में इसका नाम बदलकर 'श्रीनिकेतन' कर दिया गया।

3.5.1 बचपन और विद्यालय

यह बचपन ही है, जिसके लिए वह अपने विद्यालय की स्थापना करते हैं। उन्हें 'प्रकृतिवादी' भी कहा जाता है. अर्थात् वह जो बिना किसी बंधन के बच्चों को उनकी स्वाभाविकता के साथ सीखने के लिए प्रोत्साहित करे। वह अपने परिवेश से अपनी मर्ज़ी से किसी भी तरह का सम्बन्ध बना सकते हैं और यह ज्ञान सृजन में अनिवार्य तत्व है।

टैगोर अमेरिका में दिए गए एक व्याख्यान(1917) में कहते हैं, जब उन्होंने बंगाल में अपना विद्यालय (शांतिनिकेतन) खोला, तब उनकी आयु लगभग चालीस वर्ष थी। इसकी प्रेरणा बचपन के दिनों में विद्यालय में प्राप्त हुए उनके अपने निजी अनुभव थे। वास्तव में इसके पीछे शिक्षा का कोई नया सिद्धांत काम नहीं कर रहा था, बल्कि यह उन अतीत के दिनों की स्मृतियाँ थीं। उनकी दृष्टि में पारम्परिक विद्यालय एक क़िस्म के कारखाने या टकसाल बन कर रह गए थे। वह कहते हैं, 'दरअसल विद्यालय की व्यवस्था में जीवन को तभी सफल माना जाता है, जब उसे काट-छांट कर एक निश्चित साँचे में ढाल दिया जाता है। मेरे विद्यालयी जीवन की पीड़ा का यही कारण था'।

वह अपने बचपन को याद करते हुए लिखते हैं, 'पहले ही दिन मुझे स्कूल से नफरत हो गयी। प्रकृति और खुले आकाश से दूर एक कमरे में बंद होकर पढ़ना मुझे ख़राब लगता था। मैं स्कूल से छुट्टी के उपाय सोचता। जो मुंशीजी मेरे भाईयों को अरबी फ़ारसी पढ़ाते थे, उनसे छुट्टी लेने के लिए क्लास टीचर को अर्जी लिखवाने की विनती करता। स्कूल में दाख़िला लेते ही मेरे आस पास की दुनिया गायब होने लगी। उसकी जगह लकड़ी की कुर्सियां और सूनी सपाट नज़रों से घूरती दीवारों ने मुझे घेर लिया'। उनके विद्यालय में यह दीवारे ही नहीं थी। कुर्सियां भी नहीं थी।

3.5.2 पेड़ पर कक्षा

रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कहानी है, 'तोते की शिक्षा'। उसकी शुरुवाती पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं: 'किसी समय कहीं एक चिड़िया रहती थी। वह अज्ञानी थी। वह गाती बहुत अच्छा थी लेकिन शास्त्रों का पाठ नहीं कर पाती थी। वह फुदकती बहुत थी, लेकिन उसे तमीज़ नहीं थी'। राजा उस चिड़िया को देखकर बहुत चिन्तित हो गया। उसने सभा बुलाई और इस चिड़िया की समुचित गंभीर शिक्षा की व्यवस्था करने का हुक्म दिया। हुक्म की तुरंत तामिल हुई। एक सोने का पिंजरे में उस चिड़िया को रखा गया। पंडित-मौलवी सब आते, उसे पढ़ाते। लेकिन अभी भी प्रशिक्षण प्रकृति पर भारी पड़ जाता। वह कभी-कभी असभ्यातापूर्वक पंख फड़फड़ाती। सलाखों पर अपनी कमज़ोर चोंच से प्रहार करती। लोहार से ज़ंजीर गढ़वायी गयी, उसके पैरों में बाँध दी गयी। उसका कंठ पोथियों के पन्नों से अंटा पड़ा था। वह न चीख़ सकती थी, न फुसफुसा सकती थी। न फुदकती थी, न उड़ सकती थी। एक दिन चिड़िया मर गयी।

यह चिड़िया हम सब हैं। वह कभी हमारे अन्दर फुदकती चिड़िया को मरने नहीं देना चाहते थे। वह अमेरिका के उसी व्याख्यान में कहते हैं, सम्पन्नता सुख और ऐश्वर्य के लिए तो ठीक हो सकती है किन्तु शिक्षा के सन्दर्भ में वह एक बाधा के सामान है। तभी उनके विद्यालय के प्रांगण में बच्चे बस्ते लेकर पेड़ पर चढ़कर डाल पर पढ़ सकते थे। उनकी दृष्टि में जीवन में बचपन ही ऐसा पड़ाव है, जब वह तय कर सकते हैं, उन्हें कुर्सी-मेज़ पर पढ़ना है या पेड़ की डाल पर। उसे हम व्यस्क होने के नाते इसलिए मना कर दें क्योंकि हमने कभी ऐसा नहीं किया है? यह न्यायोचित तो नहीं होगा।

असल में अनुभवों का यह सिलसिले से ही बच्चे के अन्दर की मूल प्रवृति का विकास संभव है। यह प्रकृति की अपनी विशिष्ट शिक्षा पद्धति है। उन्हें यह अनुभव से ही ज्ञात होगा किस पेड़ की टहनी पर बैठा जा सकता है, किस पर अपना सारा वजन डाला जा सकता है। वह यह भी जान जायेंगे किस पेड़ पर उछलकूद मचाई जा सकती है। यहाँ कोई अध्यापक है ही नहीं। कोई व्यस्क होने के नाते यह बताये, क्या सही है क्या गलत है, यहाँ ऐसी संभवना नहीं है।

3.6 महात्मा गाँधी (1869-1948)

महात्मा गांधी का पूरा नाम मोहनदास करमचंद गांधी था। महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869, पोरबंदर, काठियावाड़, गुजरात में हुआ। गांधीजी के पिता करमचंद गांधी राजकोट के दीवान थे। आपकी माता का नाम पुतलीबाई था। गांधीजी ने वकालत की शिक्षा इंग्लैंड में प्राप्त की थी। देश की स्वतंत्रता में महात्मा गाँधी की विशेष भूमिका रही है। इन्होने स्वतंत्रता के लिए सदैव सत्य और अहिंसा का मार्ग चुना और कई सारे आंदोलन किए।

सुभाष चन्द्र बोस ने वर्ष 1944 में रंगून रेडियो से महात्मा गान्धी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर सम्बोधित किया था। 30 जनवरी, 1948 की शाम प्रार्थना सभा में जाते हुए गांधीजी की नाथूराम विनायक गोडसे ने गोली मारकर हत्या कर दी। महात्मा गांधी की समाधि दिल्ली में (राजघाट) है।

3.6.1 शिक्षा के साथ प्रयोग

रवीन्द्रनाथ टैगोर की तरह उनके समकालीन महात्मा गाँधी भी ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के कटु आलोचकों में से एक थे। उन्होंने न केवल उस शिक्षा पद्धिति की कमियों को उजागर किया अपितु भारतीय समाज के सामजिक सांस्कृतिक ढ़ांचे के लिए उपयुक्त शिक्षा प्रणाली रचने का प्रयास भी किया। उन्होंने अपने द्वारा दक्षिण अफ्रीका में 'फिनिक्स' और 'टॉलस्टॉय फार्म' स्थापित करने के अनुभवों का प्रयोग अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रतिकार में किया।

वह उन चुनिन्दा विचारकों में शामिल थे, जिन्होंने पाश्चात्य सभ्यता में निहित बुराइयों को बहुत जल्द पकड़ लिया था। उनकी 1909 में गुजराती में लिखी रचना 'हिन्द स्वराज्य' इसे बलपूर्वक हमारे सामने उपस्थित करती है। उन्हें लगता था, जब तक हम औपनिवेशिक शिक्षा प्राप्त करते रहेंगे, तब तक हमारे भीतर भारतीयों के लिए हेय भाव बना रहेगा। वह उस शिक्षा पद्धति के बिलकुल ख़िलाफ़ थे, जो हमें हमारे परिवेश से काटकर एक कृत्रिम वातावरण का अभ्यस्त बना दे। उनके द्वारा नयी तालीम(1937) का प्रस्ताव इसी का प्रतिरोध था।

नयी तालीम की वर्धा स्कीम 'बुनियादी शिक्षा' के नाम से भी लोकप्रिय है। इस शिक्षा पद्धति को गाँधी एक जीवनशैली की तरह देखते थे। उनकी दृष्टि में 'उत्पादक कार्यों' से शिक्षा लेने का विचार भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तनों का उत्प्रेरक सिद्ध हो सकता है। महात्मा गाँधी जातीय, धार्मिक, वर्गीय ढाँचों की जटिल संरचनाओं में जकड़े हुए हमारे समाज की जकड़न को तोड़ने के लिए इस 'नयी तालीम' का प्रस्ताव करते हैं।

3.6.2 नयी तालीम और आमूलचूल परिवर्तन

वर्धा, महाराष्ट्र में गाँधी जी की प्रेरणा से ऐसा शिक्षा का ऐसा मॉडल शुरू किया गया, जिसमें बच्चे 'उत्पादक कार्यों' के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने की प्रक्रिया को संपन्न करते थे। वह किसी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय के हों, उन्हें किसी भी कार्य को करने से पीछे नहीं हटना था। चाहे वह खेती हो, चरखा कातना हो, धागों को रंगना हो, पाकशाला में अपनी भूमिकाओं को निभाना हो, साफ़ सफाई का कोई काम हो, चमड़े से सम्बन्धी कोई कार्य हो, उन सभी के द्वारा मिलजुलकर वह सभी कार्य संपन्न किये जाते। जब समाज के सभी लोग हर तरह के कार्य निपुणता से करने लगेंगे, तब समाज में कोई छोटा-बड़ा, कोई अस्पृश्य नहीं रह जाएगा। सभी एक-दूसरे से एक सा बरतने लगेंगे।

उदाहरण के लिए, जब बच्चे खेत में एक फसल उगाने को लेकर मंत्रणा कर आपसी समझदारी से काम का बंटवारा करते। तब कोई खेत जोतता, कोई निराई, गुड़ाई देखता, कोई सिंचाई की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता, कोई फसल की रखवाली का काम देखता। कितना पानी देना है, कब देना है, कब नहीं देना है। फसल जब पक जाती, तब एक समूह उसे काटता। यह सिर्फ़ कृषि विज्ञान नहीं भूगोल से लेकर विविध विषयों का ज्ञान उनमें घर बनता। उनमें सहृदयता, धैर्य, प्रेम गुणों का विकास होता। समाज में जब यह बड़े होते, तब आपस में कोई बैर कैसे टिकता।

लेकिन हम देखते हैं, तत्कालीन इतिहास में यह नयी तालीम योजना सफल नहीं हो पाती। जिस स्वप्न के साथ यह शुरू हुई थी, उससे सामाजिक ताने-बाने के छिन्न-भिन्न होने का भय सताने लगा। वह वर्णन आप शिक्षा के इतिहास की किसी किताब या मार्जोरी साइक्स की 'नयी तालीम की कहानी' से जान ही जायेंगे, लेकिन इसे 'SUPW' या सामजिक उपयोगी कार्य भी समझने की भूल मत कीजिए गा। यह कक्षा के भीतर एक निर्धारित घंटी के मध्य करवाई जाने वाली गतिविधि नहीं है। सच कहें, यह उसका अवशेष भी नहीं है।

3.6.3 खोज का माध्यम

महात्मा गाँधी 'हिन्द स्वराज' (1909) में कहते हैं कि 'मुझे लगता है, अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने में हमारी अधिक मानसिक ऊर्जा लगती है और वह हमें मात्र 'इमिटेटर' (नकलची) बनती है। अपनी देशी भाषाओं का माध्यम के रूप में शामिल न करना, उनका हटाया जाना इस औपनिवेशिक शासन का सबसे दुखद अध्याय है'। वह 'यंग इण्डिया'(1921) में इस बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं, कोई भी देश नकलचियों को पैदा करके एक सशक्त राष्ट्र नहीं बन सकता। वह बार-बार मातृभाषा सीखनें पर ज़ोर देते हैं। हिन्द स्वराज में वह लिखते हैं, 'हमें पहले अपनी मातृभाषा सीखनी चाहिए और हिन्दुस्तान की दूसरी भाषा सीखनी चाहिए। बालक को जब पुख्ता उम्र का हो जाये, तब भले ही अंग्रेजी शिक्षा पाए, और वह भी उसे मिटाने के इरादे से, न कि उसके ज़रिये पैसे कमाने के इरादे से। ऐसा करते हुए हमें यह भी सोचना होगा कि अंग्रेज़ी में क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिए। हमें अपनी सभी भाषाओँ को उज्ज्वल शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए'।

महात्मा गाँधी अंग्रेज़ी भाषा का विरोध केवल इस लिए नहीं करते हैं क्योंकि वह औपनिवेशिक शासक की भाषा है। नहीं। उन शासकों की कोई भी भाषा होती, वह उसका विरोध करते। वह भाषा के चरित्र को लेकर बहुत सजग हैं और कहते हैं, मातृभाषा ही मुक्ति का माध्यम है। उनका कहना है, 'यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ पाना हो, तो मुझे अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग करना होगा?' आपको समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी शिक्षा लेकर हमनें अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है।' यह गुलामी शिक्षा को कैसे जकड़ लेती है, वर्तमान इसका प्रमाण है।

3.7 मार्टिन बूबर (1878-1965)

अस्तित्ववादी विचारक मार्टिन बूबर का जन्म 1878 में विएना में हुआ। तीन साल की उम्र में माता-पिता के अलगाव के बाद बूबर का लालन पोषण उनके दादा दादी ने गैलिसिया में किया। युवावस्था(लगभग 26 वर्ष की आयु में) बूबर हासिदवाद की तरफ़ आकर्षित हुए। यह यहूदी पुनर्जागरण का वह आन्दोलन था, जिसने पूर्वी योरप में अट्ठारवीं शताब्दी में यहूदी समाज को पुनर्जीवित किया था। वह अपने निरंतर लेखन और अपने अध्यापन के काम के द्वारा महत्वपूर्ण सवाल उठाते रहते थे। बूबर वर्ष 1923 में फ्रैंकफर्ट

विश्वविद्यालय में धर्म एवं दर्शन के प्राध्यापक नियुक्त हुए। वह 1933 तक इस पड़ पर बने रहे। उन्होंने शिक्षा होने के नाते अध्यापन भी किया और द्वितीय विश्वयुद्ध की तरफ़ बढ़ रही दुनिया को रोकने की कोशिश भी की।

मार्टिन बूबर इस्राइल सरकार की आक्रामक एवं उग्र राष्ट्रवादी नीतियों के कटु आलोचक थे। उन्होंने अपने लेखन से अरब देशों और इस्राइल के बीच समस्या को सुलझाने की कोशिश भी की। वह हमेशा शिक्षा के सार्वभौमिक सत्य और सत्ता के कटु शब्दों में आलोचना करते हैं। उनकी दृष्टि में कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसके मात्र हस्तांतरण होने से वह ज्ञान को स्थापित कर दे। सन् 1965 ई. में जेरुशिलम में बूबर का निधन हो गया।

बूबर की रचनाओं में 'आई एंड दाओ'(1923), 'ऑन एजुकेशन'(1925), 'हसिदिसम'(1948), 'बिट्वीन मेन एंड मेन'(1948), 'एक्लिप्स ऑफ़ गॉड' (1952) आदि प्रमुख हैं।

3.7.1 शिक्षा की परिकल्पना

मार्टिन बूबर के अनुसार प्रत्येक बालक में सृजनात्मकता होती है। अतः वह ऐसी शिक्षा की परिकल्पना करते हैं, जहाँ शिक्षा का स्वाभाविक उद्देश्य विद्यार्थी में सोयी हुई इस सृजनशीलता के प्रस्फुटन हो। वह इसकी हेतु या कारक बने। बच्चों में इस स्वभाविक प्रवृति को ही वे 'ऑरिजनल इंस्टिंक्ट' कहते हैं। वह इस तत्व को इतना महत्वपूर्ण मानते हुए भी इसे अपने शिक्षा दर्शन का केन्द्रीय आधार नहीं बनाते।

हम देख रहे हैं, 'लोकतंत्र' और 'व्यक्तिवाद' की अवधारणाएँ जैसे-जैसे लोकप्रिय हुई हैं, उसके साथ-साथ शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में 'स्वतंत्रता' की धारणा भी उतनी प्रभावी होती गयी है। बूबर के यहाँ 'मुक्त प्रवाह' ही 'स्वतंत्रता' कहलाती है। वह यह तो मानते हैं कि स्वतंत्रता के बिना छात्र में किसी तरह का विकास संभव नहीं है लेकिन इसे बाध्यता के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनकी नज़र में 'स्वतंत्रता' मानवीय जीवन की निर्मिती के लिए भूमि का तो काम करती है लेकिन वह नींव का काम नहीं कर सकती। उनके अनुसार प्रकृति, समाज या नियति से मुक्ति जैसी कोई चीज़ नहीं हो सकती, क्योंकि कोई भी मनुष्य परिवेश के बिना नहीं रह सकता।

3.7.2 संवाद

अस्तित्ववादी विचार दर्शन में अकेलापन मानव जाति की यंत्रणा का मूल स्रोत है। लेकिन बूबर जैसे धार्मिक अस्तित्ववादी इस एकांत को अनुलन्घनीय नहीं मानते। यह ठीक है, व्यक्ति अकेला है लेकिन 'सहभागिता' के क्षणों में उसकी एकांतिकता को सम्पन्नता मिलती है। यही 'संवादात्मकता' है। यही 'आई' और 'दाओ' (I-Thou) का क्षण है। इसे ही बूबर 'सहभागिता' या 'कम्युनियन' के क्षण मानते हैं। यह 'संवाद' का प्रारम्भ है।

बूबर ने ज्ञानमीमांसीय अवधारणा का हवाला दिए बगैर शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य 'संवाद' हेतु संबंधों को व्याख्यायित करते हुए कहा, 'जो कुछ भी परस्पर खोजा जाता है, वह विशुद्ध रूप से पारस्परिक संवाद होता है, जिसमें दोनों की सामान भागीदारी होती है'। उनके मुताबिक़ शिक्षक को किसी भी तरह का

आवरण नहीं ओढ़ना चाहिए। वह जैसा है, उसे उसी रूप में अपने छात्रों के सामने आना चाहिए। वह शिक्षा को परिपक्वता की प्रक्रिया कहते हैं। यह परिपक्वता एक-दूसरे को जानने समझने के प्रयास से आती है। यह शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए सामान रूप से आवश्यक है। वे स्वतंत्रता, भरोसे और जिम्मेदारी को संवाद की पूर्व शर्तें मानते हैं। यह संवाद शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य एक आत्मीय रिश्ते के रूप में उभरता है।

3.8 पाओलो फ्रेरे (1921-1997)

पाओलो फ्रेरे का जन्म 19 सितम्बर 1921 को ब्राज़ील में हुआ। उन्होंने 1959 में रेसिफे विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की तथा इसी विश्वविद्यालय में शिक्षा के इतिहास और दर्शन के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। वह ब्राजील के साक्षरता अभियान से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे। निम्नवर्गीय परिवार में जन्म लेने और अपने देश में चारों गरीबी, विषमता, उत्पीड़न के विभिन्न रूपों को बहुत गहराई से देखा और विश्लेषित किया। वह इस बात को बहुत ही बलपूर्वक कहते थे कि जिस प्रकार राजनीति वर्गीय होती है, उसी तरह शिक्षा भी वर्गीय होती है।

उनके शिक्षा दर्शन को उनके समाज विज्ञान से अलग करके देखना एकदम व्यर्थ है। उनके लिए शिक्षा नए राज्य, लोकतंत्र और विकास के लिए अति आवश्यक भूमिका निभाती है। इसमें अध्यापक की भूमिका अपरिहार्य है। अध्यापक पर आलोचनात्मक शिक्षा देने का दायित्व है। क्योंकि जब सामजिक ढ़ांचे में दो वर्ग, निर्धन और धनाढ्य वर्ग, हों तब निर्धनों में चेतना के विकास होने के बाद उन्हें पता चलता है, धनाढ्य वर्ग उन्हें हेय दृष्टि से देखता है।

उनकी कुछ प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं-

‘उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र’(1970), ‘कल्चरल एक्शन फ़ॉर फ्रीडम’(1970), ‘एजुकेशन फ़ॉर क्रिटिकल कॉनशसनेस’(1973), ‘एजुकेशन: द प्रैक्टिस ऑफ़ फ्रीडम’(1976), द पॉलिटिक्स ऑफ़ एजुकेशन’(1985) ‘उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र’(1994)।

3.8.1 शिक्षा की बैंकीय अवधारणा

अगर हम पाओलो फ्रेरे के शिक्षा सम्बन्धी विचार को गहराई से जानना चाहते हैं, तब सर्वप्रथम हमें उनकी शिक्षा की बैंकीय अवधारणा को जितनी जल्दी हो सके समझ लेना चाहिए। उनके अनुसार शैक्षिक ढांचें में यह छात्र का उत्पीड़न करने का एक सशक्त औज़ार है, जहाँ हम शिक्षक के रूप में यह मान कर चलते हैं, कि सारी वैध ज्ञान राशि हमारे मस्तिष्क में संचित है। इसकी जगह हम पाठ्यपुस्तक या ऐसी ही कोई अन्य व्यवस्था को रख सकते हैं, जो अपनी श्रेष्ठता या वर्चस्व को स्थापित करती हो। अब चूँकि हम ‘ज्ञाता’ की

भूमिका में हैं और हमारे सामने जो विद्यार्थी या छात्र है, हम उसे 'अल्पज्ञ' या 'ज्ञान शून्य' मानकर अपने ज्ञान को उसके मस्तिष्क में भर रहे हैं। यह उत्पीड़न है.

इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षक और छात्र के सम्बन्ध को विश्लेषित किया जाये, तब हम पाते हैं, इसमें शिक्षा बैंक में पैसा जमा करने की तरह ही छात्रों में ज्ञानराशि जमा करने का एक काम बनकर रह जाती है। यहाँ शिक्षक 'जमाकर्ता' होता है और विद्यार्थी 'जमादार' होते हैं। इसमें शिक्षक सम्प्रेषण करने के बजाये विज्ञप्तियाँ जारी करता है। वह जिन चीज़ों को 'जमा' करते हैं, छात्र उन्हें धैर्यपूर्वक ग्रहण करते और रटते है तथा परीक्षा में या कभी पूछे जाने पर उनका पुनरुत्पादन करते हैं। इसमें छात्रों की सक्रियता के लिए सिर्फ़ इतनी गुंजाइश होती है कि वे हम उसके मस्तिष्क में अपने शब्दों द्वारा ज्ञान को अपने अन्दर जमा करता चले। दूसरे को अज्ञानी बताना उत्पीड़न की विशेषता है। इसके कारण छात्रों में आलोचनात्मक चेतना का विकास नहीं हो पाता क्योंकि शिक्षक सबकुछ जानता है और छात्र कुछ भी नहीं जानते। शिक्षक सोचता है और वही छात्रों के बारे में सोचता है। शिक्षक कर्म करता है और छात्र को कर्म करने का भ्रम होता है।

3.8.2 संवाद

क्या शिक्षा की इस उत्पीड़नकारी जकड़न से कभी नहीं निकला जा सकता? इससे बाहर आने का, आलोचनात्मक चेतना के विकास का कोई तो मार्ग होगा? जी, आप बिलकुल सही समझ रहे हैं। 'संवाद' ही वह मुक्तिदायक प्रक्रिया है, जिसके ज़रिये हम शिक्षा की बैंकीय अवधारणा से बाहर ही नहीं आ सकते बल्कि उत्पीड़न की किसी भी सम्भावना को ख़त्म भी कर सकते हैं। यहीं आप 'खोज' जैसे बाल केन्द्रित प्रत्यय की आहट को भी सुन सकते हैं। यह खोज आपस में मिलकर एक साथ की जायेगी। कोई अध्यापक नहीं है, कोई छात्र नहीं है।

इस संवाद की पहली शर्त है, संवाद उन्हीं के मध्य संभव है, जिनके बीच किसी भी तरह का पदानुक्रमिक सम्बन्ध न हो। मतलब संवाद वहीं हो सकता है, जहाँ हम एक-दूसरे को सामान स्तर पर लाकर आपस में बात कर पाने की क्षमता हैं। कक्षा के भीतर यह कैसे संभव है? वहाँ तो पारंपरिक रूप से एक शिक्षक है और बाकी सब छात्र हैं। पाओलो फ्रेरे अपनी पुस्तक 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' में इस स्तरीकृत सम्बन्ध को ही खारिज़ कर देते हैं। उनकी दृष्टि में किसी भी तरह का पदानुक्रम उत्पीड़न का कारक होता है।

जब कक्षा के भीतर न कोई सिखाने वाला होगा, न कोई सीखने वाला होगा, तब उनके बीच बातचीत से जो समझ बनेगी, वह उन दोनों की साझा पारस्परिकता से उत्पन्न हुआ ज्ञान होगा। संवाद के लिए जितनी आवश्यकता विनम्रता की है, उतनी ही ज़रूरत मनुष्य में, और उसकी निर्माण और पुनर्निर्माण की शक्ति में विश्वास की भी है। प्रेम, विनम्रता और विश्वास पर आधारित संवाद समस्तरीय बन जाता है।

पाओलो फ्रेरे के लिए अध्यापक सांस्कृतिक मुक्ति का वाहक होगा। वही हैं, जो उत्पीड़न के चक्र को समाप्त करने में उत्पीड़ित की मदद करेगा। शिक्षा इस अर्थ में सांस्कृतिक कर्म है। वही उत्पीड़न के औज़ार के रूप में संवाद विरोध और मुक्ति के औज़ार के रूप में संवाद को स्थापित करेगा। संवाद ही है

जिसके शुरू होने के बाद सहयोग, एकता, संगठन और सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रक्रियाएँ समाज को संक्रमण से मुक्ति की तरफ़ ले जाएँगी।

3.9 सारांश

इस इकाई में यह पाते हैं कि सभी विचारक 'खोज' पदबंध का प्रयोग किये बिना भी बाल केन्द्रित शिक्षा की बात कर रहे हैं। एक तरफ़ प्लेटो हैं, जो समाज में जन्माधारित वर्गीकरण को खारिज करते हैं। वह बताते हैं, विद्यार्थी किसी भी तरह के कौशल से संपन्न हो सकता है, यह उसकी रूचि, अभिवृति पर निर्भर करता है। जॉन डीवी के मतानुसार गतिविधियाँ इस प्रकार नियोजित हों, जो समाज से निकलकर आयें, तथा जिसमें छात्र अपने आप लक्षित उद्देश्य को प्राप्त हों। वह किस तरह आगे बढ़ रहे हैं, यह चयन उनका होगा। वह सही हैं या गलत हैं, इसका फैसला भी वह स्वयं करेंगे। अध्यापक के उत्तर छात्रों के उत्तर कभी नहीं हो सकते। उनके निर्णय के उत्तरदायी एकमात्र वह होंगे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी अपने विचारों से तत्कालीन अंग्रेज़ी औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की खामियों की तरफ़ इशारा भर नहीं करते बल्कि उसका विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं। जहाँ एक तरह 'शान्तिनिकेतन' है तो दूसरी तरफ़ वर्धा की 'नयी तालीम योजना'। दोनों ही जगह अध्यापक अपनी न्यूनतम भूमिकाओं के साथ उपस्थित हैं। दोनों अध्यापक की कोई ज़रूरत ही महसूस नहीं करते हैं। बच्चे अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसा लगता है जैसे मार्टिन बूबर और पाओलो फ्रेरे एक ही आधारभूमि पर 'संवाद' को स्थापित करते हैं। हम संवाद किससे और कहाँ कर सकते हैं? जहाँ प्रेम, सद्भावना, और कोई पदानुक्रम न हो। वह औपचारिक कक्षा में किसी को अध्यापक और छात्र की भूमिका में नहीं देखते। वह कहते हैं, यह आपसी संवाद ही 'ज्ञान' का सृजन करेगा।

3.10 शब्दावली

1. **उपयोगितावाद (Utilitarianism)-** एक आचार संहिता जिसकी मान्यता है कि आचरण तभी नैतिक है, जब वह अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की अभिवृद्धि करता है।
2. **व्यवहारवाद(Pragmatism) -** इसके अनुसार मनोविज्ञान में अध्ययन का आधार व्यक्ति की मांसपेशीय और ग्रंथिमूलक अनुकक्रियाएँ होती हैं।
3. **प्रकृतिवाद(Naturalism) -** पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन की वह विचारधारा है जो प्रकृति को मूल तत्त्व मानती है। छात्र के सन्दर्भ में यह उसकी सहज स्वाभाविकता है।
4. **अस्तित्ववाद(Existentialism) -** वह विचारधारा, जिसमें व्यक्ति के अस्तित्व को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। यह मनुष्य की परिभाषा नहीं करता, केवल उसकी स्थिति का विश्लेषण करता है। इसके प्रवर्तक सार्त्र और कामू आदि माने जाते हैं।

5. **उपनिवेश-** एक राज्य की अपनी भौगोलिक सीमा के बाहर अन्य स्थान पर बसी बस्ती उपनिवेश कहलाती है. हमारा देश 15 अगस्त, 1947 से पहले ब्रिटेन का उपनिवेश था।
6. **उत्पादक कार्य-** मुख्यतः वह कार्य जो चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में सबसे निम्न वर्ण(शूद्र) द्वारा किये जाते हैं। महात्मा गाँधी इन्हें हाथ से किये जाने वाले कार्य कहते हैं।
7. **शिक्षा की बैंकीय अवधारणा (Banking concept of Education) -** इस प्रक्रिया में अध्यापक जमाकर्ता और छात्र जमादार के रूप में अपनी भूमिकाएं निभाते हैं।
8. **आलोचनात्मक चेतना-** बुद्धि का ऐसा विकास, जिससे व्यक्ति को न सिर्फ़ अपनी वास्तविक स्थिति का पता चलता है बल्कि वह उस व्यवस्था को बदलने के लिए प्रयासरत भी हो जाता है.

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची / सहायक ग्रंथ सूची

1. अडीर कोहन(1983), '*एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ़ मार्टिन बूबर*', एसोशिएटिड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन।
2. आर. सी. लॉज (1947), '*प्लेटो'स थ्योरी ऑफ़ एजुकेशन*', केगन पॉल, लन्दन।
3. जॉन डीवी (2009), '*शिक्षा और लोकतंत्र*', ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली।
4. जॉन डीवी (2009), '*स्कूल और समाज*', आकार प्रकाशन, दिल्ली।
5. डी. मर्फी (1988), '*मार्टिन बूबर'स फिलॉसफी ऑफ़ एजुकेशन*', आयरिश अकेडमिक प्रेस, डब्लिन।
6. नंदकिशोर आचार्य (1998), '*आधुनिक विचार*', वाग्देवी, बीकानेर।
7. पाओलो फ्रेरे (1996), '*उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र*', ग्रन्थ शिल्पी, नयी दिल्ली।
8. पाओलो फ्रेरे (1997), '*प्रौढ़ साक्षरता*', ग्रन्थ शिल्पी, नयी दिल्ली।
9. प्लेटो (2010), '*रिपब्लिक*' (हिंदी अनुवाद: डॉ. आलोक कुमार), मेपल प्रेस, नोयडा।
10. महात्मा गाँधी (1942), '*हमारी शिक्षा का आदर्श*', श्री गाँधी ग्रंथकार, बनारस।
11. महात्मा गाँधी (1958), '*नयी तालीम की ओर*', नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
12. महात्मा गाँधी (2008), '*हिन्द स्वराज*', नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
13. रवीन्द्र नाथ ठाकुर (1997), '*रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन*', ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली।
14. संजीव ठाकुर(संपा।) (2013), '*बड़ों का बचपन*', एकलव्य, भोपाल।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्लेटो के 'आदर्श राज्य' में शिक्षा के द्वारा समाज का विभाजन किया गया है, क्या यह आज के समय में भी संभव है? अपने पक्ष में तर्क सहित उत्तर दीजिये।

2. रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी के शिक्षा के विचारों में आपको कौन-कौन सी समानताएँ दिखाई देती हैं? उन्हें विस्तार से व्यक्त कीजिए ।
3. क्या आपको मार्टिन बूबर और पाओलो फ्रेरे के संवादों (डायलॉग) में ऐतिहासिक क्रमबद्धता दिखती है? स्पष्ट कीजिए ।
4. पाओलो फ्रेरे की शिक्षा की 'बैंकिंग अवधारणा' बाल केन्द्रित क्यों नहीं है? स्पष्ट करें।
5. महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में 'उत्पादक कार्य' का क्या अर्थ है? अपनी समझ से उन कार्यों की एक विस्तृत सूची बनाईये।

खण्ड 2
Block 2

इकाई 2 -औद्योगिकीकरण , लोकतंत्र तथा वैयक्तिक स्वायत्तता एवं तर्क संबंधी विचारों द्वारा स्थापित ऐतिहासिक परिवर्तनों से उत्पन्न शिक्षा के सामाजिक आधार में आए बदलाव

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 समाज का अर्थ
2.3.1 समाज की परिभाषाएं
2.4 सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप
2.5 औद्योगीकरण का अर्थ
2.6 औद्योगीकरण की परिभाषा
2.7 भारत में औद्योगीकरण तथा इसके कारण
2.8 भारत में औद्योगीकरण की आवश्यकता
2.9 लोकतांत्रिक शिक्षा का अर्थ
2.10 लोकतांत्रिक शिक्षा का महत्व व आवश्यकता
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नवजात शिशु असहाय तथा असामाजिक होते है। वह न बालना जानता है, न चलना-फिरना। उसका न कोई मित्र होता है और न शत्रु। यही नहीं, उसे समात के रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का ज्ञान भी नहीं होता और न ही उसमें किसी आदर्श तथा मूल्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा पाई जाती हैं। परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ता जाता है। इस प्रभाव के कारण उसका जहॉ एक ओर शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास होता जाता है। वहाँ दूसरी ओर उसमें सामाजिक भावना भी विकसित होती जाती है। परिणामस्वरूप वह शनैः-शनैः प्रौढ़ व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निभाने के योग्य बन जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन के लिए व्यवस्थित शिक्षा की परम आवश्यकता है।

सच तो यह है कि शिक्षा से इतने लाभ है कि उनका वर्णन करना कठिन है। इस सन्दर्भ में यहाँ केवल इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि शिक्षा माता के समान पालन-पोषण करती है।

मानव समाज अपने आदर्शों, भावों तथा मान्यताओं तथा क्रियाओं को भावी सन्तति को प्रदान करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। जैसे-जैसे वह अनुभव करता है कि उसकी कुछ परम्पराएं, विचारधाराएं, मूल्य आदि पुरातन होते जा रहे हैं और वे उसे लाभप्रद सिद्ध नहीं हो रहे हैं, वैसे-वैसे वह उनको त्यागता चलता है और नवीन मान्यताओं, परम्पराओं, विचारधाराओं आदि को अपनाता जाता है। समाज इस कार्य को शिक्षा के माध्यम से करता है। समाज शिक्षा को प्रदान करने के लिये विभिन्न शैक्षिक साधनों- औपचारिक, अनौपचारिक तथा गैरऔपचारिक -को प्रयोग में लाता है। समाज औपचारिक साधनों के रूप में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करता है। जिसके द्वारा समाज के विचारों, भवों आदर्शों मूल्यों, क्रियाओं, मानदण्डों, परम्पराओं आदि को आने वाली सन्तति हो हस्तान्तरित एवं संरक्षित किया जाता है। इस सम्बन्ध में फ्रेंकलिन () का मत है-

"समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने सदस्यों में ऐसे ज्ञान, कौशलों, आदर्शों तथा आदतों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिये स्थापित करता है जो कि उसके स्वयं के स्थायित्व तथा निरन्तर विकास के लिये अनिवार्य है"।

लोकतन्त्रीय दृष्टि से शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किया जाता है और उसका समाजीकरण किया जाता है, इससे व्यक्ति और समाज दोनों का ही लाभ होता है। ड्यूवी ने लोकतन्त्र में शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, "लोकतन्त्र में ऐसी शिक्षा होनी चाहिये जा सामाजिक कार्यों तथा सम्बन्धों में व्यक्तिगत रुचि उत्पन्न कर सके और उनमें ऐसी मानसिक आदतों का निर्माण कर सके जो बिना कोई अव्यवस्था उत्पन्न किये सामाजिक परिवर्तन कर सकें"।

लोकतन्त्र में व्यक्ति और समाज दोनों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। व्यक्ति समाज का निर्माण करता है और समाज व्यक्ति के हित के लिये कार्य करता है और यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही किया जाता है। इस सम्बन्ध में हुमायूँ कबीर ने कहा है कि, "लोकतन्त्र सामाजिक संयोग और सामाजिक प्रगति के लिए पाशविक शक्ति को अनुनय में बदलने का प्रयास करता है। शक्ति की अपेक्षा विवेक को समाज का पथ-प्रदर्शन करने वाला सिद्धान्त बताने का अर्थ यह है कि शिक्षा व्यक्तियों को समाज में रचनात्मक सदस्यों के रूप में तैयार करें"।

बदलते परिवेश ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को आधुनिकता की चादर ने ढक दिया । जिसका सीधा प्रभाव परम्परागत शिक्षण-पद्धतियों के सुरूचिपूर्ण तरीके से प्रयोग करने पर पडा। और यही से परम्परागत शिक्षण-पद्धतियों के भटकाव शुरू हो गया। जिससे आधुनिक युग मे देखें तो विद्यार्थियों में नैतिकता का पूर्ण अभाव है। ऐसे विद्यार्थी राष्ट्र का तो क्या वे स्वयं का भी विकास नही कर सकते है। इनमें न तो कोई मूल्य है और न ही कोई चरित्र। विद्यालयों के नियमों को तोड़ना, सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचाना , मादक पदार्थ का प्रयोग करना, इनकी जीवन शैली का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। इनको इस भंवर जाल से निकालना अत्यावश्यक है। जिस के लिये अनेक मानदण्ड स्थापित करने होगें , तथा

मार्ग से विचलित विद्यार्थियों को विकास की मुख्य धारा में लाने हेतू इनके पाठ्यक्रम में नैतिकता व सदाचार से परिपूर्ण रचनाओं को स्थान देना होगा, तथा इन विद्यार्थियों के लिए परम्परागत शिक्षण-पद्धतियों का सुरूचिपूर्ण तरीके से प्रयोग करके प्राचीन शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त कराना होगा तभी समाज एंव देश का हित होगा। परम्परागत शिक्षण-पद्धतियाँ ही हमारी शिक्षा का आधार है। और इन्हीं से हम अपने राष्ट्र को विश्व गुरू के गौरव तक पहुंचाकर उसे सर्वश्रेष्ठ बना सकते हैं।

शिक्षा मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण निधि है जिसके द्वारा वह, अपने जन्म के प्रारम्भिक काल से अपने वजूद को गढ़ता आ रहा है। व्यक्ति जहाँ एक और अपने शारीरिक पक्ष के देखभाल के लिए भोजन पर निर्भर करता है। वही दूसरी ओर वह अपनी तरह के दूसरे व्यक्तियों के साथ गतिशील संबंधों की एक प्रणाली विकसित करता है। यह उसके समाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के रूप में पहचानी जाती है। वास्तव में मानव की समाजिक एवं सांस्कृतिक विकास शिक्षा द्वारा संभव हो पाता है। शिक्षा के द्वारा ही नए विचार, ज्ञान, अनुभवों तथा जीवन के विभिन्न नए रूपों का अदान-प्रदान होता है। शिक्षा के द्वारा ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का पुर्न निमार्ण तथा फलस्वरूप व्यक्तिगत एवं समाजिक जीवन का पुर्ननिर्माण होता है। इस तरह शिक्षा जीवन की मुख्य क्रिया है। समाजिक जीवन मे इसके बिना न तो समान्य एवं नहीं उर्वर जीवन की रूपरेखा को बुनना संभव है।

वर्तमान आधुनिक समाज में शिक्षा को जीवन संरक्षण तथा उन्नति का आधार माना जा रहा है। कुल लोग तो शिक्षा को ही जीवन मानते है। इसे समता, न्याय, आर्थिक विकास, समाजिक-सांस्कृतिक समावेशन तथा समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया या अभिकर्ता के रूप में रेखाकित किया जा रहा है। आम जन, पेशेवर समूह, विज्ञान, राजनीतिक समूह, गैर सरकारी संस्थान न्यायपालिका, विधि निर्माता एवं नीति निर्माता सभी किसी न किसी रूप में शिक्षा से सारोकार रखते है। परन्तु ये सभी शिक्षा की व्याख्या अलग-अलग अर्थो में करते है जिससे कई बार शिक्षा के उद्देश्य एवं प्रकृति के बारे में टकराव तथा भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. समाज का अर्थ समझ सकेंगे।
2. समाज को परिभाषित कर सकेंगे।
3. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समझ सकेंगे।
4. सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित कर सकेंगे।
5. औद्योगीकरण का अर्थ समझ सकेंगे।
6. लोकतांत्रिक शिक्षा का महत्व व आवश्यकता से परिचित हो सकेंगे।
7. यह सामान्यीकरण कर सकेंगे कि औद्योगीकरण: सामाजिक परिवर्तन का रूप है।

2.3 समाज का अर्थ

सामान्य रूप से व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। व्यक्तियों के इन समूह विशेषों का अध्ययन सभी सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। मानवशास्त्र में मनुष्यों के किसी भी समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है, यहां तक कि आदिम समुदाय को भी समाज कहा जाता है। भूगोल में क्षेत्र विशेष के समान सभ्यता वाले लोगों के समुदाय को समाज कहते हैं। जैसे-भारतीय समाज, यूरोपीय समाज। धर्मशास्त्र में धर्म विशेष के मानने वालों के समुदाय को समाज कहते हैं, जैसे- हिन्दू समाज, ईसाई समाज और मुसलमान समाज। राजनीतिशास्त्र में राज्य विशेष के लोगों के समूह को समाज कहते हैं, जैसे-भारतीय समाज, ब्रिटिश समाज और अमेरीकी समाज। परन्तु समाजशास्त्र में समाज का अर्थ इन सबसे भिन्न रूप में लिया जाता है।

स्माजशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों के समूह को समाज नहीं कहते अपित समूह के व्यक्तियों में पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्ध क्या हैं जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति सोचते होते हैं और एक-दूसरे के प्रति कुछ व्यवहार करते हैं तो हम कहते हैं कि उनके बीच समाजिक सम्बन्ध स्थापित हो गए है। यह आवश्यक नहीं कि ये सम्बन्ध मधुर और सहयोगात्मक ही हों, ये कुछ और संघर्षात्मक भी हो सकतें है समाजशास्त्र में इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समाज का सर्वप्रथम मूल तत्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक-दूसरे के प्रति सचेत होने के लिए यह आवश्यक है कि उनके उद्देश्य अथवा विचारों में या तो समानता हो या भिन्नता । इस प्रकार समानता अथवा भिन्नता समाज का दूसरा मूल तत्व होता है। यह पारस्परिक जागरूकता दो ही रूपों में पारिणित हो सकती है- सहयोग में अथवा संघर्ष में। इसलिए सहयोग अथवा संघर्ष को समाज का तीसरा मूल तत्व माना जाता है। वास्तुस्थिति यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक-दूसरे के प्रति सोचते हैं। और वे तब तक इन सम्बन्धों से नहीं बंधते जब तक उनकी एक-दूसरे से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। इसे समाजशास्त्री अन्योन्याश्रितता कहते हैं। यह समाज का चौथ मूल तत्व होता है। समाज के बारे में दो तथ्य और हैं, एक तो यह कि समाज अमूर्त होता है। और दूसरा यह कि यह केवल मुनष्य जाति में ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों और कीड़ों-मकोडों में भी पाया जाता है। यह बात दूसरी है कि समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।

2.3.1 समाज की परिभाषा

सभी समाजशास्त्री समाज की अमूर्त मानते हैं परन्तु उसकी परिभाषा उन्होंने भिन्न-भिन्न रूप में दी है कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्न प्रकार से है।

टाकटॉट पार्सन्स के शब्दों में- समाज को उन मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन तथा साध्य के सम्बन्ध द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न हुए हैं, वे चाहे वास्तविक हो अथवा प्रतीकात्मक।

मैकाइवर और पेज ने समाज को थोड़ा अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार-समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों की अधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और विभागों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सतत् परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।

इसी बात को उन्होंने आगे संक्षिप्ति रूप में इस प्रकार कहा है-

यह (समाज) सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल है जो सदैव बदलता रहता है।

लापियर महोदय द्वारा प्रस्तुत परिभाषा अपने में संक्षिप्त भी है और स्पष्ट भी। उनके शब्द में "समाज से तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तक्रियाओं की जटिल व्यवस्था से है"।

2.4 सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप

आजादी के एक लंबें अंतराल के बाद भी भारत विकसित देश की श्रेणी में भी तक नहीं आ सका है, जबकि हमारे बाद स्वतंत्र हुए कई देश सफलता की अग्रिम पंक्ति में हैं। ऐसा नहीं है कि प्रयास नहीं हुए। प्रयास हुए,तभी तो आज हम मंगलयान का अभियान पूरा कर पाए, लेकिन इस सच को सभी स्वीकारेंगे कि विकास की गति काफी धीमी है। एक सौ बीस करोड़ की आबादी वाला देश अगर चाहे तो क्या नहीं कर सकता,खासकर जब इनमे युवाओं की संख्या सर्वाधिक हो। तो फिर क्या कारण है हमारे विकास की गति धीमी रही क्या अवसर की कमी रही या अर्थ की या फिर सामाजिक परिस्थितियां विकास के अनुकूल नहीं थीं या फिर लाल फीताशाही रही जिम्मेदार, धर्म, जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, सम्प्रदाय आदि में बंटे देश से हम उम्मीद भी कितना का सकते है समस्या एक हो तो उसकी चर्चा की जा सकती है,लेकिन यहां तो समस्याएं अनंत है। वैश्वीकरण के इस दौर में हमने सबसे अधिक किसी चीज को अंगीकार किया है तो वह है, उपभोक्तावादी संस्कृति। साथ ही हमने वैश्वीकरण में आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण किया। हम वैश्वीकरण की सही भावना को शायद समझ न सके।

कोई भी समस्या ऐसी नहीं है जिसका समाधान न हो। आवश्यकता है सापेक्ष सोच की, एक ऐसे प्रयास की,जिसमें सच्चाई हो और सामाजिक परिवर्तन की चाह हो। सदी के विकास लक्ष्यों के हम नजदीक भी नहीं पहुंच पाए और समय बीत गया। विकास की गति को अकेले सरकार या फिर व्यक्ति या फिर संस्था तेज नहीं कर सकती। इसके लिए एक समग्र एवं सामुहिक प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए जहां एक ओर सरकार की राजनीतिक इच्छा शक्ति चाहिए, वहीं कॉरपोरेट,स्वयंसेवी संस्थान तथा अन्य संस्थनों की सहभागिता भी।

परिर्वतन समाज का नियम है। समाज में हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। सम्भवतः कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिस में परिवर्तन न हुए हों। हां, इतना आवश्यक है किसी समाज में यह परिवर्तन तेजी के साथ होता है

और समाज शीघ्र ही परिवर्तन की लपेट में आकर एकदम से बदल जाता है, किसी समाज में यह परितर्वन धीरे-धीरे होता है और किसी समाज में सामान्य गति से। अतः समाज परिवर्तनशील है। जब से समाज की उत्पत्ति हुई है तब से समाज के रहन-सहन और खान-पान की विधियां पारिवारिक और वैवाहिक व्यवस्थाएं रीतियां और रिवाज, मूल्य और मान्यताएं बदलती रही हैं। दूसरे शब्दों में हम यूं कह सकते हैं कि प्रत्येक समाज की सभ्यता और संस्कृति में परिवर्तन होता रहता है।

औद्योगीकरण को भारत में सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। यह नगरीकरण का कारण और परिणाम दोनों है, अतः अक्सर औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की विवेचना एक संयुक्त प्रक्रिया के रूप में की जाती है। यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही अनेक ऐसे अविष्कार होना शुरू हो गये जिनकी सहायता से हाथ की जगह मशीनों के द्वारा अनेक वस्तुओं का उत्पादन करना सम्भव हो गया। इसके फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड और यूरोप के अनेक दूसरे देशों में औद्योगीकरण अथवा मशीनों द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन का इस कारण तेजी से विस्तार होने जिससे यह देश अपने उपनिवेशों में अधिक से अधिक वस्तुएं बेचकर भारी लाभ प्राप्त कर सकें। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय से ही ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में सूती कपड़ो, चीनी और जूट के कुछ बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य भारत में उपलब्ध कच्चे माल तथा यहाँ प्राप्त होने वाले सस्ते श्रम का अधिकतम उपयोग करके दूसरे देशों के साथ होने वाली प्रतिस्पर्द्धा में सफलता प्रराप्त करना था मशीनों द्वारा बड़ी मात्रा में किया जाने वाला उत्पादन जब लाभप्रद सिद्ध होने लगा तो बीसवीं शताब्दी क आरम्भ से अनेक दूसरे क्षेत्रों में भी बडे-बड़े कारखानों की स्थापना हाने लगी। मशीनों से बनने वाली वस्तुएं सस्ती होने के कारण ग्रामीण उद्योग धन्धे उनसे प्रतिस्पर्द्धा नही कर सके। गांव के लाखों कारीगर बेरोजगार होकर इन कारखानों में श्रमिकों के रूप में काम करने के लिए विवश हो गये। यही वह दशा है जिसने एक प्रक्रिया के रूप में हमारी सम्पूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक संरचना को बदलना आरम्भ कर दिया। इस दशा में यह आवश्यक है कि औद्योगीकरण के अर्थ तथा भारत में औद्योगीकरण की वर्तमान स्थिति को समझकर सामाजिक-आर्थिक जीवन में इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रमुख परिवर्तनों पर विचार किया जाए।

2.5 औद्योगीकरण का अर्थ

उद्योगों का विकास प्रत्येक समाज की एक अनिवार्य विशेषता है। इसके बाद भी उद्योगों का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की प्रविधि से होता है। भारत में आज से हजारों वर्ष पहले से यहाँ के अनेक उद्योग दुनिया भर में प्रसिद्ध थे। उस समय की प्रविधि अथवा प्रौद्योगिकी हस्तशिल्प पर आधारित थी। धीरे-धीरे हमारा प्रौद्योगिक ज्ञान जब इस अवस्था में पहुंच गया कि हाथ से बनी हुई वस्तुओं का स्थान मशीनों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं द्वारा लिया जाने लगा, तब इस प्रक्रिया को औद्योगीकरण के नाम से सम्बोधित किया गया। साधारणतया यह समझा जाता है कि औद्योगीकरण का तात्पर्य उन भौतिक वस्तुओं के उत्पादन से है जिनके द्वारा हम दैनिक जीवन की सुख-सुविधाओं को प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि को प्राप्त करते हैं। इस

दृष्टिकोण से घरेलू उपकरणों, बिजली के सामान, मशीनों, यातायात के साधनों, टेलीफोन और टेलीविजन जैसी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होना ही औद्योगीकरण है। वास्तव में, यह औद्योगीकरण का बहुत संकुचित अर्थ है। व्यापक अर्थ में औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मशीनों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का बड़ी मात्रा में उत्पादन करके देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता है। स्पष्ट है कि जब हम खनिज पदार्थो, पानी, ऊर्जा तथा व्यापारिक फसलों, जैसे- तिलहन, पटसन और कपास आदि के आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा के उत्पादन में उनका उपयोग करते हैं, तब इस प्रक्रिया को औद्योगीकरण कहा जाता है। इस दृष्टिकोण से औद्योगीकरण उत्पादन का एक विशेष विधि है।

2.6 औद्योगीकरण की परिभाषा

विलबर्ट मूरे ने औद्योगीकरण की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए लिखा है, “ औद्योगीकरण वह शब्द है जिसका उपयोग आर्थिक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में शक्ति के निर्जीव स्त्रोतों का व्यापक रूप से उपयोग की प्रक्रिया को ही औद्योगीकरण नहीं कहा जा सकता। औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राकृतिक स्त्रोतों का मशीनों की सहायता से इस तरह उपयोग किया जाता है जिससे आर्थिक रूप से उपयोगी वस्तुओं का अधिक से अधिक उत्पादन करने के साथ ही लोगों की सेवाओं और कुशलताओं का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके।

क्लार्क केर के शब्दों में, “औद्योगीकरण का अभिप्राय एक ऐसी दशा से है जिसमें पहले का कृषक अथवा व्यापारिक समाज एक औद्योगिक समाज की दिशा की ओर परिवर्तित होने लगता है”। औद्योगिक समाज की प्रमुख विशेषता व्यक्तिगत लाभ के लिए उत्पादन करना है। इस प्रकार जब कृशि तथा व्यापार का उद्देश्य बड़ी मात्रा के उत्पादन द्वारा व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना हो जाता है तब इसे हम औद्योगीकरण कहते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा दी गयी एक रिपोर्ट में कहा गया है “औद्योगीकरण आर्थिक विकास की प्रक्रिया का एक विशेष अंग है जिसका उद्देष्य उत्पादन के साधनों की क्षमता को बढ़ाकर जन-जीवन के स्तर को ऊंचा उठाना होता है”।

इन विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर औद्योगीकरण की प्रकृति को इसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं की सहायता से इस प्रकार समझा जा सकता है:

i. औद्योगीकरण आर्थिक विकास की एक विशेष प्रक्रिया है जिसमें उत्पादन का कार्य हाथ की जगह मशीनों द्वारा किया जाता है।
ii. इस प्रक्रिया का उद्देश्य देश के प्राकृतिक और मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करना है।
iii. औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जो श्रम-विभाजन और विशेषीकरण पर आधारित होती है।

iv. इस प्रक्रिया में उत्पादन का उद्देश्य नयी प्रविधियों के उपयोग द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता है।

v. पूंजी का संचय औद्योगीकरण का एक आवश्यक तत्व है क्योंकि बड़ी पूंजी के बिना बड़ी मात्रा में उत्पादन नहीं किया जा सकता।

vi. औद्योगीकरण का सम्बन्ध केवल वस्तुओं के उत्पादन से ही नहीं है बल्कि इसके द्वारा लोगों के श्रम और सेवाओं की उपयोगिता को बढ़ाने का भी प्रयत्न किया जाता है।

vii. एक प्रक्रिया के रूप में यह सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन का प्रमुख स्त्रोत है।

2.7 भारत में औद्योगीकरण तथा इसके कारण

भारत में औद्योगीकरण का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से ही हो चुका था लेकिन औद्योगीकरण का वास्तविक विकास इस शताब्दी के मध्य से हुआ। इस समय भारतीय पूंजी से यहां अनेक सूती कपड़ों, पटसन और लोहे के कारखानों की स्थापना हुई। इसके बाद भी ब्रिटिश सरकार भारत में उद्योगों को अधिक विकसित करने के पक्ष में नही थी क्योंकि इससे इंग्लैण्ड के आर्थिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। फलस्वरूप कुछ प्रमुख उद्योगों की स्थापना होने के बाद भी सामान्य भारतवासी अपनी छोटी से छोटी आवश्यकता को पूरा करने के लिए भी इंग्लैण्ड और जापान में बनी वस्तुओं पर ही निर्भर रहते थे।

भारत में स्वतंत्रता के बाद जब नियोजित आर्थिक विकास की नीति अपनायी गयी, तब औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाने लगी। सरकार ने यह लक्ष्य निर्धारित किया कि देश में उपलब्ध कच्चे माल और प्राकृतिक संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने उत्पादन में वृद्धि की जाए तथा रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर जनसामान्य के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाया जाए । नयी औद्योगिक नीति के द्वारा एक ओर निजी क्षेत्र में स्थापित किये जाने वाले कारखानों को विशेष सुविधाएं दी गयी तो दूसरी ओर सरकार ने स्वंय सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े-बड़े उद्योग स्थापित करना आरम्भ किया। फलस्वरूप भारत में विभिन्न उद्योगों का तेजी से विकास होने लगा। आज भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि इस समय हमारे देश में 1475 कपड़े की मिलों, 107 जूट मिलों, 527 चीनी की मिलों, 55 कागज का उत्पादन करने वाली बड़ी मिलांे, बड़ी मात्रा में सीमेन्ट का उत्पादन करने वाले 124 कारखानों, 67 खाद बनाने के कारखानों तथा मशीनों का निर्माण करने वाले छोटे-बड़े 127 संयन्त्रों की स्थापना की जा चुकी है। लोहे और इस्पात का उत्पादन करने वाले इतने बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हुई कि जिन स्थानों पर यह कारखाने लगे, वहां भिलाई, दुर्गापुर, जमशेदपुर, बोकरो, राउरकेला तथा बुहारनपुर जैसे बड़े-बड़े औद्योगिक नगर विकसित हो गये। इसके अतिरिक्त रबर उद्योग, चमड़ा उद्योग, पैट्रोलियम, वनस्पति तेलों, रासायनिक उद्योगो, जहाजरानी, खान उद्योग, रेलवे, दवाओं के उत्पादन, बिजली के भारी संयत्रों, रक्षा-उपकरणों तथा जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं से सम्बन्धित दूसरे उद्योगों का भी तेजी से विस्तार हुआ। ऐसे आधार उद्योगों के विकास पर भी विशेष जो

दिया गया जिनकी सहायता से दूसरे सैकड़ों उद्योग विकसित हो सकें। इन उद्योगों में श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या से भी भारत में औद्योगीकरण के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। आज केवल संगठित उद्योगों में ही लगभग 2.90 करोड़ श्रमिक कार्य कर रहें है, जबकि दूसरे उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या इससे अधिक है। औद्योगीकरण का ही परिणाम है कि भारत में न केवल नगरों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है बल्कि व्यक्तियों के जीवन स्तर में भी काफी सुधार हुआ है।

एक लम्बे समय से कृषि-प्रधान देष रहने के बाद भी भारत में औद्योगीकरण का जिस तेजी से विस्तार हुआ, वह अनेक दशओं का परिणाम है। अनेक विद्वान यह मानते हैं कि औद्योगीकरण का आविश्कारों तथा प्राकृतिक संसाधनों से एक घनिष्ट सम्बन्ध है लेकिन ऐतिहासिक प्रणामों से स्पष्ट होता है कि किसी भी देष में औद्योगीकरण का तब तक विकास नही हो सका जब तक उस देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ नियोजित परिवर्तन के अवसर प्राप्त न हुए हों। इसका तात्पर्य है कि भारत में भी राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा पंचवर्षीय योजनाएं औद्योगीकरण का सर्वप्रमुख आधार है। इसके बाद भी कुछ अन्य सहायक दशाओं की प्रकृति का निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है।

i. **प्राकृतिक संसाधनो की प्रचुरता -** औद्योगीकरण के लिए आवश्यक है कि देश में ऐसे प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हो जो उद्योगों की विभिन्न मांगो का पूरा कर सके। भारत में लोहे, कोयले, अभ्रक और मैगनीज जैसी खनिज सम्पत्तियों के विशाल भण्डार है। पेट्रोलियम की मात्रा भी संतोषप्रद है। जल-शक्ति के क्षेत्र में भारत संसार के सबसे धनी देशों में से एक है। यहां ऐसी वनस्पतियां उपलब्ध है जिनकी सहायता से विभिन्न प्रकार की औषधियां बनायी जा सकती है। स्वतन्त्रता के बाद जब इन संसाधनों के अतिरिक्त कृषि-उपज से प्राप्त विभिन्न पदार्थो का व्यापारिक उपयोग किया जाने लगा ता औद्योगीरण में वृद्धि होना स्वाभाविक था।

ii. **नयी प्रौद्योगिकी का विकास -** औद्योगीकरण के लिये नयी प्रौद्योगिगकी पर आधारित उन्नत ज्ञान आवश्यक है। यह सच है कि भारत में औद्योगीकरण से सम्बन्धित उन अविष्कारों का भी लाभ उठाया गया जो पश्चिमी समाजों के विकसित हुए थे लेकिन यहां की आवश्यकताआं के अनुसार जब स्वदेशी प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास होने लगा, तब विदेशों पर हमारी निर्भरता समाप्त हो गयी। आज भारत में ऐसी सभी मशनों और उपकरणो का निर्माण हो रहा है जो औद्योगीकरण के लिए आवश्यक है।

iii. **श्रम-शक्ति की प्रचुरता -** विकसित देशों की तुलना में हमारे देश में श्रम-शक्ति कहीं अधिक है। गांवों में जिन लाखो-करोड़ों लोगों को कृषि भूमि प्राप्त नही है अथवा जो वर्ष में अधिकांश समय तक बेरोजगार रहते है, वे कम मजदूरी पर उद्योगों में श्रमिकों के रूप में काम करने के लिये तैयार हो जाते है इनके द्वारा किये जाने वाले औद्योगिक उत्पादन की लागत भी कम होती । यह एक ऐसी दशा है जिसके फलस्वरूप यहां औद्योगिक विकास सरलता से सम्भव हो सका।

iv. **परिवहन की सुविधाएं -** औद्योगिक विकास के लिए परिवहन की सुविधाएं एक आधारभूत दशा है। इस समय भारत में एक लाख किलोमीटर से अधिक लम्बी रेल लाईन है। दुनिया में सड़को का सबसे बड़ा जाल भारत में है तथा सभी और जनजातीय समुदाय के लोगों को एक

स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की सुविधा उपलब्ध है। देश के किसी भी भाग में जब एक नए उद्योग की स्थापना होती है अथवा किसी उद्योग का विस्तार होता है तो परिवहन की सुविधायो के फलस्वरूप ही श्रमिकों की आपूर्ति होने में कोई कठिनाई नही होती। इस दशा में भी औद्योगीकरण के विकास में योगदान किया।

v. **अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा -** भारत में औद्योगीकरण के विकास का एक अन्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में भरत द्वारा हिस्सा लेना है। वर्तमान युग में कोई भी देश अपनी आर्थिक स्थिति को केवल तभी मजबूत बना सकता है जब वह दूसरे देशों से वस्तुओं का आयात करने के साथ ही स्वंय भी विभिन्न वस्तुओ का बड़ी मात्रा के उत्पादन करके उनका दूसरे देशों को निर्यात कर सके। आयात और निर्यात के सन्तुलन से ही हमारी अर्थव्यवस्था मजबूत बनती है। स्वतन्त्रता के बाद भारत ने आर्थिक क्षेत्र में जैसे-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में हिस्सा लेना शुरू किया, यहां औद्योगीकरण में वृद्धि होती गयी।

vi. **जीवन-स्तर में सुधार -** भारत में स्वतन्त्रता के बाद सभी वर्गों और क्षेत्रों के लोगों के जीवन-स्तर में उल्लेखनीय सुधार हुआ। जीवन-स्तर में सुधान होने से पहले उपभोग की सामान्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं की मांग बढ़ी और बाद मे उन वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी जिनका सम्बन्ध लोगों की कार्य-कुशलता को बढ़ाने से होता है। इन बढ़ी हुई मांगों को पूरा **करने के लिए नए -नए उद्योग स्थापित होने लगे।**

vii. **आर्थिक नीतियां -** हमारे देश में औद्योगीकरण का एक प्रमुख कारण सरकार की आर्थिक और औद्योगीकरण नीतियां है। भारत में स्वतन्त्रता के समय से ही एक मिश्रित अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया गया। इसमें आधारभूत उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया गया, जबकि अन्य उद्योगों का विकास निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया। श्रम-कल्याण तथा श्रम-सुरक्षा के लिए ऐसे बहुत से कानून बनाये गये जिससे श्रमिकों के शोषण को रोका जा सके तथा उनकी कार्य-कुशलता को बढ़ाया जा सके। यह दशा भी औद्योगीकरण के विकास में सहायक सिद्ध हुई।

उपर्युक्त दशाओं के अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं द्वारा दिया जाने वाला प्रौद्योगीक ज्ञान, नए आविष्कार, नगरीकरण की प्रक्रिया तथा बैंकिग सुविधाओं का विस्तार आदि वे सहायक दशाएं है जिन्होंने औद्योगीकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

2.8 भारत में औद्योगीकरण की आवश्यकता

वर्तमान विश्व में कोई देश चाहे विकसित हो अथवा विकासशील, औद्योगीकरण सभी देशों की एक प्रमुख आवश्यकता है। सच तो यह है कि आज विभिन्न देशो की षक्ति का मूल्यांकन उनके औद्योगीक विकास के आधार पर ही किया जाता है। अनके विद्वान यह मानते है कि संसार में केवल उन्हीं सभ्यताओं का एक लम्बा इतिहास रहा है जिनकी अर्थव्यवस्था कृशि प्रधान होती है। लेकिन यूरोप और खाड़ी के अनेक देशों

के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि जिन देशों के पास खेती के लिए पर्याप्त भूमि भी उपलब्ध नहीं है, उन्होने औद्योगिक विकास के द्वारा अपने निवासियों के जीवन-स्तर को काफी ऊंचा बना लिया। इस सन्दर्भ में औद्योगीकरण की क्या आवश्यकता है ? ब्रिटिश शासन के बाद भारत जब स्वतन्त्र हुआ, तब हमारे सामने ऐसी अनेक गम्भीर समस्याएं थी जिनका समाधान औद्योगीकरण के द्वी द्वारा किया जा सकता था। इस सन्दर्भ में यहां औद्योगीकरण की आवश्यकता को निम्नांकित क्षेत्रो में स्पष्ट किया जा सकता है -

i. सर्वप्रथम, देश के आर्थिक संसाधनों का समुचित उपयोग करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। कोई भी देश अपने खनिज पदार्थों और प्राकृतिक षक्तियों का तब तक पूर्ण उपयोग नहीं कर सकता जब तक वहां विभिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास न हो। यहां तक कि खेती में व्यापारिक फसलों को भी प्रोत्साहन तभी मिल पाता है जब औद्योगिक विकास के द्वारा उनका समुचित उपयोग किया जाए।
ii. देश के सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए भी औद्योगीकरण आवश्यक है। भारत में आज भी यहां की तीन-चौथाई जनसंख्या कृषि पर आधारित होने के कारण बहुत निर्धन है। औद्योगीकरण के द्वारा एक ओर कृषि-भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम किया जा सकता है तो दूसरी ओर भूमिहीन किसानों को उद्योगों में रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्राप्त हो सकत हैं। औद्योगीकरण के साथ सभी वर्गो के लोगों को व्यापार और वाणिज्य की अतिरिक्त सुविधाएं मिलने से उनकी आर्थिक स्थिती में सुधार होता है।
iii. भारत जैसे विकासशील देश में विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक असमानताओं को दूर करना औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव है। उदाहरण के लिये, पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे उद्योगों को स्थापित करके तथा खनिज पदार्थो वाले क्षेत्रों के निकट बड़े उद्योग स्थापित करके लोगों को आजीविका के अधिक अवसर मिल सकते है।
iv. कृषि के विवेकपूर्ण संगठन के लिए भी औद्योगीकरण आवश्यक है। औद्योगीकरण के बिना न तो किसानों को रासायनिक खादें, उन्न कृषि उपकरण तथा सिंचाई के साधन प्राप्त हो सकते है और न ही उन्हें अपनी कृषि उपज का समुचित मूल्य प्राप्त हो सकता है। इसका तात्पर्य है कि भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में औद्योगीकरण के द्वारा ही कृषि उत्पादन में वृद्धि करके कृषकों की दशा में सुधार किया जा सकता है।
v. बेरोजगारी की समस्या का प्रभावपूर्ण समाधान औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव है। औद्योगीकरण से लोगों को केवल कारखानों में काम करने के ही अवसर प्राप्त नहीं होत बल्कि ऐसे बहुत से नए व्यवसाय भी स्थापित होने लगते है जिनसे एक बड़ी संख्या में लोगों को आजीविका उपर्जित करने के अवसर मिल जाते हैं। व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि होने से भी बेरोजगारी की समस्या अधिक गम्भीर नहीं रह जाती।
vi. औद्योगीकरण का जनसाधारण के जीवन-स्तर में सुधार लाने में एक प्रत्यक्ष योगदान होता है। उत्पादन में वृद्धि होने से प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तथा इसके साथ ही लोगों की कार्य-कुशलता भी बढ़ने लगती है।

vii. आज सभी व्यक्ति औद्योगीकरण को इसलिए आवश्यक मानते है कि यह सामाजिक परिवर्तन एक प्रमुख स्त्रोत है। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप व्यक्तियों के जीवन-स्तर में ही सुधार नहीं होता बल्कि उनकी मनोवत्त्यिों और विचारों में भी परिवर्तन होने लगता है। औद्योगिक विकास के साथ शिक्षा को एक ऐसा स्वरूप मिलने लगता है जो तर्क और विवेक पर आधारित होता है। इससे अन्धविश्वासों, कृप्रथाओं और भाग्यवादिता में कमी होने लगती है। मेहनत, कार्य-कुशलता और समय का अधिकतम उपयोग औद्योगीकरण से उत्पन्न होने वाली कुछ प्रमुख दशाएं है।

viii. राष्ट्रीय शक्ति के विकास के दृष्टिकोण से भी भारत के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। आज किसी राष्ट्र का मूल्यांकन उसकी सैनिक शक्ति के आधार पर नहीं किया जाता बल्कि औद्योगिक अथवा आर्थिक शक्ति के आधार पर किया जात है। वर्तमान दशाओं में औद्योगीकरण के द्वारा ही हमारे देश को वे साधन प्राप्त हो सकते है जो देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है।

आजादी के एक लंबें अंतराल के बाद भी भारत विकसित देश की श्रेणी में अभी तक नहीं आ सका है, जबकि हमारे बाद स्वतंत्र हुए कई देश सफलता की अग्रिम पंक्ति में हैं। ऐसा नहीं है कि प्रयास नहीं हुए। प्रयास हुए, तभी तो आज हम मंगलयान का अभियान पूरा कर पाए, लेकिन इस सच को सभी स्वीकारेंगे कि विकास की गति काफी धीमी है। एक सौ बीस करोड़ की आबादी वाला देश अगर चाहे तो क्या नहीं कर सकता,खासकर जब इनमे युवाओं की संख्या सर्वाधिक हो। तो फिर क्या कारण है हमारे विकास की गति धीमी रही क्या अवसर की कमी रही या अर्थ की या फिर सामाजिक परिस्थितियां विकास के अनुकूल नहीं थीं या फिर लाल फीताशाही रही जिम्मेदार, धर्म, जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, सम्प्रदाय आदि में बंटे देश से हम उम्मीद भी कितना का सकते है समस्या एक हो तो उसकी चर्चा की जा सकती है, लेकिन यहां तो समस्याएं अनंत है। वैश्वीकरण के इस दौर में हमने सबसे अधिक किसी चीज को अंगीकार किया है तो वह है, उपभोक्तावादी संस्कृति। साथ ही हमने वैश्वीकरण में आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण किया। हम वैश्वीकरण की सही भावना को शायद समझ न सके।

कोई भी समस्या ऐसी नहीं है जिसका समाधान न हो। आवश्यकता है सापेक्ष सोच की, एक ऐसे प्रयास की, जिसमें सच्चाई हो और सामाजिक परिवर्तन की चाह हो। सदी के विकास लक्ष्यों के हम नजदीक भी नहीं पहुंच पाए और समय बीत गया। विकास की गति को अकेले सरकार या फिर व्यक्ति या फिर संस्था तेज नहीं कर सकती। इसके लिए एक समग्र एवं सामुहिक प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए जहां एक ओर सरकार की राजनीतिक इच्छा शक्ति चाहिए, वहीं कॉरपोरेट, स्वयंसेवी संस्थान तथा अन्य संस्थानों की सहभागिता भी।

विद्यालय समाज का लघु रूप है। इसका एक अर्थ यह भी है कि वह समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बत करता है। अस्तु उसे समाज की आवश्यकताओं के परिवर्तन के साथ-साथ बदलते रहना चाहिये। आधुनिक काल में समाज के जनतन्त्रीय मूल्यों को सबसे ऊंचा स्थान दिया जाता है। दूसरे शब्दों मे, स्वतंत्रता, सामानता और भ्रातृत्व आज समाज की मांगें हैं ऐसी स्थिति में

विद्यालय में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिये, जिनसे विद्यार्थियों में जनतन्त्रीय गुणों का विकास हो। विद्यालय में विभिन्न संस्थाएं स्वयं विद्यार्थियों के द्वारा चलायी जानी चाहिये और इनके संविधान जन्तन्त्रात्मक होने चाहिये । इससे इन संस्थाओं में भाग लेकर विद्यार्थी जनतन्त्रीय जीवन का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। विद्यालयों के द्वारा ही समाज से योग्य शासकों और नेताओं का निर्माण होता है। आज के विद्यार्थी ही कल के समाज में विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करेंगे। इस बात को ध्यान में रखते हुये विद्यालय में अनुशासनन, शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम आदि शिक्षा के विभिन्न अंगों में ऐसे सिद्धान्त अपनाये जाने चाहियें जिनसे बालाकों के जनतन्त्रीय नेतृत्व का विकास हो।

एक लघु समुदाय के रूप में विद्यालय के डीवी द्वारा खीचें गये चित्र को अनेक आधुनिक विद्यालयों में सजीव रूप देने का प्रयास किया गया है उसके विचारों से स्कूल में स्वशासन और स्वयवस्था के सिद्धान्त माने जाने लगे। आधुनिक काल में एक्टीविटी स्कूल और योजना-प्रणाली के रूप में विद्यालय-संगठन शिक्षा-पद्धति पर डीवी का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

समाज शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करके उनसे इस बात की अपेक्षा करता है कि वे बालकों में उन गुणों को विकसित करें, जिन्हें प्राप्त कर वे समाज की विभन्न क्रियाओं में कुशलतापूर्वक भाग ले सकें। समाज अपनी ओर से प्रत्येक व्यक्ति के विकास एवं उसके हितों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है और उससे अपेक्षा करता है। कि वे सामाजिक जीवन को स्थायित्व प्रदान करें। इससे स्पष्ट है कि विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह है कि बालक तथा बालिकाओं को समाज के आदर्शों , विचारधाराओं एवं परम्पराओं आदि से अवगत कराये तथा उनमें समाज को समृद्ध बनाने के लिये उत्कण्ठा उत्पन्न करें।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज शिक्षा की समुचित व्यवस्था किये बिना जीवित नहीं रह सकता और न ही शैक्षिक संस्थाऐं समाज की मांगों को पूर्ण किये बिना स्थिर रह सकती है। जिस समाज में विद्यालय स्थित होता है, उसका विद्यालय पर सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव अवश्य पड़ता है। जो नागरिक विद्यालय का व्यय-भार उठाते हैं वे उसकी शिक्षा की मात्रा तथा प्रकार पर नियन्त्रण रखते हैं। विद्यालय अपना आदर्श प्रस्तुत करके तथा समाज की अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना करके उसके दूषित वातावरण को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करता है। साथ ही वह ऐसे नागरिकों को तैयार करता है जो भावी समाज का निर्माण करते हैं अतः इन दोनों में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है।

2.9 लोकतांत्रिक शिक्षा का अर्थ

लोकतन्त्रीय शिक्षा का अर्थ है-शिक्षा से लोकतन्त्र की विचारधारा का प्रभाव। शिक्षा के क्षेत्र में लोकतन्त्र के सिद्धान्तों तथा मूल्यों का समावेश अभी कुछ वर्ष पूर्व से ही हुआ है। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन का श्रेय अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी को है। उसने बताया है कि 'एक लोकतन्त्रीय समाज में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक कार्यों तथा सम्बन्धों में निजी रूप से

रुचि ले सके। इस शिक्षा को मनुष्य में प्रत्येक सामाजिक परिवर्तनों को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करने की सामर्थ्य उत्पन्न करनी चाहिये।' डीवी के इस कथन से लोकतन्त्र के सिद्धान्तों तथा मूल्यों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जा जाने लगा। परिणामस्वरूप अब दिन-प्रतिदिन जनसाधारण की शिक्षा का आन्दोलन चारों ओर जोर पकड़ता जा रहा है। ठीक भी है शिक्षित होने पर ही व्यक्ति अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागरूक हो सकता है तथा अपने कर्तव्यों को जनहित के लिए निभाने में तत्पर हो सकता है। अशिक्षित एक ऐसा वर्ग बन जाता है जो दूसरे व्यक्तियों के ऊपर अपनी इच्छाओं को थोपने लगता है। इससे लोकतन्त्र का मुख्य लक्ष्य नश्ट हो जाता है। चूँकि लोकतन्त्रीय व्यवस्था में देश के सभी नागरीक शासन में भाग लेते हैं, इसीलिए उन सब में शिक्षा के द्वारा इतनी योग्यता अवश्य उत्पन्न की जानी चाहिये कि वे मतदान के महत्व को समझते हुए अपने कर्तव्यों कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निभा सकें। इसी दृष्टि से अब लोकतन्त्र की रक्षा के लिए प्रत्येक लोकतन्त्रीय देश में सर्वसाधारण की अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है।

2.10 शिक्षा में लोकतन्त्रीय विचारधारा का प्रभाव निम्नलिखित बातों पर पड़ा है-

i. **समान अवसर प्रदान करना तथा व्यक्तिगत विभिन्नता का आदर करना -** लोकतन्त्र में प्रत्येक बालक समाज की एक पवित्र एवं अमूल्य निधि होता है। अतः प्रत्येक बालक को उसकी समस्त शक्तियों के विकास हेतु समाज में अवसर प्रदान किये जा रहे हें। समान अवसरों के प्रदान करने का अर्थ सब बालकों को एक जैसे अवसर प्रदान करना नहीं है। कारण यह है कि जिन अवसरों से मंद बुद्धि वाले बालकों को लाभ हो सकता है, उनसे सामान्य बुद्धि वाले बालकों को भी पर्याप्त लाभ होना आवश्यक नहीं है। ऐसे ही, प्रखर बुद्धि वाले बालकों के साथ एक जैसे ही अवसर प्रदान किये जायें। अतः अब शिक्षा प्रदान करते समय व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धानत को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक बालक की रुचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखा जाता है।

ii. **सार्वभौमिक तथा अनिवार्य शिक्षा -** लोकतन्त्र में सरकार की बागडोर जनता के हाथ में होती है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ एक ओर अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये वहाँ दूसरी ओर उसे पक्षपात तथा अज्ञान के अन्धकार से भी दूर रहना परम आवश्यक है। अतः अब प्रत्येक बालक को बिना किसी भेद-भाव के एक निश्चित स्तर तक अनिवार्य रूप से शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की जा रही है जिससे वह अपने देश की उचित सरकार का निर्माण कर सके।

iii. **निःशुल्क शिक्षा -** लोकतन्त्र सार्वभौमिक तथा अनिवार्य एवं समान अवसरों के प्रदान करने में विश्वास रखता है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा में वर्ग-भेद अर्थात् निर्धन एवं धनवान के

अन्तर का कोई स्थान नहीं है। इसलिए अब शिक्षा सार्वभौमिक तथा अनिवार्य ही नहीं अपितु निःशुल्क भी होती जा रही है। चूँकि जनतन्त्र में शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है, इसलिए अमरीका, रूस, टर्की तथा फ्रांस एवं जापन आदि सभी लोकतन्त्रीय देशों ने प्रत्येक बालक के लिए एक निश्चित स्तर तक की निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी है। साथ ही उक्त सभी राज्य अन्धें, बहने, गूँगे, लंगड़े, मन्द-बुद्धि तथा कुशाग्र बुद्धि एवं मानसिक न्यूवता ग्रस्त सभी प्रकार के बालकों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर रहे हैं।

iv. **प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था -** लोकतन्त्रीय विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न देशों में प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में विभिनन राज्यों में रात्री स्कूलों, सन्टे-कोर्सिज तथा प्रौढ़-साहित्य की व्यवस्था की जा रही है।

v. **बाल-केन्द्रित शिक्षा -** लोकतन्त्रीय विचारधारा के प्रभाव से अब बालक के व्यक्तित्व की प्रधानता दी जा रही है। अतः अब ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिसमें रहते हुए बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण, विकास हो जाए । दूसरे शब्दों में, अब शिक्षा बाल-केन्द्रित होती जा रही है।

vi. **शिक्षण पद्धतियाँ -** अब बालकों की रुचियों एवं शक्तियों का दमन करने वाली रूढ़िगत, सामूहिक शिक्षण प्रणाली समाप्त होती जा रही है। परिणामस्वरूप अब बालकों के मस्तिष्क में ज्ञान को बलपूर्वक ठूँसने पर बल नहीं दिया जाता अपितु लोकतन्त्रीय विधियों का प्रयोग करते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिसमें रहते हुए प्रत्येक बालक ज्ञान की खोज स्वयं कर सके।

vii. **व्यक्तिगत अध्ययन का महत्व -** लोकतन्त्रीय विचारधारा से प्रभावित होते हुए अब शिक्षक बालकों के व्यक्तिगत अध्ययन के महत्व को दृष्टि में रखते हुए उनकी पारिवारिक-परिस्थितियों, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा अभिवृत्तियों को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

viii. **सामाजिक क्रियायें -** अब स्कूल में केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल न देते हुए सामाजिक-क्रियाओं तथा सामाजिक-तत्वों को मुख्य स्थान दिया जाता है जिससे प्रत्येक बालक सामाजिक अनुभव प्राप्त कर सके।

ix. **छात्र-परिषद् -** लोकतन्त्रीय भावना से प्रेरित होते हुए अब स्कूलों में छात्र-संघ अथवा छात्र-परिषद् आदि को प्रोत्साहन दिया जाता है।

x. **शिक्षक के व्यक्तित्व का सम्मान -** लोकतन्त्रीय व्यवस्था में शिक्षक के व्यक्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। अतः लोकतन्त्रीय भावना से प्रेरित होते हुए अब शिक्षक से जहाँ एक ओर पाठ्यक्रम के निर्माण में सहयोग प्राप्त किया जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर उसे शिक्षण कार्य के लिए भी आवश्यकतानुसार शिक्षण-विधियों में परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जा रही है। यही नहीं, अब शिक्षक को अपनी व्यावसायिक कुशलता को बढ़ाने के लिए भी अनेक सुविधाएँ दी जा रही हैं।

xi. **स्कूल-प्रशासन -** लोकतन्त्रीय भावना के प्रभाव से अब स्कूल के संगठन एवं प्रशासन कार्यों में बालकों को भाग लेने के अवसर दिये जा रहे हैं जिसमें उनमें स्वशासन की भावना विकसित हो जाए।

xii. **बुद्धि परीक्षाएं -** अब बालकों की मानसिक योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए बुद्धि परीक्षाओं का प्रयोग किया जा रहा है।

xiii. **बालक का शारीरिक स्वास्थ्य -** बालक को शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रखने के लिए अब स्कूल में जहाँ एक ओर नाना प्रकार के खेलों का प्रबन्ध किया जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर स्कूल के अस्पताल का डॉक्टर प्रत्येक बालक के शारीरिक स्वास्थ्य की परीक्षा करके उसे पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए अपना निजी परामर्श भी देता है।

xiv. **स्कूल -** लोकतन्त्रीय भावना के प्रभाव से अब स्कूल को ऐसा स्थान समझा जाता है जहाँ पर प्रत्येक बालक नागरिकता की शिक्षा के साथ-साथ विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा प्राप्त करते हुए मानवता के आदर्शों को विकसित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, अब स्कूल को समाज का लघु रूप माना जाने लगा है।

xv. **शिक्षा के समस्त साधनों में सहयोग -** लोकतन्त्रीय समाज में शिक्षा के समस्त साधनों में परस्पर सहयोग होता है। अतः अब जनतन्त्र के प्रभाव से परिवार, स्कूल, समुदाय तथा धर्म एवं राज्य आदि शिक्षा के समस्त साधनों में सहयोग स्थापित करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एन.आर.स्वरूप सक्सेना,शिखा चतुर्वेदी (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक , मेरठ, आर.लाल बुक डिपो।
2. पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सिद्वान्त, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
3. रमन बिहारी लाल (2007) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, मेरठ ,रस्तोगी पब्लिकेशन।
4. डां गिरीश पचौरी (2007) शिक्षा और समाज मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
5. डां रामशकल पाण्डेय (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा,अग्रवाल पब्लिशिंग हाउस।
6. एन.आर.स्वरूप सक्सेना,डॉ० के.पी. पाण्डेय, (1993-94) शिक्षा सिद्वान्त, मेरठ, आर.लाल. बुक डिपो।

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाज से आप क्या समझते हैं ?
2. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझाइये।
3. लोकतांत्रिक शिक्षा की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।
4. औद्योगीकरण की व्याख्या कीजिए।
5. औद्योगीकरण तथा इसके कारणो की व्याख्या अपने शब्दों में लिखे।
6. लोकतांत्रिक शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा को लिखों।
7. भारत में औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 3- आधुनिक मूल्यों यथा जैसे निष्पक्षता एवं समानता, वैयक्तिक अवसर , सामाजिक न्याय एवं सम्मान के सन्दर्भ में शिक्षा अवसर (बाबा साहिब अम्बेडकर) के विशेष सन्दर्भ में

Education in Relation to Modern Values like Equity and Equality, Individual Opportunity and Social Justice and Dignity, with Special Reference to Baba Saheb Ambedkar

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूल्यों की आवश्यकता एवं महत्व
3.4 पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्यों का स्थान
3.5 समाज में नैतिक मूल्यों का स्थान
3.6 मूल्य का अर्थ एवं परिभाषाए
3.7 मूल्य-शिक्षा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
3.8 विभिन्न शिक्षा आयोगों के परिप्रेक्ष्य में मूल्य-शिक्षा
3.9 डॉ0 अम्बेडकर का चिन्तन और व्यापक विचार
3.10 सारांश
3.11 निबंधात्मक प्रश्न
3.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वागीण विकास होता है उत्तम शिक्षा ग्रहण करके ही व्यक्ति समाज का उत्तम नागरिक व उत्तरदायी घटक बनता है। शिक्षा से ही व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सीखता है। शिक्षा समाज का दर्पण है। बच्चों के विकास में शिक्षा की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः प्रत्येक समाज का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने बच्चें के लिए अच्छी प्रारमिक शिक्षा की व्यवस्था करें। शिक्षा

के द्वारा ही हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों और फैलता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है, तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति कमल के फूल की भाँॅति खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता शोक एवं कष्ट के अन्धकार में डूबा रहता है।

शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शों आशाओं आकांक्षाओं आदि को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है, कि उनके हृदय में देश प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्वलित हो जाती है। शिक्षा विकास के लिए परम आवश्यक है।

शिक्षा का मानव जीवन में बहुत महत्व होता है न केवल शिक्षा हमें आत्मनिर्भर बनाती है बल्कि अपने चारों ओर के सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक पर्यावरण को समझने की शक्ति भी प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के साथ-साथ सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए भी आवश्यक है।

विश्व के सभी दार्शनिकों और विद्वानों ने समय-समय पर शिक्षा के महत्व को इंगित किया है जैसे-

- **गाँधी जी का मानना था कि** - बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा मिलनी चाहिए और ऐसी शिक्षा जो उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास कर सके ऐसे ही विचार स्वामी विवेकानन्द ने भी व्यक्त किए थे।
- **फ्राबेल के शब्दों में -** ''शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियाँ बाहर प्रकट होती हैं।''
- **रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार** - ''शिक्षा का तात्पर्य है - मस्तिष्क को इस योग्य बनाना कि वह निरन्तर सत्य को पहचान सके, उसके साथ एकरूप हो सके और उसे अभिव्यक्त कर सके।''
- **प्लेटो के अनुसार -** ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रशिक्षण से है जो बालकों को सदगुण की मूल प्रवृत्तियों के लिए उपयुक्त आदतों के निर्माण द्रारा प्रदान किया जाता है।''
- **पेस्टालाजी के अनुसार -** ''मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का स्वाभविक, सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।''
- **टी0 रेमन्ट के अनुसार -** ''शिक्षा विकास का वह क्रम है जिसमें व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकुल बना सके।

वर्तमान में सूचना एवं संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई है। यही कारण है कि अब विश्व का विस्तार संकुचित हो गया है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि विश्व आपकी मुठ्ठी में सिमट गया है। कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मोबाइल आदि ने दूरियां एकदम घटा दीं। नतीजतन बाजार तंत्र खूब परवान चढ़ा है। बाजारू मानसिकता बढ़ी है और उपभोक्ता संस्कृति में आश्चर्यजनक ढंग से वृद्धि हुई है। दूरियां मिटाने वाली सूचना और संचार की इस क्रान्ति ने कुछ ऐसी दूरियां बढ़ाई भी हैं, जो हमें भटकाव की तरफ ले जा रही हैं। हम, खासकर हमारा युवा वर्ग इस भटकाव का सबसे ज्यादा शिकार हुआ है। हमारा युवा वर्ग शिक्षा के उन मूल्यों से

बहुत दूर चला गया है, जो हमारी धरोहर जैसे थे और जिन्हें हम मूल्य शिक्षा या नैतिक शिक्षा कहा करते थे। ये नैतिक मूल्य दम तोड़ चुके हैं। वर्जनाएं टूट चुकी हैं, फलतः अमर्यादित आचरण बढ़ा है। बहुत से लोग कहते हैं कि नैतिकता एक मूल्य है। सुनने में बड़ा अच्छा लगता है, पर इस नैतिकता का स्रोत क्या है ? ऐसी स्थिति में यदि हम यह मान लें कि नैतिकता का स्रोत समाज है तो फिर समाज की निरंतरता क्या एक सी रहती है ? यदि नहीं तो नैतिकता क्या एक सी रह सकती है ? जब नैतिक मानदंड बदल सकते हैं तो मूल्य भी बदल सकते हैं और इन मूल्यों को बदलने वाला समाज केवल एक कपोल कल्पित सत्य है। अगर हम उपर्युक्त बात पर विचार करें तो यह पाते हैं कि विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास किसी प्रकार किया जाए। और इन सभी समस्यों का एक मात्र समाधान है बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित करना क्योंकि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। बहुत छोटे बालकों में शिक्षा प्रदान करने (शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक इत्यादि) के लिए नैतिक शिक्षा और चारित्रिक शिक्षा का सहारा लिया जाता है। चरित्र-निर्माण शिक्षा की रीढ़ है। इसके अभाव में शिक्षा ग्रहण करना व्यर्थ है। मूल्य शिक्षा के अन्तर्गत बालकों के चरित्र-निर्माण से सम्बन्धित शिक्षा भी आती है।

नैतिक मूल्यों से तात्पर्य 'नीति-आधारित' मूल्यों से हैं। ऐसे मूल्य जो हमें जीवन-जीने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, सच्ची राह दिखाते हैं और मानवता को एक उचित दिशा प्रदान करते हैं। मूल्यों को मानवीय आदर्शों, उद्देश्यों और सोचने के तौर-तरीकों तथा नियमों के तौर पर परिभाषित किया जाता है जो कि हमारे व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तथा सम्बन्धों को एक नवीन दिशा प्रदान करते हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में नीति आधारित मूल्यों को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता हमेशा मानवीय मूल्यों की धरती रही है। यहाँ पर दयालुता, मानवता, अहिंसा, मित्रता, ईमानदारी, नेतृत्व-क्षमता, न्याय, साहस एवं उत्साह इत्यादि नैतिक मूल्य व्यापक रूप में पाए जाते हैं। इसके साथ ही साथ विद्यालयों में भी बालकों को इसका ज्ञान प्रदान किया जाता है। आधुनिक समय में नैतिक मूल्यों के स्तर में गिरावट आ रही है क्योंकि हमारा समाज भौतिकतावाद एवं सांसारिक वासनाओं की दलदल में फंसा हुआ है। ऐसे समय में समाज में नैतिक मूल्यों की महती आवश्यकता है। जैसा कि आप सभी को ज्ञात है कि बच्चे देश के भविष्य है। वे देश के भावी कर्णधार हैं। उन्हीं के ऊपर समाज, देश एवं राष्ट्र का उत्तरदायित्व है तो ऐसी स्थिति में बच्चों में नैतिक मूल्यों, उचित संस्कारों और अनुशासन के द्वारा उसमें सुधार लाया जा सकता है। नैतिक मूल्यों के विकास से ही देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सकता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. शिक्षा का अर्थ समझ सकेंगे।
2. मूल्य का अर्थ समझ सकेंगे।
3. मूल्य-शिक्षा का अर्थ समझ सकेंगे।

4. विभिन्न शिक्षा आयोगों के परिप्रेक्ष्य में मूल्य-शिक्षा के सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. डॉ0 अम्बेडकर का चिन्तन और व्यापक शैक्षिक विचारों को स्पष्ट कर सकेंगे।
6. चार प्रमुख तत्वों आदर्शो को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 मूल्यों की आवश्यकता एवं महत्व

भारतीय समाज हमेशा से ही ऋषियों, मुनियों एवं तपस्वियों का धर्म एवं कर्म स्थल रहा है। यहां पर सदैव धर्म एवं आध्यात्म की बातें, ईश्वरीय ज्ञान का बोलबाला रहा है। प्राचीन समय में वेदों, उपनिषदों से लेकर रामायण, महाभारत आदि प्राचीन धर्मग्रन्थों में इन सब नैतिक मूल्यों को प्रमुखता दी गई थी। उस समय के समाजों में नैतिक मूल्यों का विकास चरम सीमा पर था। लोग एक-दूसरे की भलाई के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते थे। उदाहरण के रूप में हम 'महर्षि दधीचि' का प्रसंग ले सकते हैं। मान्यताओं के अनुसार उन्होंने देवताओं की राक्षसों से रक्षा करने के लिए अपने सम्पूर्ण शरीर की अस्थियों को ही दान में दे दिया था। सम्पूर्ण भारतीय प्राचीन समय में समाज नैतिकता एवं विनम्रता का द्योतक था। हमारे पुरातन ग्रन्थों के अनुसार यहां पर ईश्वर ने विभिन्न रूपों जैसे कि श्रीराम, श्रीकृष्ण रूप में अवतार लेकर चारित्रिक शिक्षा को बढ़ावा दिया। कुछ समय पहले तक विभिन्न शिक्षाविदों जैसे कि महात्मा-गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, रामकृष्ण परमहंस, विनोबा भावे एवं राधाकृष्णन् इत्यादि ने भी नैतिक मूल्यों के विकास पर बल दिया। किन्तु जैसे-जैसे समाज प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है, वैसे-वैसे उसमें कमियाँ आती जा रही हैं। आज भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृतियों का अन्धाधुन्ध तरीके से पालन कर रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे शनैः शनैः वह आपनी आत्मा को खो सी रही है। आधुनिकीकरण के इस दौर में हमने भारतीय मूल्यों का पूर्णरूपेण परित्याग सा कर दिया है जो कि भयंकर विनाश का द्योतक है। इसलिए आधुनिक भारतीय समाज में इन नैतिक मूल्यों की आवश्यकता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है।

3.4 पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्यों का स्थान

भारतीय विद्यालयों में प्रारम्भ से ही नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। यहाँ पाठ्यक्रम में प्रारम्भ से ही ऐसे विषयों के अध्ययन को महत्व दिया गया है जिसमें नैतिक शिक्षा, भक्ति, आध्यात्मक, योग के ज्ञान को विभूषित किया गया है। वैदिक काल से लेकर पूर्व आधुनिक काल तक नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार पर अधिक बल दिया गया। भारतीय पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से वैदिक काल में गुरूओं द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली जानकारियां प्रदान की जाती थीं। इसमें अध्यापकगण बालकों को माता-पिता का सम्मान करना, बड़ों की आज्ञा-पालन, छोटे को स्नेह तथा माता-पिता की सेवा, स्वयं में मानवता की भावना का विकास, सदैव दूसरों की सहायता करना'' मुख्य रूप से सिखाते थे। इन सबका कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं था। उस समय वेदों, उपनिषदों तथा अनेक धर्म ग्रन्थों में भी नैतिक मूल्यों का

बाहुल्य था। इसी प्रकार से सम्पूर्ण वैदिक काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोग था। मध्यकाल में भारत में मुगलों के आक्रमण के पश्चात् इन विचारधाराओं में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया। इस समय में भी भारतीय समाज में कबीरदास, गुरूनानक, रामदास, मीराबाई, रैदास, सूरदास, रहीम, बिहारी इत्यादि प्रसिद्ध महापुरुषों ने भी नैतिक मूल्यों की उपयोगिता को महत्व दिया। मीराबाई द्वारा रचित दोहे, बिहारी द्वारा प्रतिपादित तथा सूरदास द्वारा रचित दोहे इन्हीं नैतिक मूल्यों की ओर इशारा करते हैं। ये दोनों काल नैतिक मूल्यों के विकास के लिए 'स्वर्णिम-युग' कहे जाते हैं।

3.5 समाज में नैतिक मूल्यों का स्थान

जैसे-जैसे अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य करना स्थापित किया, भारतीय समाज पश्चिमीकरण की गर्त में गिरता चला गया। आधुनिक काल की शुरुआत में पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण की यह भयानकता हमारे समाज में इतनी हावी नहीं थी। इस समय तक भारतीय समाज में महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाष चन्द्र बोस आदि महापुरुषों ने भी नैतिक मूल्यों के महत्व पर जोर दिया। किन्तु आजादी के पश्चात् भारतीय समाज की स्थिति ओर भी बिगड़ गई। भारतीय समाज पूर्णरूपेण आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण की चपेट में आ चुका है। किसी को किसी से कोई मतलबल नहीं है। सब अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हुए हैं। सम्पूर्ण समाज स्वार्थपरता की चपेट में आ चुका है। आज मानव इतना स्वार्थी हो चुका है कि यदि उसके सामने सड़क पर कोई इंसान जीवन की भीख मांग रहा हो तो वो उसको वहीं पर तड़पता हुआ देखते रहेंगे किन्तु उसकी कोई मदद नहीं करेंगे। सम्पूर्ण समाज स्वार्थ अन्धता के अन्धे कुएं में गिरता जा रहा है। इसका कारण समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, धन लोलुपता, आतंकवाद, जातिवाद तथा लोगों में मानवता की कमी है। लोग अपने पूर्व भारतीय संस्कारों को पूरी तरह से भूलते जा रहे हैं। इन सबके पीछे मुख्य कारण लोगों में नैतिक मूल्यों का ह्रास है। आधुनिक भारतीय विद्यालयों भी इन मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह गया है। पूर्व पाठ्यक्रमों में जहां अधिकांश समय ज्ञान, भक्ति एवं योग पर था, वहीं आज इन नैतिक संस्कारों के लिए किसी के पास एक सेकेण्ड का भी समय नहीं है। पाठ्यक्रमों में (**Moral-education**) के लिए कोई स्थान नहीं है। इसीलिए अध्यापकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे बालकों में नैतिक मूल्यों को विकसित करें तथा शासन को भी विद्यालयों में संचालित पाठ्यक्रमों में इन सभी को स्थान देना चाहिए। तभी हमारा समाज पहले की तरह बन पायेगा। बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास अत्यन्त आवश्यक है। वे ही देश का भविष्य हैं।

बालकों में नैतिक-मूल्यों का विकास उतना ही आवश्यक है जितना कि समाज के लिए। आधुनिक समय में भारतीय समाज जिस अंधकार से गुजर रहा है, उसमें एक अध्यापक ही मदद कर सकता है। नैतिक मूल्य जीवन को निर्देशित करते हैं। वे जीवन जीने की दिशा प्रदान करते हैं। विद्यालयों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों, राष्ट्रीय पर्वों के बारे में जानकारी प्रदान करना, सामुदायिक कार्यक्रमों को बढ़ावा

देना, नागरिकता की भावना का विकास करना, आधुनिक तकनीकियों के माध्यम से इन नैतिक मूल्यों का विकास बालकों में किया जा सकता है।

''कहने का तात्पर्य यह है कि हम चाहें जितनी भी तरक्की कर लें, कितना भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे बढ़ जाए किन्तु यदि हमारे पास नैतिक मूल्य नहीं है? तो हमारा यह जीवन व्यर्थ है।''

मनुष्य के आचरण में आ रही गिरावट ने सभी प्रबुद्ध विचारकों को चिन्तित कर दिया है। विष्व के प्रायः सभी राजनीतिक, साहित्यिक और शैक्षिक मंचों से जीवन मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की मांग की जा रही है। इसके प्रतिष्ठापन के लिए मूल्य-शिक्षा की अपरिहार्यता को महसूस किया गया। इसी कारण नई शिक्षा नीति (1986) में मूल्यों के गिरते स्तर पर चिन्ता व्यक्त करते हुए मूल्य-शिक्षा पर बल दिया गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोकतांत्रिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का छात्रों में रोपण नई शिक्षा नीति के लक्ष्यों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मूल्यों के अभाव में मानवीय सम्बन्धों में सहजता समाप्त हो गयी है और सर्वत्र कृत्रिमता का आवरण छा गया है। वैज्ञानिकता ने जहां हमारी बौद्धिक शक्ति बढ़ाई है वहीं उसने हमारी आध्यात्मिक एवं नैतिक शक्ति को छीन लिया है। सहज जीवन समाप्त हो गया और हम बनावटी मुखौटों के सहारे जीने को विवष हो गए हैं। हमारा जीवन तात्कालिकता में बंट गया है और इसमें कोई प्रवाह नहीं रहा। आज मनुष्यता खत्म होने के कगार पर है और मनुष्य जाति के अस्तित्व पर साम्प्रदायिकता, उग्र राष्ट्रवाद, पर्यावरण असंतुलन, क्षेत्रीयतावाद, आणविक शस्त्रीकरण जैसे संकटों ने प्रष्न चिह्न लगा दिया है। इन भीषण संकटों का समाधान मूल्य आधारित शिक्षा में ही विद्यमान है, न कि अन्यत्र।

3.6 मूल्य का अर्थ एवं परिभाषाएं

"Value" शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के "Valere" शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। भावात्मक दृष्टि से मानव के गुण को भी व्यक्त करता है। हिन्दी में 'मूल्य' शब्द के पर्याय के रूप में 'आदर्श ', 'शील ', 'गुण' आदि शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं पाया जाता है। टंसनम म्कनबंजपवद के दो अर्थ हो सकते हैं-

i. मूल्यों की शिक्षा (Education of Values)
ii. मूल्यपरक शिक्षा (Value Oriented Education)

मूल्य शिक्षा के अन्तर्गत हम नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा एक स्वतंत्र विषय के रूप में देना चाहते हैं जबकि मूल्यपरक शिक्षा में सभी विषयों में मनोवैज्ञानिक ढंग से मूल्य समाहित करके मूल्यों के विकास पर बल देते हैं।

मूल्य को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है -

i. सी.सी. गुड के अनुसार ''मूल्य वह चारित्रिक विषेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यबोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।''

ii. ऑलपोर्ट के अनुसार ''मूल्य एक मानव विष्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।''

iii. पिस्क के अनुसार ''हम वास्तव में जिसे सम्मान देते हैं, चाहते हैं या महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वही मूल्य है।''

iv. अरबन के अनुसार ''मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करे।''

v. काने के अनुसार, ''मूल्य वे आदर्श , विष्वास या प्रतिमान है जिसको एक समाज या समाज के अधिकांष लोगों ने ग्रहण किया है।''

3.7 मूल्य-शिक्षा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

मूल्य-शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने मूल्यों के इस गहन महत्त्व को बहुत पहले समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के स्वर्णिम अतीत में मूल्य-शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने विषाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के मौलिक विचारकों एवं विद्वानों को जन्म दिया जिनसे इस देश का मस्तक आज भी यष और गौरव से उन्नत है। ''ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो या जिसने इतना स्थायी या शक्तिषाली प्रभाव उत्पन्न किया हो।''

वैदिक युग में ज्ञान प्राप्ति के प्रति लालसा मूल्यों में अगाध आस्था और आचरण में मूल्यों की प्रधानता ने ही विष्व में भारतीय संस्कृति को इतना प्रभावषाली बनाया था जिन्हें आज भी संसार अति आदर से याद करता है। मूल्य आधारित यह शिक्षा न केवल वैदिक युग तक ही सीमित रही बल्कि वैदिक युग से बौद्ध-विहार, मौर्यकाल, गुप्तकाल एवं राजपूतकालीन भारत तक अनवरत थी। यहां तक कि मुगल काल में भी शिक्षा का आधार किसी न किसी रूप में मूल्य आधारित ही था। कहने का तात्पर्य यह है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय शिक्षा मूलतः मूल्य आधारित थी। इसी कारण अलग से मूल्यों की शिक्षा देने की कोई आवष्यकता नहीं थी। अंग्रेजों ने अपनी आवष्यकतानुसार भारतीयों के लिए नवीन शिक्षा पद्धति को इजाद किया। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों को शरीर से तो भारतीय बनाए रखा परन्तु उनको मन, मस्तिष्क और व्यवहार से अंग्रेज बना दिया। इस परिस्थिति ने भारतीयों में पाष्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण का भूत सवार कर दिया। साथ ही उनमें पार्थिव मूल्यों के प्रति अप्रत्याषित मोह, अनीष्वरवाद, भौतिकवाद आदि को जन्म दिया। इन तथ्यों ने मानवीय मूल्यों के ह्रास के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी जिसके फलस्वरूप मूल्य शिक्षा की आवष्यकता महसूस की जाने लगी।

1970 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रषिक्षण परिषद् (NCERT) ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें मूल्यों की आवष्यकता अनुभव की गई एवं उनके विकास पर बल दिया गया। 1982 में शिमला में नैतिक शिक्षा पर उच्च स्तरीय परिचर्चा हुई जिसमें मूल्य शिक्षा सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण सिफारिषों की गई।

3.8 विभिन्न शिक्षा आयोगों के परिप्रेक्ष्य में मूल्य-शिक्षा

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता मिलने के बाद देश के शासन की बागडोर जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में आई। देश का चतुर्मुखी विकास करने की चुनौती उत्पन्न हुई। देश के विकास में शिक्षा का अति महत्त्व था। अतः स्वतंत्र भारत की सरकार का ध्यान शिक्षा की ओर गया। उस समय उच्च शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। शिक्षा का स्तर बहुत गिर गया था साथ ही जनता का नैतिक स्तर भी सोचनीय था। हर तरफ हिंसा, मारकाट, साम्प्रदायिक विद्वेष की लहर थी। किस प्रकार जनता के मानस में पारस्परिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, सह अस्तित्व की भावना विकसित हो, इस हेतु अनेक प्रयास हुए। राष्ट्र के शिक्षा षास्त्रियों ने चिन्तन किया कि क्यों नहीं ये उदात्त मूल्य हमारी शिक्षा प्रणाली के अंग बने जिससे राष्ट्र की नींव को सुदृढ़ता मिले। इस हेतु शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवष्यकता प्रतीत हुई और समय-समय पर विभिन्न शिक्षा आयोग गठित हुए।

4 नवम्बर, 1948 को डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विष्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्ण कमीशन) की नियुक्ति हुई। यद्यपि आयोग ने ''मूल्य-शिक्षा '' शब्द का प्रयोग नहीं किया तथापि उनके सभी मुख्य सुझाव 'भारतीय आदर्श ' नाम से मूल्यों को ही अभिव्यक्त कर रहे थे। भारतीय संविधान में न्याय, समता, स्वतंत्रता और बन्धुता की प्राप्ति से लोकतंत्र स्थापित करने के आदर्शों को ध्यान में रखकर ही उन्होंने विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य निष्चित किए। राधाकृष्ण कमीशन ने विश्वविद्यालयी शिक्षा के वे उद्देश्य निष्चित करने के सुझाव दिए जिनसे छात्रों ने सामाजिक सौहार्द, राष्ट्रीय कर्त्तव्य और आध्यात्मिकता की भावना अंकुरित हो।

भारत सरकान ने 23 सितम्बर, 1952 को माध्यमिक शिक्षा आयोग 'मुदालियर कमीशन' की नियुक्ति की। मुदालियर कमीशन ने चारित्रिक शिक्षा के नाम से मूल्य-शिक्षा पर जोर दिया। चरित्र प्रत्येक व्यक्ति की सबसे मूल्यवान निधि है। अच्छा चरित्र उसे ऊपर उठाता है और बुरा चरित्र उसे नीचे गिराता है। उत्तम चरित्र के व्यक्ति देश और राष्ट्र की उन्नति के आधार हैं। चारित्रिक रूप से उन्नत व्यक्ति अपनी मातृभूमि का उत्थान करते हैं, उसे प्रगति के षिखर पर पहुंचाते हैं। अतः आयोग ने बच्चों में चारित्रिक विकास हेतु ईमानदारी, अनुषासन, सहयोग, भाईचारा जैसे मूल्यों पर बल दिया। आचरण संहिता, सहषैक्षिक गतिविधियां, एन.सी.सी. आदि के माध्यम से चरित्र निर्माण हो जिससे अच्छे नागरिक बने, जिन पर उनका देश गर्व कर सकें।

भारत सरकार ने 14 जुलाई, 1964 को शिक्षा आयोग 'कोठारी कमीशन ' की नियुक्ति की। इस आयोग ने छात्रों के चारित्रिक उत्थान हेतु उनमें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास की जोरदार हिमायत की। आयोग का यह सुझाव अति श्रेष्ठ था कि मूल्य-शिक्षा से ही छात्रों को चरित्रवान बनाया जा सकता है। उसने छात्रों के अपने मार्ग से विचलित होकर भ्रष्ट होने का कारण मूल्यहीन शिक्षा पद्धति को बताया।

3.9 डॉ0 अम्बेडकर का चिन्तन और व्यापक विचार

डॉ0 अम्बेडकर ने 'डिपेस्ड क्लास एजुकेशन सोसाइटी' की सन् 1928 में स्थापना की। उन्होने दलितों में शिक्षा के प्रसार के लिए 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' नामक संस्था बनायी, जिसके तत्वावधान में उन्होंने बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज (25 जून, 1946) तथा औरंगाबाद में मिलिंद कॉलेज (01 सितम्बर 1951) की स्थापना की। आगे चलकर इस संस्था ने विशेष रूप से महाराष्ट्र के दलितों में शिक्षा के प्रसार के प्रसार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। सन् 1946 में डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा को एक विस्तृत ज्ञापन प्रस्तुत किया। डॉ0 अम्बेडकर की अधिकांश मांगे स्वीकृत कर ली गयी और उन्हें वैधानिक स्वरूप में भारतीय संविधान के अन्दर स्थान प्रदान कर दिया गया।

15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद प्राप्त करने के बाद भारतीय संविधान का निर्माण करने के लिए संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया। गम्भीर चिन्तन और व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात् बनाये गये संविधान को 26 जनवरी 1950 को देश में लागू किया गया। संविधान की प्रस्तावना संविधान का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें संविधान के मूल उद्देश्यों, लक्ष्यों और आदेशों को स्पष् किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है -

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रमुख-सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने और इसके सभी नागरिकों को सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा व अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए इन सबमें संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 जनवरी 1949 ई0 को इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं"।

संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत में प्रजातंत्र की स्थापना की गयी है, ऐसा प्रजातंत्र जिसमें शासन की सम्पूर्ण शक्ति जनता में निहित होगी, अर्थात् जनता ही सम्प्रभु होगी और देश का राष्ट्राध्यक्ष अर्थात राष्ट्रपति वंशानुगत न होकर जनता के द्वारा ही निर्वाचित होगा। संविधान में भारत को एक धर्म निरपेक्ष और समाजवादी राज्य घोषित किया गया है तथा देश के नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय प्रदान करने और भ्रातृव्य के भाव पैदा कर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाये रखने पर बल दिया गया है प्रस्तुत अध्याय में संविधान के निम्नलिखित चार प्रमुख तत्वों आदर्शो या लक्ष्यों या मूल्यों का विवेचन किया गया है।

- स्वतंत्रता
- समानता
- न्याय
- भ्रातृव्य

स्वतंत्रता- बर्ट्रेण्ड रसैल के अनुसार स्वतंत्रता की इच्छा व्यक्ति की एक स्वाभाविक प्रकृति है और इसी के आधार पर सामाजिक जीवन का निर्माण सम्भव है। व्यक्ति का सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास स्वतंत्रता के वातावरण में ही सम्भव है। स्वतंत्रता का अंगेजी रूपान्तर लिबर्टी लैटिन भाषा के लिबर शब्द से लिकला है जिसका अर्थ है -' बन्धनों के अभाव किन्तु तो स्वछन्दता है। स्वच्छन्दता के कारण तो केवल अराजकता फैलाती है, अव्यवस्था पैदा होती है। व्यक्ति को स्वतंत्रता का उपयोग इस प्रकार से करना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास करने में समर्थ हो सके। स्वतंत्रता एक अधिकार ही नही वरन एक कर्त्तव्य भी है। लास्की ने स्वतंत्रता को व्यक्ति के विकास के लिए अति आवश्यक शर्त मानते हुए उसकी परिभाषा इन शब्दों में की है - ''स्वतंत्रता उस वातावरण को बनाए रखना है, जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन का सर्वोत्तम विकास करने की सुविधा प्राप्त हो।'' स्वतंत्रता के निम्नलिखित दो तत्व बताये गये हैं -

i. स्वतंत्रता का पहला तत्व यह है कि व्यक्ति के जीवन पर राज्य और समाज के दूसरे तत्वों की ओर न्यूनतम प्रतिबन्ध होने चाहिए जिससे व्यक्ति अपने विचार और कार्य व्यवहार में अधिक से अधिक स्वतंत्रता का उपभोग कर सके।
ii. स्वतंत्रता का दूसरा तत्व यह है कि राज्य और समाज के द्वारा व्यक्ति को उसके व्यक्तिव के विकास के लिए अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए।

भारतीय संविधान का उद्देश्य विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और व्यवसाय आदि की स्वाधीनता सुनिश्चित करना है, अतः संविधान के द्वारा नागरिकों को विविध स्वतंत्रतायें प्रदान की गयी हैं। इस संबंध में संविधान का 19वां अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा नागरिकों को निम्नलिखित स्वतंत्रतायें प्रदान की गयी है -

i. **विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता -** भारत के सभी नागरिकों को विचार करने व्याख्यान देने और अपने तथा अन्य व्यक्तियों के प्रचार और प्रसार की स्वतंत्रता प्राप्त है। विचारों के प्रचार और प्रसार की स्वतंत्रता का बहुत महत्व है क्योकि इससे वास्तविक जनमत का निर्माण होता है।
ii. **शान्तिपूर्वक बिना हथियार के सभा करने की स्वतंत्रता -** इसके द्वारा सभी नागरिकों को शान्तिपूर्वक ढंग से बिना हथियार लिये सभा या सम्मेलन करने तथा जुलूस या प्रदर्शन या आयोजन करने का अधिकार प्राप्त है।
iii. **संस्था, संघ या समुदाय बनाने की स्वतंत्रता -** इसके द्वारा सभी नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी संस्था या संघ या समुदाय या संगठन का निर्माण कर सकें।
iv. **भारतीय क्षेत्र में अबाध भ्रमण की स्वतंत्रता -** इसके द्वारा सभी नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी इच्छानुसार देश के किसी भी क्षेत्र में स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से निवास कर सकें।

v. **भारतीय क्षेत्र में अबाध निवास की स्वतंत्रता -** इसके द्वारा सभी नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी इच्छानुसार देश के किसी भी क्षेत्र में स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से निवास कर सकें।

vi. **भारतीय क्षेत्र में व्यावसाय या व्यापार करने की स्वतंत्रता -** इसके द्वारा सभी नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी इच्छानुसार देश के किसी भी प्रदेश में किसी भी प्रकार का व्यवसाय या व्यापार कर सकें और अपना जीविकोपार्जन करने में सफल हो सकें। भारतीय नागरिकों को प्राप्त ये स्वतंत्रतायें असीमित नही है, अबाध नही है, सार्वजनिक सुरक्षा और सामान्य जनता के हित में सरकार द्वारा इन पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

vii. **अपराध की दोष सिद्धि विषयक संरक्षण की स्वतंत्रता -** संविधान के अनुच्छेद 20 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि उसने अपराध के समय में लागू किसी धारा का उल्लंघन न किया हो। उसके साथ ही एक अपराध के लिए व्यक्ति को एक ही बार दण्ड दिया जा सकता है और किसी अपराध में व्यक्ति को अपने ही विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

viii. **प्राण तथा शारीरिक स्वतंत्रता के संरक्षण की स्वतंत्रता -** संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके प्राणों व शारीरिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से वंचित नही किया जा सकता।

ix. **बन्दीकरण और विरोध से संरक्षण की स्वतंत्रता -** संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उस समय तक बन्दी नही बनाया जा सकता जब तक बन्दीकरण के कारणें से अवगत न कराया जाये। प्रत्येक व्यक्ति को बन्दीकरण के 24 घन्टों के अन्तर्गत किसी मजिस्ट्रेट के सामने अवश्य प्रस्तुत किया जायेगा। उसको अपनी इच्छानुसार वकील करने तथा उससे सलाह लेने और अपनी पैरवी करने का अधिकार प्राप्त होगा। यह उपबन्ध उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होगा जो बन्दीकरण के समय विदेशी शत्रु हैं या निवारक अधिनियम के कारण नजरबन्द किये गये है।

x. **धार्मिक स्वतंत्रता -** संविधान के अनुच्छेद के अनुसार सभी व्यक्तियो को अपनी इच्छानुसार धार्मिक आचरण और धम के प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 26 के द्वारा व्यक्तियों को धार्मिक संस्थायें स्थापित करने और उनका प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता दी गयी है। अनुच्छेद 26 के द्वारा व्यक्तियों को धार्मिक संस्थायें स्थापित करने और उनका प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता दी गयी है। अनुच्छेद 27 के द्वारा इनके द्वारा ऐसी समस्त आय को कर मुक्त कर दिया गया है जिस धार्मिक या परोपकारी कार्यों में खर्च किया गया हो। अनुच्छेद 28 के अनुसार राजकीय धन से संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था को धार्मिक शिक्षा देने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा। अन्य स्वतन्त्रताओं की तरह यह स्वतंत्रता भी प्रतिबन्ध रहित नहीं है। राज्य सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता या स्वास्थ्य आदि के हित में इसके प्रयोग का प्रतिबन्ध लगा सकता है।

xi. **संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी स्वतंत्रता -** भारतीय संविधान के द्वारा भारत के सभी नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा संबंधी स्वतंत्रता का अधिकार भी प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 21 के अनुसार नागरिकों को प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है। राजकीय धन से संचालित शिक्षण संस्था में प्रवेश के सम्बन्ध में मूलवंश, जाति, धर्म और भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 30 के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रशासन का अधिकार होगा। राज्य की ओर से उनको भी उसी प्रकार की सहायता प्रदान की जायेगी, जिस प्रकार की सहायता अन्य शिक्षण संस्थाओं को प्राप्त है।

समानता - समाज में दो प्रकार की असमानता दृष्टिगोचर होती है, एक प्राकृतिक असामनता और दूसरी सामाजिक वैषम्य द्वारा उत्पन्न समानता। मानव समाज में मोटे, पतले, लम्बे, नाटे, काले गोरे, कुशाग्र बुद्धि, मन्द बुद्धि के जो विभिन्न प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं, वे प्राकृतिक असमानता के उदाहरण हैं। इस प्रकार की असमानता को मिटाया जाना सम्भव नहीं है। समाज में विद्यमान दूसरे प्रकार की असमानता वह है जिसका मूल समाज द्वारा उत्पन्न की गयी विषमतायें हैं। अनेक बार बुद्धि, प्रतिभा और बल की दृष्टि से श्रेष्ठ होने पर भी गरीब व्यक्तियों के बालक अपने व्यक्तिव का वैसा विकास नही कर पाते, जैसा विकास उनसे निम्नतर बुद्धि, प्रतिभा और बल के धनिक और साधन उत्पन्न परिस्थितियों का वह वैषम्य होता है जिसके कारण वैषम्य को समाप्त कर समाज के सभी व्यक्त्यिों को व्यक्तिव के विकास के समान अवसर प्रदान करना है। लास्की ने समानता को परिभाषित करते हुये कहा गया है - ''समानता मूल रूप में समानीकरण की एक प्रक्रिया है। इसलिए प्रथमतः समानता का आशय विशेषाधिकार के अभाव से है। द्वितीय रूप में इसका आशय यह है कि सभी व्यक्तियों को विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने चाहिए।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत मे जिस प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की गयी, उसके मूल्यों में समानता मुख्य है। भारत की समाजवादी व्यवस्था को सफल बनाने के लिए, राष्ट्रीय विकास के लिए और राष्ट्रीय एकता व अखंडता को बनाये रखने के लिए समानता की व्यवस्था की गयी है। भारतीय संविधान के चौहदवें, पन्द्रवें, सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें अनुच्छेदों में समानता की व्याख्या की गयी है -

i. **विधि के समक्ष समानता -** संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत के राजय क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इसका अर्थ यह है कि राज्य सभी व्यक्तियों के लिए एक-सा कानून बनायेगा और उसे एक समान लागू करेगा तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से न्यायालय की शरण ले सकेगा।

ii. **धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का अन्त -** संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर नागरिकों के साथ उनके जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई भेदभाव नही किया जायेगा। कोई भी नागरिक सार्वजनिक स्थानों जैसे कुआंे, तालाबों, स्नानघरों, होटलों, सिनेमाघरांे आदि का प्रयोग करने से वांछित नहीं हो सकेगा।

iii. राज्यधीन सेवाओं के समान अवसर - सवंधािन के अनुच्छेद 16 के अनुसार केवल धर्म, जाति, वर्ण या मूलवंश के आधार पर राज्यधीन किसी रोजगार, नियुक्ति व किसी उच्च पद पर उन्नति प्राप्त करने के संबंध में किसी नागरिक के साथ विभेदपूर्ण नीति का प्रयोग नही किया जायेगा। इस प्रकार भारत के समस्त नागरिक उच्च से उच्च पदों पर आसीन हो सकते है। स्त्री और पुरूष में भी किसी प्रकार भेदन नहीं किया जायेगा।

iv. **अस्पृश्यता का निषेध -** संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का सदा के लिए अन्त कर दिया गया है। अस्पृशता से उत्पन्न् किसी योग्यता को लागू करना एक दण्डनीय अपराध माना गया है। इसके द्वारा सामाजिक समानता की स्थापना करने की व्यवसथा की गयी है और गान्धी जी के स्वप्न को पूरा किया गया है।

v. **उपाधियों का निषेध -** ब्रिटिश शासन काल में सम्पत्ति आदि के आधार पर उपाधियां प्रदान की जाती थीं, जो सामाजक जीवन में भेदभाव पैदा करती थीं। संविधान के 18वें अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गयी है कि सेना अथवा विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अलावा अन्य कोई नागरिक बिना राष्ट्रपति की आज्ञा के विदेशी राज्य से काई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता।

न्याय

किसी भी समाज का अस्तित्व, बिना न्याय की स्थापना के सम्भव नहीं हो सकता, इसलिए भारतीय संविधान ने न्याय को अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व या आदर्श या मूल्य या सिद्धान्त या लक्ष्य माना है। संविधान मे न्याय के निम्नलिखित तीन रूपों पर बल दिया गया है -

i. **सामाजिक न्याय -** इसका अर्थ है कि समाज में सभी को बराबरी का स्थान प्राप्त हो। जाति, वर्ण, लिंग, जन्मस्थान, और धर्म आदि के आधार पर किसी के साथ अन्याय न किया जाए। यह आदर्श, समाज में समान स्थान और समान स्तर प्राप्त करने के लिए जो भी कठिनाईयाँ या समस्याएँ आती है, उनको दूर करने की प्रेरण देता है। इसके अन्तर्गत संविधान में कहा गया है कि पंथ, जाति, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति व्यवहार मे कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा, जीवन के सभी क्षेत्रों में ऊंच-नीच की भावना को समाप्त किया जाएगा, कानून की दृष्टि से समाज के सभी व्यक्तियों को समान समझा जाएगा और समाज के कमजोर वर्गो-स्त्रियों, अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लोगों के विकास के लिए विशेष व्यवस्था करने के प्रयास किये जाएंगे। इसी के अनुसार अनुसूचित

जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछडी जातियों को सामाजिक रूप से दूसरी जातियों के स्तर तक उठाना आवश्यक समझा गया और इसी कारण आरक्षण के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी।

ii. **आर्थिक न्याय -** इसका अर्थ है कि आर्थिक आधार पर किसी के साथ अन्याय न किया जाए। आर्थिक न्याय के लिए संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं। संविधान में कहा गया है कि सभी व्यक्त्यिों को जीविका प्राप्त करने, समान कार्य के लिए समान कार्य वेतन प्राप्त करने, श्रमिकों को उचित वेतन व सभी सुविधाएं प्राप्त करने, बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी व अक्षमता की स्थिती में सहायता प्राप्त करने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। धन एवं उत्पादन के साधनों को केन्द्रीयकरण नहीं होना चाहिए, समाज की प्राकृतिक एवं भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व एवं नियंत्रण व्यक्तियों के स्थान पर समाज के अधीन होनी चाहिए, बेगारी, दास प्रथा, दास एवं स्त्रियों की खरोद-फरोख्त समाप्त होनी चाहिए, चौदह वर्ष से कम आयु के बालकों से काम नही कराया जाना चाहिए, समाज के सभी लोगों को पंथ, जाति, वंश वर्ण, लिंग के भेदभाव के बिना कोई कार्य करने, कोई व्यवसाय करने और लोक सेवाओं में पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। इसका अर्थ है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कोई कार्य करने, किसी भी व्यवसाय को करने और किसी भी नौकरी को करने के लिए बाध्य नहीं करेगा। संविधान में यह भी कहा गया है कि समाज के पिछडे, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तथा स्त्रियो आदि के आर्थिक विकास के लिए राज्य प्रयास करेगा। इन प्रावधानों से नागरिकों को निश्चित ही आर्थिक न्याय की प्राप्ति होगी।

iii. **राजनैतिक न्याय -** इसका अर्थ है - राजनैतिक आधार पर सबको समान अधिकार प्राप्त होना। इस आधार पर भारतीय संविधान 18 वर्ष से अधिक आयु वाले अपने सभी नागरिकों को मतदान का अधिकार प्रदान करता है। राजनीतिक न्याय के अन्तर्गत देश के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह किसी भी पंथ, जाति, वंश, वर्ण या लिंगा का हो, स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करने, संघ, सभा, समिति या संस्था का निर्माण करने, सभाओं का आयोजन करने और निर्धारित योग्यतानुसार लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभा, विधान परिषद और अन्य संस्थाओं व पदों पर चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है। इन प्रावधानों से भारतीय संविधान ने देश के नागरिकों को राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराया है।

भ्रातृत्व- भ्रातृत्व का अर्थ है भाईचारे की भावना, सबको भाई समझना, मिल-जुलकर प्रेम के साथ प्रेम के साथ, सहयोग के साथ, सद्भावना के साथ, एक दूसरे की सहायता करते हुए रहना, एक-दूसरे की संवेदनाओं को समझना, अपने अन्दर त्याग और समर्पण की भावना पैदा करना। भारतीय संविधान का यह एक महत्वपूर्ण आदर्श या मूल्य या सिद्धान्त या अंग का तत्व है। भारतीय संविधान में समानता का अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्त भ्रातृव्य की स्थापना के लिए ही हैं। भारतीय संविधान में समानता का अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व भ्रात्व की स्थापना के लिए ही है। जब सभी व्यक्ति समान हैं, उनमें धर्म, जाति, वर्ण, वंश, रंग, लिंग आदि के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जाता, तो भ्रातृत्व की स्थापना होती है। भ्रातृत्व का आदर्श व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता को मान्यता देता है। भारत के संविधान में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता दोनों पर ही बल दिया गया है और इसके लिए यह आवश्यक है

कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ सीमा तक अंकुश हो, जिससे एक व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच में बाधा पैदा न करे। इसलिए कुछ सीमाएं इन स्वतंत्रताओं पर लोगों के हित में लगाई गयी हैं। वस्तुतः भ्रातृत्व की भावना स्वतंत्रता, समानता और न्याय के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है। चारों का लक्ष्य एक ही है।

इकाई 4 – टैगोर तथा कृष्णमूर्ति के विशेष सन्दर्भ में राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकतावाद तथा पंथनिरपेक्षता के संप्रत्ययों का विवेचना तथा इन संप्रत्ययों का शिक्षा के साथ अंतर्संबंध Deliberations on the Concepts of Nationalism , Universalism and Secularism and their Interrelationship with Education with Special Reference to Tagore and Krishnamurti

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 राष्ट्रवाद का अर्थ
4.4 सार्वभौमिकवाद का अर्थ
4.5 धर्मनिरपेक्षवाद का अर्थ
4.6 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद का शिक्षा से सम्बन्ध
4.7 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में टैगोर के शैक्षिक विचार
4.8 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में धर्म-निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात पश्चिमी के प्रभाव के कारण ही हुआ परन्तु इस प्रक्रिया को अधिक विकसित करने का श्रेय स्वतंत्र भारतीय स्पष्ट को जैसे ही स्वतंत्र हुआ, भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समानता का पाठ पढ़ाया। प्रजातांत्रिक राज्य में देश के सभी बालिगों को मताधिकार साधनों के स्थान पर वैधानिक संहिताओं को महत्ता प्रदान की गई, जिसके फलस्वरूप परम्परागत समाज

आधुनिकरण की ओर उन्मुख हुआ। इस आधुनिकीकरण के अन्तर्गत पवित्रता और अपवित्रता सम्बंधी विचारों, उच्च वर्गों और विषेशकर ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति, ग्रामीण समुदाय के जीवन और हिन्दू धर्म की परम्परागत मान्यताओं में धर्म-निरपेक्षीय के प्रभाव से व्यापक दृृष्टिकोण का विकास हो रहा है। आज भारत में तीर्थ-स्थान मनोरंजन यात्राओं का रूप ले रहे हैं, संस्कारों का संक्षिपतीकरण हो रहा है। विवाह में संविदा के तत्व स्पष्ट होने लगे हैं, पश्चिमी ढंग के त्यौहारों और प्रथाओं में वृद्धि हो रही है भाड़े पर ब्राह्मणों से पूजा और धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करवाने के रीति-रिवाज बढ़ रहे हैं, शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग समझा जा रहा है स्त्रियों द्वारा नौकरी करना बुरा नहीं समझा जाता है। व्यापारिक एजेन्सियों द्वारा तीर्थ-यात्राओं जैसे धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाने लगी है, धार्मिक मठों के प्रति उदासीनता बढ़ रही है। धर्म को राजनीति से उलझा देने के कारण 'साम्प्रदायिकता' का विकास हुआ है और ग्रामीण जीवन के व्यवसायीकरण को प्रोत्साहन मिला है। वस्तुतः सरकार भी नवीन सामाजिक अधिनियमों के द्वारा धर्म निरपेक्षीकरण की इस प्रक्रिया को निरंतर प्रोत्साहन दे रही है।

धर्मनिरपेक्षवाद एक जीवन-शैली है, जबकि धर्म-निरपेक्षीकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। विभिन्न समाजों में धर्म-निरपेक्षता के विभिन्न अर्थ है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, 'धर्म-निरपेक्षता वह सिद्धान्त है, जिसमें ईश्वर में विश्वास से सम्बंधित सभी विचारों को पृथक, करके नैतिकता, वर्तमान जीवन में मनुष्य के कल्याण से पूर्णरूपेण सम्बंधित होनी चाहिए।' चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार ''धर्म निरपेक्षता एक ऐसा विश्वास है जिसमें राज्य, नैतिकताएं, शिक्षा इत्यादि धर्म से स्वतंत्र होने चाहिए।' अमेरिकन समाज में यह एक ऐसा विचार है, जिसमें एक ही मानव समाज के अन्तर्गत धर्म और राज्य बिना एक-दूसरे से टकराए हुए सह-अस्तित्व की भावना से रहे। भारतीय समाज में यह एक ऐसी जीवन-शैली है, जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग समानता, सह-अस्तित्व एवं सहिष्णुता की भावना के आधार पर बिना एक-दूसरे के परम्परा विश्वासों में विघ्न उत्पन्न किए, एक ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करें जिसमे ंउस राज्य का कोई भी निश्चित धर्म न हो और उसके लिए सभी धर्म समान हों, किन्तु यहां यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भारतीय धर्म-निरपेक्षता का प्रत्यय अमेरिकन समाज के धर्म-निरपेक्षता के प्रत्यय से भिन्न है। अमेरिकन समाज में धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाओं को राज्य किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान नहीं करता है, जबकि भारत में राज्य विभिन्न धार्मिक समुदायों द्वारा चलाई गई शैक्षिक संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान ने राज्य को यह भी अधिकार दिया है कि वह विभिन्न धार्मिक समुदायों के हितों की रक्षा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं सांस्कृतिक विकास को ध्यान में रखते हुए उनके धार्मिक जीवन में विघ्न भी डाल सकता है वस्तुतः राज्य विभिन्न धार्मिक समूह के जीवन में विषय इस को लेकर डालता कि भारत का पवित्र समाज शनैः-शनैः धर्म-निरपेक्ष समाज में परिवर्तित हो।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. राष्ट्रवाद का अर्थ समझ सकेंगे।

2. धर्मनिरपेक्षवाद का अर्थ समझ सकेंगे।
3. सार्वभौमिकवाद का अर्थ समझ सकेंगे।
4. राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद का शिक्षा से सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में टैगोर के शैक्षिक विचारों को
6. स्पष्ट कर सकेंगे।
7. राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों
8. को स्पष्ट कर सकेंगे।

4.3 राष्ट्रवाद का अर्थ

राष्ट्रवाद का अर्थ है अपने राष्ट्र (देश) के प्रति प्रेम, वफादारी, आदर एवं भक्ति की भावना रखना। जब कोई व्यक्ति अपने देश की भाषा, उसके इतिहास, भूगोल, प्राचीन पवित्र ग्रन्थों, पूर्वजों, मूल्यों, परम्पराओं तथा आदर्शों से प्रेम करता है और उन आदर्शों को अपने व्यवहार में अपनाता है तो उसे राष्ट्रवादी कहा जाता है।

अपने राष्ट्र से लगाव, उसके प्रति आत्मीयता की भावना, उससे प्रेम-ये सब राष्ट्रवाद के सूचक हैं। राष्ट्रवाद ऐसी शक्ति है जो देश के नागरिकों को एकता के सूत्र में बांधती है। यह व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हितों को राष्ट्रीय हितों पर बलिदान करने की प्रेरणा देता है।

i. ब्रूबेकर का विचार- 'राष्ट्रवाद ने पूनर्जागरण और विशेषकर फ्रांस की क्रांति से महत्व प्राप्त किया। साधारण रूप से इसका अर्थ है देश के प्रति देश-भक्ति से भी अधिक वफादारी रखना। स्थान की एकता के अतिरिक्त राष्ट्रवाद में जातीय-एकता, भाषायी-एकता, ऐतिहासिक-एकता, सांस्कृतिक-एकता, पारस्परिक-एकता का भी महत्व है।'
ii. हमायूं कबीर के विचार- 'राष्ट्रवाद राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना पर आधारित होता है।'
iii. पंडित जवाहर लाल नेहरू का विचार- 'राष्ट्रवाद एक विचित्र तत्व है जो एक ओर जीवन, विकास, शक्ति एवं एकता का संचार करता है तो दूसरी ओर यह संकीर्णता भी उत्पन्न करता है क्योंकि इसी के कारण व्यक्ति अपने देश को संसार के दूसरे देशों से अलग समझने लगता है'।

देश भक्ति और राष्ट्रवाद- प्रायः देशभक्ति को राष्ट्रवाद का पर्यायवाची मान लिया जाता है। परन्तु यह ऐसा नहीं है। देश भक्ति एक प्राचीन धारणा है जबकि राष्ट्रवाद आधुनिक धारणा है जिस का जन्म 'फ्रांस की महान् क्रान्ति' के दौरान हुआ। ब्रूबेकर के कथनानुसार, 'साधारणतयः राष्ट्रवाद देश भक्ति की अपेक्षा देश के प्रति वफादारी के व्यापक क्षेत्र की ओर इंगित करता है।' देश भक्ति उस देश के प्रति प्रेम तक सीमित है जहां व्यक्ति का जन्म और पालन-पोषण हुआ। देश भक्त व्यक्ति राष्ट्र-हित के लिये अपने हितों की बलि चढ़ा देता है। परन्तु राष्ट्रवाद एक गतिशील सामाजिक संगठन है जो एकता के सूत्रों में बन्धा होता

है और राष्ट्रीय सरकार के आदर्शों एवं नीतियों का प्रचार एवं प्रसार करता है। राष्ट्रवाद केवल अपनी जन्मभूमि के प्रेम तक सीमित नहीं है। इसमें राष्ट्र के इतिहास, संस्कृति, धर्म, भाषा तथा परम्पराओं से प्रेम भी सम्मिलित है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद राष्ट्र के प्रति पूर्ण कर्त्तव्य निष्ठता तथा उसकी वर्तमान समृद्धि एवं भावी भव्यता में पूर्ण आस्था का नाम है।

4.4 सार्वभौमिकवाद का अर्थ

यह एक मानवीय गुणवन्ता का दावा है। यह गैर-सार्वभौमिकवाद के विपरीत किया जाता है। मुख्यतः सार्वभौमिकवाद के तीन मूल रूप है- ज्ञान, प्रेम और कर्त्तव्य संसार में मानव इन तीन शब्दों के घेरे में पूर्ण जीवन को व्यतित करना है और सुखः दुख का अनुभव करता है। सार्वभौमिकवाद का मानना है कि व्यक्ति को दुखः और सुख-शारीरिक, भावात्मक, मानसिक, वित्तीय या आध्यात्मिक हो सकता है। इसका मानना है कि मानव जीवन में कष्टों (दुःखों) के तीन मुख्य कारक है जो निम्न प्रकार है।

i. पीडित(दुःखी) के लिए सबसे पहले बुनियादी कारण ज्ञान का अभाव है। दुःख तभी होता है जब पर्याप्त जानकारी और ज्ञान का अभाव हो यदि मानव सही समय एवं परिस्थितियों के अनुसार सही निर्णय लेने की क्षमता रखता है वही ज्ञानी है और दुःख कही भी नहीं । परन्तु मानव लालच, स्वार्थ, ईर्ष्या और भय आदि हमें तर्कपूर्ण ढ़ग से सोचने के लिए और बुद्धिमानी से कार्य करने की अनुमति न के बराबर ही देते है।

ii. सार्वभौमिकता के अनुसार, हमारे अतीत मानव जीवन के दुखी होने का दूसरा मूल कारण हमारा कर्त्तव्य पूर्ण न करना है। मानव जीवन में हम विभिन्न तरह की भूमिका जैसे- बेटे, बेटी, माता-पिता, पति-पत्नी, कर्मचारी, नियोक्ता, सहयोगी, पड़ोसी, सामान्य नागरिक, दोस्त आदि के रूप में कई भूमिका निभातें है। हम अपनी भूमिका के रूप में अपना सही कर्त्तव्य समझ कर अपनी भूमिका के रूप में अपना सही कर्त्तव्य समझ कर पूर्ण कर दें तो दुःखी कहीं नजर नही आयेगा।

iii. सार्वभौमिकवाद के अनुसार, हमारे दुःखी होने का तीसरा लेकिन सबसे महत्व पूर्ण बुनियादी कारण प्यार की कमी है। इसका कारण- लालच, ईर्ष्या, स्वार्थ और डर है। आज के परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन में बिना शर्त के कहीं भी प्यार देखा नहीं जा सकता। प्यार मानव जीवन में जीवन में जीने की एक विशेष कला को जन्म देता है जो बिना घर्षण के जीवन को आगे बढा़ता है और दुःख का अनुभव नहीं होने देता।

4.5 धर्म निरपेक्षवाद का अर्थ

वास्तव में, लौकिकीरण तथा धर्मनिरपेक्षवाद दो ऐसे शब्द हें जिनकी मूल भावना बहुत कुछ समान होते हुए भी, उनका वास्तविक अभिप्राय एक-दूसरे से बहत भिन्न है। धर्मनिरपेक्षवाद एक ऐसी प्रक्रिया तथा नीति है जिसके अन्तर्गत राज्य और संविधान की दृष्टि में विभिन्न धर्मों को मानने वाले समूहों के बीच किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाता। साथ ही यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक समाज के कानून, नैतिकता तथा शिक्षा आदि धर्म से स्वतंत्र रहते हैं। इसका उद्देश्य एक ओर विभिन्न धर्मों के लोगों

में समानता एवं सह-अस्तित्व को बनाये रखना है तो दूसरी ओर, उनमें सहिष्णुता की भावना को विकसित करके राज्य को अधिक संगठित बनाना होता है। दूसरी ओर, लौकिकीकरण के रूप में इस प्रक्रिया के अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रोफेसर श्रीनिवास ने लिखा है, ''लौकिकीकरण शब्द में यह बात निहित है कि जिसे पहले धार्मिक माना जाता था, उसे अब वैसा नहीं माना जाता।'' डॉक्टर श्रीनिवास ने यह भी लिखा है कि ''लौकिकीकरण का दूसरा आवश्यक तत्व बुद्धिवाद है जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त, परम्परागत विश्वासों और धारणाओं के स्थान पर आधुनिक ज्ञान की स्थापना निहित होती है।''

वास्तव में, अंग्रेजी के शब्द का हिन्दी रूपान्तर 'लौकिकीकरण' के रूप में होना इस प्रक्रिया के दो अर्थों पर प्रकाश डालता है-पहला अर्थ सामान्य है, जबकि दूसरा क्रांन्तिकारी। सामान्य अर्थ के अनुसार धर्मनिरपेक्षवाद एक ऐसी स्थिति को स्पष्ट करता है जिसमें हमारे प्रतिदिन के जीवन में धार्मिक नियंत्रण कम हो जाता है, धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति नई मनोवृत्तियां विकसित होने लगती हैं तथा कर्मकाण्डीय व्यवहारों के स्थान पर तर्क को अधिक महत्व मिलने लगता है। क्रान्तिकारी अर्थ में लौकिकीरण एक ऐसी स्थिति है जिसमें परम्परागत धार्मिक विश्वासों को बहुत सक्रियता के साथ स्वीकार किया जाने लगता है। जहां तक भारतीय समाज का प्रश्न है, हमारे समाज में लौकिकीरण का कोई क्रांन्तिकारी स्वरूप विद्यमान नहीं है बल्कि एक स्वाभाविक प्रक्रसया के रूप् में ही लौकिकीरण का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य द्वारा सभी धर्मो को समान महत्व देने के कारण हम इस प्रक्रिया को 'धर्मनिरपेक्षवाद ' भी कहते हैं लेकिन श्रीनिवास द्वारा वर्णित प्रक्रिया में धार्मिक विश्वासों के स्थान पर सांसारिक अथवा लौकिक तत्वों का महत्व कहीं अधिक होने के कारण इसे 'लौकिकीकरण की प्रक्रिया' कहना ही अधिक उपयुक्त है।

4.6 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद का शिक्षा से सम्बन्ध

राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के साथ शिक्षा के सम्बन्ध की बात करे तो शिक्षा इन तीनों को एक साथ एक सूत्र में पिरायें रखती हैं वास्तव में शिक्षा ही एक मात्र साधन हैं जो इनके वास्तविक स्वरूप से परिचित करती हैं।

राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद बनायें रखने में शिक्षा का महत्व पूर्ण स्थान है। राष्ट्र की विघटनात्मक कुशक्तियों के विरुद्ध लडने के लिए यह महत्व पूर्ण साधन है। डा0 राधाकृष्णन ने कितना सुन्दर कहा है, 'राष्ट्रीय एकता ईंटों और पलस्तर से नहीं बनाई जा सकती, न ही छैनी या हथौड़े से इसका निर्माण किया जा सकता है। इसे चुपचाप लोगों के मनों और दिलों में पैदा होना होगा। इसकी एकमात्र प्रक्रिया शिक्षा प्रक्रिया है।' इसी प्रकार सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है।

4.7 राष्ट्रवाद, सर्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में टैगोर के शैक्षिक विचार

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, लेखक, कवि, निबंधकार, नाटककार, संगीतकार, गायक, दार्शनिक, समाज सुधारक, चिंतक और महान शिक्षाविद् के रूप में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शिक्षा को एक बहुउद्देश्यीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया उनके अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उससे वास्तविक जीवन में रक्षा करने में सहायता करती है। भौतिक और आध्यात्मिक विकास शिक्षा के मुख्य उद्देश्य है। भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, कला, प्रकृति अध्ययन और संगीत को पाठ्यचर्या में स्थान दिया है। उन्होंने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण कार्य करने पर बल दिया। वे सीखने में बच्चों की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे आत्मानुशासन पर बल देते थे। शिक्षकों को ज्ञानी, संयमी और शिक्षार्थियों के प्रति समर्पित होना चाहिए। वह शिक्षा के अन्य पक्ष जनशिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा के पक्षधर थे। वह प्रकृतिवादी, प्रयोजनवादी, मानवतावादी शिक्षाविद् थे। शांति निकेतन उनकी शिक्षा की प्रयोगशाला थी। वह श्रम, संगीत और स्वाध्याय के साथ संस्कारवान शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनका शैक्षिक चिंतन और विचार आज भी भारतीय शिक्षा में जीवन्त है।

स्वतंत्रता के विचार के समान, टैगोर को पूरे विश्व में सच्ची स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए लोगों के प्रयास समान रूप से कद्म भरे तथा विपरीत परिणाम देने वाले लगे। बीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश में यूरोप के कुछ देशों की लड़ाकू और आक्रामक राष्ट्रवादी आकांक्षाओं की पृष्ठभूमि में राष्ट्रवाद का विश्लेषण करते हुए, टैगोर ने राष्ट्रवाद के विचार के जन्म को महाद्वीप में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी विकास की उपज के रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने तर्क दिया कि भारत, जहाँ अपने व्यक्तित्व के स्वाभाविक सांस्कृतिक दृष्टिकोण के कारण लोगों के संगठन सामाजिक व नैतिक लक्ष्यों को लिए होते हैं, से भिन्न, यूरोप में, कहानी बिल्कुल अलग दिखती है। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में त्वरित विकस के कारण हुए औद्योगिक विकास ने लोगों को आविष्कारों से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए हाथ मिला लेने के लिए प्रेरित किया। लेकिन उन्होंने जोर दिया कि बिना नैतिक अथवा सामाजिक लक्ष्य के लोगों की ऐसी यांत्रिक सहयोगिता उनमें अमानवीय प्रवृत्तियों को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप उनका राष्ट्रवाद अपनी प्रकृति में धमकाने वाला तथा आक्रामक हो गया। इसके अतिरिक्त, टैगोर ने कहा कि यूरोप में राजनीतिक तथा आर्थिक उद्देश्य के लिए राष्ट्रवाद के विकास की प्रक्रिया में नैतिक रूप से अस्वीकार करने योग्य, राजनीतिक रूप से आक्रामक तथा आर्थिक रूप से राष्ट्रवाद के असंतोषजनक रूप होने के गुण अन्तर्निहित हैं जो मानवता के व्यापक हितों के लिए हानिकारक हैं।

टैगोर ने यूरोप में घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में आक्रामक राष्ट्रवाद के विकास के अनेक नकारात्मक परिणाम बताए। देश के भीतर, उन्होंने आगे कहा, राष्ट्रवाद लोगों में सत्ता तथा धन के लिए प्रचण्ड व अन्तहीन लालच को प्रोत्साहित करता है जिसके परिणामस्वरूप मानव श्रम का अधिक से अधिक अवमूल्यन होता है तथा अधिक धन कमाने के लिए यांत्रिक शक्ति पर भरोसा बढ़ता जाता है।

धीरे-धीरे सामाजिक अन्तःक्रिया में लोग नैतिक और मानवीय तत्वों से वंचित होने लगते हैं तथा उनकी गतिविधियों दुष्टतापूर्ण होने के बावजूद उनकी राजनीतिक-आर्थिक शक्ति से सामाजिक स्थान निर्धारित होता है। अन्तिम विश्लेषण में, जब सत्ता और धन का लालच अत्यनत बढ़ जाता है, तो यह उन्हें लोगों के ऐसे अस्वाभाविक संगठन बनाने के लिए प्ररित करता जो अपने स्थान में बाहर के क्षेत्र के भौतिक संसाधनों को खोजने तथा उसके शोषण करने के लिए धावा बोलते हैं। इस प्रकार राष्ट्रवाद उपनिवेशवाद को बढ़ावा देता है तथा लाभदायक उपनिवेशों में दृढ़ स्थान प्राप्त करने के लिए दो या दो से अधिक देशों में भीषण युद्ध होता है। उपनिवेशों की गतिविधियों से राष्ट्रवाद का यथार्थ चरित्र उजागर हो उठता है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उदाहरण लेते हुए, टैगार ने भारत में उपनिवेश के अनुकूल परिर्वतन होना है। उन्होंने दुख प्रकट किया, "नैतिक भ्रष्टाचार का यह चक्र लगातार चलता रहेगा, लोहे से जोड़ना तथा मशीन को मशीन से, जिसके तले व्यक्ति के सहज विश्वास तथा आदर्श जीवन के सुन्दर फूल कुचल जाएंगे"।

सर्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में टैगोर के अपने शैक्षिक विचारों में कुछ विशेष नही कहा। टैगोर के अनुसार, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद किसी भी राष्ट्र के विकास तत्व से है लेकिन उत्साह की भावनाओं के मूल्य और गुण का कमजोर हो जाना तथा राष्ट्र की आसुरी प्रवृत्तियों का बढ़ते जाना, जिसके कारण यूरापीय सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद द्वारा शेष विश्व को उपनिवेश बना लिया गया, गलत हुआ।

4.8 राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचार

जे. कृष्णमूर्ति गत शताब्दी के महान् चिंतकों में अग्रण्य हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी विचार किया है। उनके दर्शन पर आधारित कई शिक्षण-संस्थाएं देश-विदेश में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इस लेख में कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन के विविध आयामों की व्यवस्थित विवेचना करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस आधार पर इस बहुमूल्य दर्शन की प्रासंगिकता को भी आलेकित किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के सुख्यात दार्शनिक जे, कृष्णमूर्ति (1895-1986) ने अपने मौलिक चिंतन से शिक्षा दर्शन को भी समृद्ध किया है। उन्होंने विश्व के विभिन्न भागों की निरंतर यात्राएं की तथा सत्य के प्रेमी एवं अन्वेषी के रूप में अपने विचारों से जगत् को आंदोलित किया। अपने शैक्षिक विचारों को जीवंत रूप देने हेतु उन्होंने विशिष्ट प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की प्रेरणा दी।

कृष्णमूर्ति के अनुसार, शिक्षा केवल पुस्तकों से सीखना, किन्हीं तथ्यों को कण्ठस्थ करना तथा समाज के प्रवाह में बहना नहीं है। यह केवल मन को प्रशिक्षित करना भी नहीं है। प्रशिक्षण कार्यकुशलता तो उत्पन्न करता है। किन्तु नवीन का आविष्कार नहीं करता। वस्तुतः शिक्षा समग्र मन के विकास में मनुष्यों की सहायता करने का एक महत्वपूर्ण, रचनात्मक और सच्चा मार्ग है, जो व्यक्ति को स्पष्ट अवलोकन करने में समक्ष बनाती है। यह मानव-जीवन में विद्यमान विभिन्न प्रकार के संबंधों की समझ प्रदान करती है।

राष्ट्रवाद, सर्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में जे. कृष्णमूर्ति के अपने शैक्षिक विचारों में कुछ विशेष नही कहा। जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार, राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को यथास्थिति समझकर समस्याओं को सुलझाने को तत्परता होना चाहिए। इसके लिए घटनाओं का स्वयं एवं अन्य सभी के संदर्भ में बिना अवरोध और पूर्वाग्रह के निरीक्षण कर समस्याओं को सुलझाना तथा स्वयं को परिस्थिति की अधिक गहरी समझ प्राप्त करना। व्यक्ति को जीवन के सुख और दुःख, क्षुद्रता और व्यापकता सबको समझने की आवश्यकता है।

उनका विद्यार्थियों के लिए कहना था- ''तारों, स्वच्छ आकाश पक्षियों तथा पत्तों के आकार को देखो। छाया को देखो। आकाश में विचरते हुए पक्षी को देखो। वृक्ष के नीचे मौन बैठकर स्वयं के साथ तुम अपने मन की गतिविधियों को समझना आरम्भ करते हो और यह कक्षा में जाने के बराबर ही महत्वपूर्ण है।''

भय से मुक्ति अनुशासन से नहीं अपितु शांत मन द्वार संभव है। शांत मन ही स्वयं की समझ प्रदान करता है, जो स्वतंत्रता और शांति का आरम्भ है। विद्यालय वह स्थान होना चाहिए, जहां विद्यार्थी विचार-विमर्श एवं मौन द्वारा स्वयं को एवं अपनी वास्तविक रूचि को पहचान सकें। वहां तुलना और प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग और प्रेम को बढ़ावा मिलना चाहिए।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रवाद से आप क्या समझते हैं ?
2. धर्म निरपेक्षवाद का अर्थ को समझाइये।
3. सार्वभौमिकवाद का अर्थ को समझाइये।
4. राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्म निरपेक्षवाद के सन्दर्भ में टैगोर के शैक्षिक विचारों की व्याख्या कीजिए।
5. राष्ट्रवाद,सार्वभौमिकवाद तथा धर्म निरपेक्षवाद के सन्दर्भ में कृष्णमूर्ति के शैक्षिक विचारों को स्पष्ट कीजिए।

खण्ड 3
Block 3

इकाई 1- पाठ्यचर्या क्या है तथा पाठ्यचर्या के निर्माण में कौन और क्यों संलग्न रहते हैं के उत्तर समझने योग्य बनाना

Enabling Student Teachers to Comprehend What is Curriculum and Who Participiate in Preparing the Curriculum Why?

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पाठ्यचर्या का अर्थ

1.3.1 पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु में अन्तर

1.3.2 पाठ्यचर्या के आधार

1.4 पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया एवं इसके सोपान

1.5. पाठ्यचर्या के मुख्य उपागम

1.6 भारत में पाठ्यचर्या विकास का प्रारूप

1.7 पाठ्यचर्या की आवश्यकता

1.8 पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में प्रतिभागिता

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा को एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है। शिक्षा के विविध स्वरूप अपनी उद्देश्यपरकता के अनुकूल शिक्षा का नियोजन करते है। शिक्षा का नियोजित स्वरुप स्वयं में उन सन्दर्भों और क्रिया-

प्रक्रियाओं को समाहित करने का प्रयास करता है जिन्हें कोई बौद्धिक समाज या राज्य, शिक्षाविद्, विशेषज्ञ आदि भावी पीढ़ी में अपेक्षित समझता है। आज के इस सूचना प्रधान समाज में सन्दर्भों व क्रिया-प्रक्रियाओं की संख्या अनगिनत हो गई और किसी के भी महत्व व प्रयोजनशीलता को कम नहीं आँका जा सकता है। यह भी अपने आप में एक यथार्थ सत्य है कि सभी को न तो समाहित किया जा सकता है और न ही नियोजन संभव हो पाएगा। फिर यह समस्या उत्पन्न हो जाएगी कि आखिर किस विषय-वस्तु या विषय सामग्री को शामिल किया जाए और किसे न शामिल किया जाए और इसका सर्वोत्कृष्ट समाधान क्या होगा? अगर वास्तव में देखा जाए तो इस संदर्भ में यही परिपाटी प्रचलित है कि विद्वान, विशेषज्ञ, मनोवैज्ञानिक, अधिकारी एवं राज्य या सरकार व्यक्ति या समाज के परिप्रेक्ष्य में जिन विषयों व सामग्रियों को महत्व देते है या आवश्यक समझते है उन्हें पाठ्यचर्या में शामिल कर लिया जाता है। पाठ्यचर्या की अवधारणा में यह सदैव निहित रहता है कि हम बच्चों को किस दिशा में ले जाना चाहते है, उनसे क्या सीखाना अपेक्षित रखते है? और उन्हें क्या पढ़ाते है आदि। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या अहम भूमिका का निर्वहन करते है। इसलिए यह आवश्यक समझा जाता है कि शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या बच्चों के सवालात और उनकी उत्सुकता पर निर्भर हो । सामाजिक औचित्य संगति के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक समझा जाता है कि पाठ्यचर्या इस प्रकार से नियोजित एवं निर्मित हो कि विद्यार्थी अपनी राष्ट्रीय परंपरा में गौरवान्वित हो सकें तथा देश की सामूहिकता और विविधता के प्रति प्रतिबद्ध हो सकें। पाठ्यचर्या विद्यार्थियों को उनके निकटवर्ती सामाजिक वातावरण को जानने व समझने में, उसमें शरीक होने तथा उसका सरोकार रखने को प्रेरित करे और सैद्धांतिक ज्ञान प्रवाहों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से जोड़ने का अवसर प्रदान करने वाला होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रुपरेखा-2005 में वास्तविक शिक्षा उसे माना गया जो बच्चों के अनुभव-क्षेत्र और उनकी समझ को विकसित एवं विस्तृत करे क्योंकि इसमें यह माना गया कि शिक्षा सूचना देना नहीं है। यह वास्तविक सन्दर्भों में तभी सार्थक है जब वह बच्चे के व्यक्तित्त्व और उसके परिवेश के साथ एकाकार करने के अवसर प्रदान करें और जिसमें ज्ञान का निर्माण वे स्वयं करें एवं अपने परिवेश को साथ में एकाकार कर सकें। वर्तमान संदर्भ में शिक्षा और उसके स्वरुप में प्रगतिशील विकास के मानदंडों के फलस्वरूप नूतन सरोकारों को समाहित किया जाना आवश्यक समझा जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रुपरेखा-2005 में पाठ्यचर्या से सम्बंधित विभिन्न सरोकारों के संदर्भ में कुछ मार्गदर्शक सिद्धांतों की चर्चा की गई है जोकि वर्तमान परिदृश्य में शैक्षिक व्यवस्था आवश्यक तत्व माने गए है। ये निम्न है-

- विद्यालय में प्रदान की जाने वाले ज्ञान को जीवन से जोड़ना,
- अध्ययन या पढ़ाई परंपरागत रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना,
- पाठ्यचर्या का संवर्धन इस प्रकार किया जाए कि वह केवल विद्यार्थियों को पाठ्य-पुस्तक केन्द्रित बना कर रखें अपितु उनकों बहुमुखी विकास के समुचित अवसर प्रदान करने वाला हना चाहिए।,

- परीक्षाओं को अपेक्षाकृत अधिक लचीला व सरल बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हो।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. पाठ्यचर्या के प्रत्यय को स्पस्ट कर सकेंगे।
2. पाठ्यचर्या की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर सामान्य अवधारणा को स्पस्ट कर सकेंगे।
3. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यवस्तु में अन्तर स्पस्ट कर सकेंगे।
4. पाठ्यचर्या के विभिन्न आधारों का वर्णन कर सकेंगे।
5. पाठ्यचर्या के विभिन्न आधारों को कारण सहित स्पस्ट कर सकेंगे।
6. पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों का वर्णन कर सकेंगे।
7. पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों का उदाहरण सहित व्याख्या कर संकेगे।
8. पाठ्यचर्या विकास के विभिन्न प्रतिमानों का वर्णन कर सकेंगे।
9. पाठ्यचर्या विकास के सामान्य प्रतिमान को स्पस्ट कर सकेंगे।
10. पाठ्यचर्या विकास में शामिल होने वाले प्रतिभागियों को उल्लखित कर सकेंगे।
11. पाठ्यचर्या की आवश्यकता को विवेचित कर सकेंगे।
12. भारत में प्रचलित पाठ्यचर्या विकास के प्रारूप को स्पस्ट कर सकेंगे।

1.3 पाठ्यचर्या का अर्थ

किसी भी शिक्षा संगठन में किसी स्तर पर विषयों का निर्धारण उक्त स्तर पर निश्चित किए गए शिक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर करता है। शिक्षा का इन निश्चित किए गए आधारों की प्राप्ति हेतु पाठ्यचर्या एवं विषय-सामग्री का आयोजन व नियोजन किया जाता है। सामान्य अर्थ में शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जिन विषयों एवं क्रियाओं का नियोजन किया जाता है उन्हें पाठ्यचर्या कहा जाता है। पाठ्यचर्या अंग्रेजी भाषा के Curriculum का हिंदी रूपांतर है। Curriculum शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के Currere शब्द से मानी जाती है, जिसका आशय है- A Race Course अर्थात दौड़ का मैदान। इस प्रकार शैक्षिक

परिदृश्य में पाठ्यचर्या से आशय उस दौड़ के मैदान से हैं जिसमें दौड़ते हुए विद्यार्थी शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते है जिस प्रकार दौड़ के मैदान में कोई धावक दौड़ कर अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रयासरत रहता है। एक सामान्य प्रचलित परिपाटी में पाठ्यचर्या की अवधारणा में केवल इसे पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित नहीं माना गया है अपितु इसमें शिक्षक व्यवहार, विद्यालय का भवन, प्रांगण, दीवारों में लगे चित्र एवं लिखे आदर्श वाक्य आदि क्रिया-कलाप भी समाहित रहते है। पाठ्यचर्या के अर्थ एवं सुस्पस्टता के लिए कुछ परिभाषाओं को जानना व समझना आवश्यक है। ये परिभाषाएं निम्न है-

कनिंघम के अनुसार- "पाठ्यचर्या कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन(यन्त्र) है जिसके द्वारा वह अपनी वस्तु या सामग्री(विद्यार्थी) को अपने कलागृह (विद्यालय) में अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार वांछित रूप देता है।"

माध्यामिक शिक्षा आयोग के अनुसार- " पाठ्यचर्या से आशय केवल परम्परगत रूप से पढ़ाए जाने वाले सैद्धांतिक विषयों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसमें अनुभवों की वह सम्पूर्णता निहित है जो एक बच्चा किसी विद्यालय में ग्रहण करता है।**"**

मुनरों के अनुसार – **"**पाठ्यचर्या में वे समस्त अनुभव निहित होते है जिनकों विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लिया जाता है।**"**

किलपैट्रिक के अनुसार- "पाठ्यचर्या विद्यार्थियों का उस सीमा तक सम्पूर्ण जीवन है जिस सीमा तक विद्यालय उसे अच्छा या बुरा बनाने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।"

जॉन डीवी के अनुसार- "पाठ्यचर्या की योजना में वर्तमान सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं की अनुकूलता का ध्यान रखना चाहिए, इसका चयन इस प्रकार का हो कि हमारे सामान्य सामूहिक जीवन में सुधार हो ताकि हमारा भविष्य हमारे अतीत से अच्छा हो।**"**

रडयार्ड एवं हेनरी के अनुसार- "विस्तृत अर्थ में पाठ्यचर्या के अंतर्गत समस्त विद्यालयीय वातावरण आता है जिसमें विद्यालय में प्राप्त सभी प्रकार के संपर्क, अंत:क्रियाएं, पठन, क्रिया-कलाप एवं विषय आदि सम्मिलित है।**"**

कैसवेल के अनुसार- "बच्चों को एवं उनके माता-पिता तथा शिक्षकों के जीवन में आने वाली समस्त क्रियाओं को पाठ्यचर्या कहा जाता है। विद्यार्थी के कम करने के समय में जो कुछ भी कार्य होता है उन सभी से पाठ्यचर्या का निर्माण होता है। वस्तुतः पाठ्यचर्या को गतियुक्त वातावरण कहा गया है।**"**

जॉन फ्रेंकलिन बौबिट का मत है कि पाठ्यचर्या ऐसे कार्यों एवं अनुभवों का वर्णित रूप है जिसमें बच्चों के अपेक्षित वयस्क के रूप में विकसित होने का ध्येय निहित रहता है इसके अतिरिक्त इसमें केवल विद्यालीय अनुभव ही नहीं अपितु विद्यालय के बाहर के कार्य एवं अनुभव अपनी सम्पूर्णता के साथ

समाहित रहते है। इसमें वे अनुभव, जो अनियोजित और अनिर्द्रिष्ट रहे है और वे जिन्हें एक समाज अपने सदस्य के रूप में किसी वयस्क में अपेक्षित या वांछित समझता है, निहित रहते है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि औपचारिक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो भी पाठ्य विषय पढ़ाएं जाते है तथा पाठ्य विषय सम्बन्धी व सहपठ्यचारी गतिविधियों का आयोजन किया जाता है और विद्यालय की परिधि के भीतर व बाहर प्राप्त सभी अनुभव पाठ्यचर्या के अंतर्गत समाहित माने जाते है। पाठ्यचर्या से आशय उन साधनों एवं सामग्रियों से है जिनके साथ विद्यार्थी इस प्रयोजन से अंतक्रिया करते है कि सुस्पस्ट शैक्षिक परिणामों की प्राप्ति की जा सके।

1.3.1 पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु में अन्तर (Difference between Curriculum and Syllabus)

सामान्यत: कई बार व्यवहार में इन प्रत्ययों को एक समान अर्थ में अनुप्रयोग किया जाता है परन्तु सूक्ष्मता से देखा जाए तो इन शब्दों में अन्तर परिलक्षित होता है।

पाठ्यचर्या (Curriculum) - पाठ्यचर्या शब्द का प्रयोग व्यापक एवं विस्तृत अर्थ मे किया जाता है। इसके अंतर्गत वह सभी अनुभव समाहित रहते है जो विद्यार्थी विभिन्न विषयों के शिक्षण, सम्पर्क या अंत:क्रिया तथा विद्यालय के अन्दर या बाहर आयोजित होने वाली पाठ्य एवं पाठ्येत्तर क्रियाएं सम्मिलित होती है।

पाठ्यवस्तु (Syllabus) -पाठ्यवस्तु एक शैक्षणिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को प्रदान किए जाने वाले शिक्षण एवं क्रिया-कलापों के विषय में निश्चित रुपरेखा प्रस्तुत करता है। मुख्य तौर पर विषयों पर केन्द्रित होता है, कक्षानुसार सीखने के लक्ष्य, उनके क्रम व अनुपात (यानी कितना पढ़ाना है) का स्पस्ट विवरण रहता है। यह भी उल्लखित रहता है कि मूल्यांकन में किन बिन्दुओं पर कितना जोर होगा। सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि पाठ्यवस्तु में पाठ्य विषयों एवं उनसे सम्बंधित कार्यों एवं क्रियाओं का विवरण रहता है। इसमें किसी स्तर विशेष के लिए सैद्धांतिक विषयों की ज्ञान की सीमा निहित मानी जाती है।

तुलना के आधार	**पाठ्यवस्तु (Syllabus)**	**पाठ्यचर्या (Curriculum)**
अर्थ के संदर्भ में	पाठ्यवस्तु एक दस्तावेज़ है जिसमें एक विषय में शामिल अवधारणाओं के सभी तत्व निहित रहते है।	पाठ्यचर्या वह समग्र विषयवस्तु व अनुभव है जो एक विद्यार्थी किसी शैक्षिक व्यवस्था में ग्रहण करता है।
उत्पति के संदर्भ में	सिलेबस की उत्पति ग्रीक शब्द से मानी जाती है।	करिकुलम शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द से हुई है।
प्रकृति के संदर्भ में	वर्णनात्मक	निर्देशात्मक
क्षेत्र के संदर्भ में	संकुचित	व्यापक एवं विस्तृत

निर्धारण के संदर्भ में	विभिन्न बोर्डों के द्वारा	सरकार या विद्यालय, विश्वविद्यालय या संस्थान के प्रशासन द्वारा
अवधि के संदर्भ में	एक निश्चित अवधि, सामान्यत: एक वर्ष	कोर्स के अंत होने तक
एकरूपता के संदर्भ में	एक से दूसरे शिक्षक में इसके पक्षों को लेकर समानता नहीं	सभी शिक्षकों के लिए एक समान होता है।

1.3.2 पाठ्यचर्या के आधार (Bases of Curriculum)

सभी सभ्य समाजों ने शिक्षा को एक चौथी आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है और इसके लिए एक उमम्दा एवं बेहतरीन पाठ्यचर्या को अपने-अपने समाजों में नियोजित किया है। पाठ्यचर्या का स्वरुप सभी समाजों में एक सा नहीं है। इसका कारण विभिन्नता एवं विविधता है किन्तु पाठ्यचर्या निर्माण के आधार लगभग सभी समाजों में एक से है। पाठ्यचर्या के आधार वह प्रभाव है जो किसी समाज की शिक्षा के स्वरुप एवं दिशा का निर्धारण करते है। पाठ्यचर्या के प्रमुख आधार निम्न माने जाते है-

i. **दार्शनिक आधार -** किसी भी देश की शिक्षा के उद्देश्य उस देश के आदर्श, आस्था, विश्वास एवं जीवन दर्शन से प्रभावित होते हैं। इसी कारण पाठ्यचर्या के स्वरुप में भी इनका प्रभाव स्पस्ट रूप से परिलक्षित होता है। पाठ्यचर्या का उपयोग विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिमार्जन लाने के लिए किया जाता है और दर्शन विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिमार्जन हेतु नए तरीकों व आधारों को खोजने की प्रक्रिया में शिक्षकों एवं पाठ्यचर्या योजनाकारों या नीतिकारों की सहायता करता है। दर्शन शिक्षण के लिए नई विधियों को खोजने और कक्षागत परिस्थितियों में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से बेहतर उपलब्धि प्राप्त करने में सहायता करता है। दर्शन पाठ्यचर्या के मूल्यांकन एवं विद्यार्थियों की उपलब्धि के आंकलन हेतु नए तरीकों एवं विधियों को भी प्रदान करता है।
   शिक्षा का दर्शन एवं विचारधारा उन सिद्धांतों तथा नियमों को प्रदान करता है जिनके आलोक के प्रभाव में ही शैक्षिक कार्य-प्रणालियों एवं नीतिओं के सरोकारों के नियोजन के निर्णय लिए जाते है। यह किसी विषय के निर्माण में विद्यालय की भविष्यवर्ती आवश्यकताओं एवं मांगों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या योजनाकारों को दार्शनिक एवं वैचारिक विश्वासों के आधारों पर मार्गदर्शित करती है और विद्यार्थियों के व्यवहार में सामाजिक परिवर्तन के द्वारा मानव जीवन की उपादेयता के मूल्य को प्रोत्साहित करती है। जिस समाज का जैसा दार्शनिक विश्वास होगा उस समाज की वैसी शिक्षा स्वरूपित होंगी। दर्शन पाठ्यचर्या का एक प्रमुख आधार है।

ii. **मनोवैज्ञानिक आधार -** मनोविज्ञान की नीव व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित होती है। प्रत्येक विद्यार्थी का अपना अनूठा व्यक्तित्व होता है और वे अपने अधिगम एवं कौशल में विभिन्नताएं रखते है। विद्यार्थी की प्रकृति में विभिन्नताएं होती है इसलिए इनकों शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में पूर्ण समान नहीं समझा जा सकता है क्योकि कुछ विद्यार्थियों में अधिगम तेज करने की प्रवृति, तो कुछ में धीमें और और कुछ में औसत गति से करने की होती है। इसी कारण पाठ्यचर्या को इन मनोवैज्ञानिक

तथ्यों पर आधारित होना चाहिए और इसे विद्यार्थियों की क्षमताओं और बीजाभूत योग्यताओं का संवर्धन करने में सहायता प्रदान करने वाला होना चाहिए।

मनोविज्ञान में बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक आदि विकास का अध्ययन किया जाता है और इसी के आधार पर किसी स्तर विशेष के बच्चों के लिए निश्चित पाठ्यचर्या का नियोजन किया जाता है। मनोविज्ञान से ही यह जानकारी प्राप्त होती है किसी स्तर विशेष के बच्चों में क्या योग्यताएं, रुचियां, रुझान और क्षमताएं होती है तथा उनमें अधिगम करने की क्षमताओं का शारीरिक एवं मानसिक पर कितना विकास हुआ है जिनके आधार पर ही किन्हीं विषयों एवं क्रियाओं का नियोजन किया जाता है।

मनोविज्ञान की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, यह सभी प्रकार के शैक्षिक कार्यकर्मों को आधार प्रदान करता है। शिक्षण की विधियों, विषय की विषयवस्तु के चयन, अधिगम की विधियों एवं सिद्धांतों, विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास और उनमें समाज के मानदंडों को विकसित करने में मनोविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। मनोविज्ञान पाठ्यचर्या विकास की सभी प्रक्रियाओं में सहायता एवं मार्गदर्शन प्रदान करता है।

iii. **सामाजिक-सांस्कृतिक आधार -** पाठ्यचर्या योजनाकारों एवं निर्माताओं का उद्देश्य पाठ्यचर्या में विषय-वस्तु, सीखने की प्रक्रिया और पाठ्यचर्या के तत्वों के मूल्यांकन में परम्परागत मानदंडों, दर्शन, नैतिकता, ज्ञान और व्यवहार को समावेशित करने से है। सामाजिक कारकों का पाठ्यचर्या की विषयवस्तु में सबसे अधिक प्रभाव होता है और यही कारण है कि पाठ्यचर्या योजनाकारों एवं निर्माताओं द्वारा पाठ्यचर्या में अपने सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों को प्रतिबिंबित और रूपान्तरित करने का प्रयास किया जाता है। समाज और संस्कृति के प्रतिबिम्ब के बिना पाठ्यचर्या की संकल्पना साकार नहीं हो सकती है। पाठ्यचर्या योजनाकारों को सामाजिक और सांस्कृतिक प्रेरणाएँ चेतन एवं अचेतन रूप से प्रभावित करती है जिसका स्पस्ट एवं गहरा प्रभाव पाठ्यचर्या में सदैव परिलक्षित होता है क्योकि पाठ्यचर्या योजनाकार किसी न किसी समाज का सदस्य होते है इसलिए वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज और संस्कृति द्वारा प्रभावित होते है।

समाज की संस्कृति शिक्षा का मूल आधार होती है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए शिक्षा का सहारा लेता है और शिक्षा के पाठ्यचर्या में अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों का समावेश करता है। **मरे प्रिंट** का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि "समाज और संस्कृति पाठ्यचर्या की संरचना में भारी शक्तियों का का प्रयोग करती है इसका पीछे निहित कारण यह है कि समाज जिसने अपनी संस्कृतिक विरासत के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखने एवं प्रजातियों के अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए विद्यालय बना दिया।"

iv. **ऐतिहासिक आधार-** पाठ्यचर्या का इतिहास देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक अच्छे पाठ्यचर्या की संरचना में दीर्घ अवधि का समय लगता है जोकि अपने में समाज की आवश्यकताओं एवं अतीत के अनुभवों की झलक का प्रतिबिम्ब होता है। पाठ्यचर्या का इतिहास योजनाकारों एवं नियंताओं को दिशा दिखता है कि कैसे पाठ्यचर्या को विकसित, संशोधित एवं

परिमार्जित किया जाए, विद्यार्थियों को क्या पढ़ाया जाए एवं विषयों में क्या विषयवस्तु मुख्य रूप से रखी जाए तथा पाठ्यचर्या के माध्यम से कैसे निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाए आदि। इतिहास उन्हें यह भी स्पस्ट करता है कि शिक्षकों को कैसे शिक्षित एवं कौशल संपन्न बनाया जाना और शिक्षकों को पाठ्यचर्या के शिक्षण में क्या बेहतर व्यवहार अपनाने है अथवा किनका परित्याग करना है।

इतिहास विभिन्न कालों में पाठ्यचर्या एवं शिक्षक मनोविज्ञान में हुए विकास तथा शिक्षण शैलियों में हुए सुधार व परिमार्जन की व्याख्या करता है। इतिहास विभिन्न कालों के अधिगमकर्ताओं के व्यवहारों के विषय में वृहद् जानकारी प्रदान करता है साथ ही साथ अधिगमकर्ताओं के मनोविज्ञान के विषय में भी जानकारी प्रदान करता है। आज विकसित देशों में अधिकांश देश वे है जिनका स्वतंत्रता एवं उपयुक्त शिक्षा प्रणाली का दीर्घ इतिहास रहा है। इन देशों ने शिक्षा एवं समयानुकूल पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन के माध्यम से सफलता को प्राप्त किया। उन्होंने समय की आवश्यकता के अनुरूप अपने पाठ्यचर्या का संशोधन एवं परिमार्जन किया।

v. **आर्थिक आधार-** पाठ्यचर्या का आर्थिक आधार पाठ्यचर्या के व्यावसायिक पहलू को अधिक महत्व देता है। किसी भी देश या समाज की आर्थिक स्थिति देश के पाठ्यचर्या को दिशा-निर्देशित करती है क्योकि शिक्षा के हितधारक एक ऐसे पाठ्यचर्या को अनुप्रयोग में लाना चाहते है जिससे अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिले और लोगो को विद्यालीय शिक्षा के पश्चात अच्छा रोजगार प्राप्त हो सके। इस प्रकार की परिस्थितियों में पाठ्यचर्या रोजगार एवं बाजार की आवश्यकता पर अधिक केन्द्रित हो जाते है और पाठ्यचर्या योजनाकारों द्वारा समय की मांग के अनुरूप ज्ञान एवं कौशल पर अधिक अभिग्रहण किया जाता है। विकासशील एवं पिछड़े देशों के पाठ्यचर्या में ऐसे ज्ञान एवं दक्षता व कौशल को अधिक महत्व दिया जाता है जिससे ऐसे कार्यबल को तैयार किया जा सके जिसकी अन्य देशों में आवश्यकता अधिक हो। किसी भी देश की आर्थिक नीतियाँ भी वहाँ की शिक्षा एवं पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है।

vi. **राजनैतिक आधार-** वर्तमान समय में लगभग सभी देशों में शिक्षा की व्यवस्था करना उस राज्य या देश का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व समझा जाता है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं कार्यक्रम उस देश के राजनैतिक दर्शन, स्थिति एवं विचारधारा से प्रभावित होते है। जैसे साम्यावादी एवं प्रजातांत्रिक देशों की शिक्षा व्यवस्था एवं पाठ्यचर्या में अन्तर देखने को मिलता है। राजनैतिक स्थिति से सम्बंधित उदाहरण सबसे उपयुक्त इजरायल का लिया जा सकता है जिसने अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या में सैनिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य कर दिया है।

vii. **वैज्ञानिक आधार -** विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास ने मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। आज किसी भी देश की प्रगति की स्थिति का आंकलन उसके वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान से किया जाता है। विज्ञान के विकास ने निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोग की नूतन विधियों, प्रविधियों एवं पैमानों को विकसित किया है जिनके आधार पर ही सत्य का निर्धारण किया जाता है। विज्ञान न

केवल नवीन खोजों एवं तकनीकियों के विकास तक ही सीमित है अपितु इसके माध्यम से कम श्रम के प्रयोग से अधिक उपार्जन प्राप्त किया जा सकता है एवं भौतिक सुख सुविधाओं का अधिक विकास किया जा सकता है जो मानव जीवन सुखमय एवं सुविधा संपन्न बनाते है। आज विश्व के लगभग सभी देशों के पाठ्यक्रमों में विज्ञान विषयों को अधिक महत्व दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यचर्या शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के किस शब्द से हुई है?
2. यह किसने कहा है कि पाठ्यचर्या में वे समस्त अनुभव निहित होते है जिनकों विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लिया जाता है?
3. पाठ्यचर्या में मुख्यतः कितने प्रकार की क्रियाएं निहित मानी जाती है उनके नाम लिखिए ?
4. पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु में प्रकृति के संदर्भ में क्या अन्तर होता है?
5. पाठ्यचर्या के किन्हीं तीन आधारों का नाम लिखिए?

1.4 पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया एवं इसके सोपान

पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से संगठित किया जाता है जिसमें अधिगमकर्ता की अवस्था व परिपक्वता के अनुकूल विषय, विषयवस्तु, अधिगम अनुभवों, सामग्री, व्यूहरचना आदि को प्रभावी रूप में आयोजित एवं नियोजित किया जाता है। पाठ्यचर्या विकास पाठ्यचर्या सुधार, संशोधन एवं परिमार्जन की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में विभिन्न उपागमों के अनुप्रयोगों के माध्यम से इसका विकास किया जाता है। इस प्रक्रिया को संक्षिप्त में नीचे प्रदर्शित चित्र द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है-

\

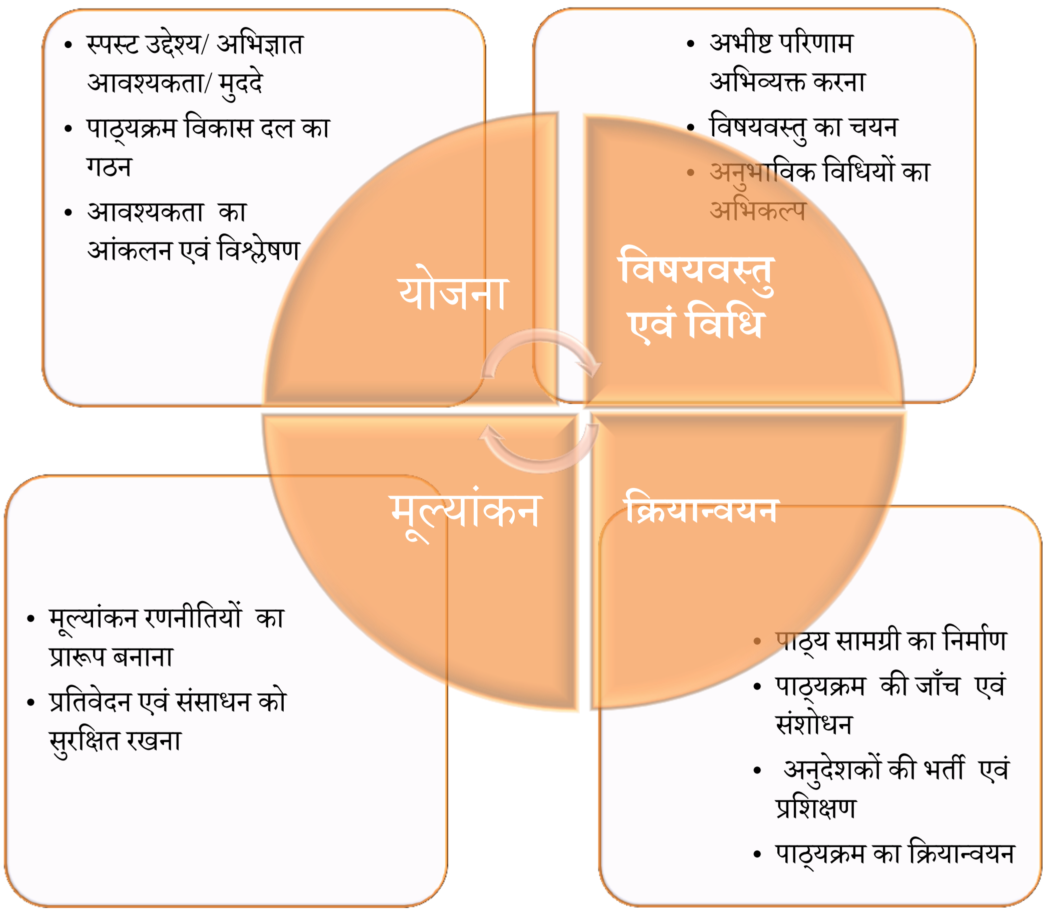

पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया व इसके सोपान

पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के चार मुख्य सोपान माने जाते है जोकि निम्न है-

1. **योजना:** इस चरण या सोपान में पाठ्यचर्या से सम्बंधित विभिन्न विकास चरणों का चयन एवं निर्धारण किया जाता है। इस चरण में शामिल है-

(i) **अभिज्ञात विषय/ समस्या/ आवश्यकता:** पाठ्यचर्या विकास की आवश्यकता सामान्यत: एक मुख्य विषय या समस्या या आवश्यकता के रूप में निश्चित उद्देश्यों को लेकर उभरती है। इस सोपान में कुछ ऐसे प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है जोकि पाठ्यचर्या विकास दल के सदस्यों को मार्गदर्शित करते है जैसे- आवश्यकता/ विषय को स्पस्ट रूप से

परिभाषित करना तथा उसकों एक निश्चयात्मक कथन के रूप अभिव्यक्त करना आदि। इसमें मुददे/ आवश्यकता/ विषय को वृहद् रूप में अभिज्ञात किया जाता है तथा उसके क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है कि पाठ्यचर्या में क्या-क्या शामिल किया जाएगा।

(ii) **पाठ्यचर्या विकास दल का गठन:** अभिज्ञात विषय/ समस्या/ आवश्यकता के मुद्दों की प्रकृति एवं क्षेत्र के निर्धारण के पश्चात पाठ्यचर्या विकास दल का गठन एवं उसके सदस्यों का चयन किया जाता है। इस सोपन में निम्न कार्य समाहित रहते है १- दल के सदस्यों की भूमिकाएं एवं कार्य २- पाठ्यचर्या विकास दल के सदस्यों के चयन की प्रक्रिया और ३- सहयोग एवं सामूहिक कार्य के सिद्धांत। इस चरण में यह अपेक्षाएं सन्नहित रहती है कि दल के सदस्य पाठ्यचर्या से सम्बंधित विभिन्न क्षेत्रों एवं पाठ्य सामग्री के विषय में विशेषज्ञता को हासिल करें तथा एक प्रभावी दल के रूप में कार्य करे।

(iii) **आवश्कता आंकलन एवं विश्लेषण :** आवश्यकता आकलन प्रक्रिया के दो चरण माने जाते है। प्रथम चरण में आवश्यकता आंकलन के संचालन से सम्बंधित प्रक्रियाएं आती है। इस प्रक्रिया में उद्देश्यों, लक्ष्यों एवं आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में अभिज्ञात मुद्दों या विषयों से सम्बंधित विभिन्न तकनीकियों जोकि अधिगम के सापेक्ष हो, का निर्धारण किया जाता है। इस तकनीकियों के माध्यम से ज्ञान, अभिवृति या दृष्टीकोण, अभ्यास सर्वेक्षण, केन्द्रित समूह और वातावरणीय पहलुओं के क्रमवीक्षण आदि से सम्बंधित सूचानों को संकलित किया जाता है।
आवश्यकता आंकलन के दूसरे चरण अर्थात विश्लेषण प्रक्रिया के अंतर्गत विभिन्न तकनीकियों से प्राप्त प्रदत्त एवं सूचना के रूप एकत्रित परिणामों को वर्णित किया जाता है। इस प्रक्रिया में ज्ञान और अभ्यास बीच के अन्तर को स्पस्ट करने वाले तरीकों, प्रदत्तों से उभरने वाली प्रवृतियों, आवश्यकताओं को वरीयता देने की प्रक्रिया एवं केन्द्रित समूह के विशेषताओं की पहचान आदि क्रियाएं निहित रहती है।

2. **विषयवस्तु एवं विधियाँ :** इस सोपान के अंतर्गत अभीष्ट परिणामों को निर्धारित किया जाता है जैसे पाठ्यचर्या की गतिविधियों में भाग लेने पर क्या सिखाया जाएगा, क्या सीखा जा सकेंगा एवं कैसे सिखाया जाएगा। इस सोपान में निम्न चरण उपयोग में लाए जाते है-

(i) **अभीष्ट परिणाम अभिव्यक्त करना:** इस सोपान में यदि आवश्यक समझा जाता है तो विषय/ मुददे को परिष्कृत एवं पुर्नस्थापित किया जाता है और अभीष्ट परिणामों या शैक्षिक उद्देश्यों का विकास किया जाता है। एक अभीष्ट परिणाम यह स्पस्ट करता है कि विद्यार्थी पाठ्यचर्या की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के परिणामस्वरूप ज्ञान और कौशल की किन विधाओं में कुशल एवं सक्षम होगा। इस चरण के अंतर्गत अभीष्ट परिणामों को परिभाषित किया जाता है, अभीष्ट परिणामों के घटकों का निर्धारण किया जाता है, अभीष्ट परिणामों के उदाहरणों को उल्लखित किया जाता है और सीखने के व्यवहारों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, आदि क्रियाएं सम्पन्न की जाती है।

(ii) **विषयवस्तु चयन:** इस चरण में पाठ्यचर्या से सम्बंधित विषयवस्तु का चयन किया जाता है। विषयवस्तु के चयन की प्रक्रिया तीन स्तरों पर की जाती है। प्रथम स्तर का संबंध विषयवस्तु के क्षेत्र से सम्बंधित संकल्पनाओं के चयन तथा स्पस्तीकरण से है। दूसरे स्तर पर उन आधारभूत तथ्यों तथा संकल्पनाओं का चयन किया जाता है जो विषय विशेष में अन्य तथ्यों तथा संकल्पनाओं के सहयोग से विषय ज्ञान का प्रारूप निर्मित करती है। तीसरे स्तर पर विषयवस्तु एकांश को सम्बंधित आधारभूत तथ्य या संकल्पना के साथ ही पाठ्यचर्या के उद्देश्यों से भी समायोजित किया जाता है।

(iii) **अनुभाविक विधियों का अभिकल्प:** विषयवस्तु के चयन के पश्चात अनुभाविक विधियों का अभिकल्प तैयार किया जाता है। इस चरण में अधिगम हेतु समुचित उद्देश्य प्राप्त करने में सहयोग देने वाली गतिविधियों को अभिकल्पित किया जाता है। एक अनुभवात्मक प्रतिमान एवं उसके घटकों (अनुभव, अनुभूति, प्रक्रिया, सामान्यीकरण एवं अनुप्रयोग आदि) की चर्चा इस चरण में की जाती है।

3. **क्रियान्वयन:** इस सोपान के अंतर्गत चार चरणों निहित माने जाते है जोकि निम्न है-

(i) **पाठ्यचर्या सामग्री का निर्माण:** पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया में जब एक बार विषयवस्तु और अनुभाविक विधियों से सम्बंधित आपसी स्वीकृति हो जाती है तब वास्तविक रूप में पाठ्यचर्या तैयार या बनाने का कार्य शुरू होता है। इस चरण के अंतर्गत उपलब्ध विषयवस्तुओं में से मुख्य सामग्री खोजने एवं मूल्यांकन के सुझाव, मूल्यांकन कसौटियों को निश्चित करने एवं पाठ्यचर्या सामग्री तैयार या बनाने के लिए सुझाव या निर्देश आदि से सम्बन्धित क्रियाएं संपन्न की जाती है।

(ii) **पाठ्यचर्या की जाँच एवं संशोधन:** इस चरण में पाठ्यचर्या से सम्बंधित विषयवस्तु के परीक्षण व जाँच की प्रक्रिया साथ ही साथ संरचनात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया के माध्यम से तैयार हो रहे पाठ्यचर्या की कमियों को दूर किया जाता है। पाठ्यचर्या के आंकलन व मूल्यांकन हेतु एक मूल्यांकन प्रारूप को भी प्रयोग में लाया जाता है।

(iii) **अनुदेशकों का चयन एवं प्रशिक्षण:** इस चरण के अंतर्गत पाठ्यचर्या को क्रियान्वित करने के लिए समुचित एवं योग्य अनुदेशकों को चयनित किया जाता है। इसके पश्चात पाठ्यचर्या से सम्बंधित आवश्यक दिशा-निर्देश व अपेक्षित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। प्रशिक्षण का उद्देश्य क्रियान्वयन को सरल, सुगम एवं प्रभावी बनाना होता है।

(iv) **पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन**: इस चरण में एक नए विकसित पाठ्यचर्या के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए योजनाओं को अन्तिम स्वरुप दिया जाता है। इसके लिए रणनीतियों एवं पाठ्यचर्या के उपयोग से संबधित पक्षों की चर्चा की जाती है एवं इनका क्रियान्वयन किया जाता है।

4. मूल्यांकन

(i) **मूल्यांकन रणनीतियों का प्रारूप बनाना:** मूल्यांकन पाठ्यचर्या विकास प्रतिमान के चरण में एक विशेष सोपान है। पाठ्यचर्या विकास की अवधि में मूल्यांकन हेतु सामान्यत: संरचनात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन प्रक्रिया अनुप्रयोग में लायी जाती है। पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया अवधि के समय संरचनात्मक मूल्यांकन किया जाता है जिसके द्वारा पाठ्यचर्या का आवश्यकता आधारित आंकलन एवं पूर्ण होने से पूर्व जाँच एवं परीक्षण की प्रक्रिया अपनायी जाती है। योगात्मक मूल्यांकन की भूमिका पाठ्यचर्या परिणामों को प्रतिवेदित करने एवं मापन पैमाने पर अनुप्रयुक्तता देखने में है अर्थात निश्चित की गई कसौटियों के आधार पर पाठ्यचर्या की वांछनीयता का निर्धारण किया जाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत पाठ्यचर्या के सभी आयामों से सम्बंधित वैध एवं विश्वसनीय जानकारी या सूचना प्राप्त करके सामान्य रणनीतियों से पुर्नमूल्यांकन कर पाठ्यचर्या की उपादेयता को देखते है। योगात्मक मूल्यांकन हेतु प्रश्नों की श्रृखला का प्रारूप, आवश्यक दिशा-निर्देशों व विशेषज्ञ सुझावों आदि की सहायता ली जाती है।

(ii) **प्रतिवेदन एवं संसाधन को सुरक्षित रखना:** यह चरण पाठ्यचर्या विकास का अन्तिम पद है जहाँ पर पाठ्यचर्या को पूर्ण रूप से तैयार करके उन लोगों के पास तक प्रेषित करना जो इसको अनुप्रयोग में लाएगें। इस चरण में पाठ्यचर्या के मुख्य शेयरधारकों को क्या और कैसे प्रतिवेदित करना है, का सुझाव एवं विशेष रूप से वित्तपोषण व नीति निर्धारक नियंताओं के लिए सुझाव रखे जाते है और अतिरिक्त प्रोग्रामिंग के लिए संसाधनों को सुरक्षित करने सम्बन्धी विवरणों की भी चर्चा निहित रहती है।

1.5. पाठ्यचर्या के मुख्य उपागम

उपागम अधिगम की प्रकृति के संदर्भ में सिद्धांतों, विश्वासों या विचारों का एक समूह है जिसके प्रबुद्ध दृष्टिकोण के आधार पर पाठ्यचर्या विकास की अवधारणा रखी जाती है। पाठ्यचर्या विकास करते समय मानव और उसके जीवन से सम्बंधित विविध पक्षों एवं अपेक्षित आवश्यकताओं के आधारों पर ही एक योजना का निर्माण किया किया जाता है। इन विविध पक्षों की भूमिका पाठ्यचर्या विकास में एक समान न होकर आवश्कताओं और अपेक्षाओं पर आधारित होती है। इन पक्षों के अंतर्गत निम्न पक्ष रखे जाते है जैसे- विद्यार्थी, सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन, स्थिति व आवश्यकताएं, आर्थिक स्थिति एवं अपेक्षाएं, अधिगम के सिद्धांत, विषय-वस्तु का स्वरुप, नियामक संस्था व विद्यालय संगठन एवं निर्माण की कसौटियों एवं मानदंड आदि।

उपरोक्त पक्षों के अतिरिक्त अन्य पक्ष भी है जोकि अपने आप में उतने ही महत्वपूर्ण है जितने की अन्य। राज्य व समाज की आवश्यकता के अनुरूप निश्चित व निर्धारित कसौटियों एवं मानदंडों के आधार पर पाठ्यचर्या का निर्माण किया जाता है। पाठ्यचर्या विकास के कई उपागम है जिनमें से केवल तीन उपागमों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

i. **संरचना उपागम -** यह उपागम इस आधारभूत मान्यता में विश्वास करता है कि प्रत्येक विषय की अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है। यह संरचना किसी विषय की विषय सामग्री के व्यवस्थित एवं संगठित स्वरुप और इस विषयवस्तु के विभिन्न आयामों या घटकों के मध्य स्पस्ट रु से परिलक्षित होती है। जब तक विद्यार्थी किसी विषय की संरचना को भलीभांति नहीं समझ लेता है तब तक किसी भी विषय के विभिन्न पक्षों व अन्तर्निहित घटकों को सुस्पस्ट रूप से नहीं समझ पता है। विद्यार्थियों में सृजनात्मक शक्तियों का विकास करने एवं सूझ व समझ को विकसित करने के लिए यह उपागम अत्यंत सहायक माना जाता है तथा विद्यार्थियों में स्वतन्त्र कार्य करने व अभिव्यक्त योग्यताओं की विकास में सहायता करता है।

पाठ्यचर्या शिक्षा का केन्द्रीय स्थल है, जिसके माध्यम से शिक्षक और विद्यार्थी के मध्य अधिगम अनुभवों को साझा करते है। संरचनात्मक पाठ्यचर्या में इन बिन्दुओं का वर्णन रहता है कि पाठ्यचर्या कैसे विकसित किया जाए, इसमें क्या रखा जाए, कैसे शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए एवं कैसे विद्यार्थियों का मूल्यांकन किया जाए आदि। संरचना उपागम के अंतर्गत तीन प्रमुख चरण अपनाए जाते है-विषयवस्तु विश्लेषण, डिज़ाइन एवं मूल्यांकन का विकास। यह उपागम न्यूनतम आवश्यकताओं की ओर संकेत करता है। इस उपागम के माध्यम से विषयवस्तु का नियोजन व संयोजन पर आधारित सामग्री की संरचना तर्क एवं बौद्धिक कसौटियों के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

ii. **मानवतावादी उपागम -** मानवतावादी उपागम किसी विषय क्षेत्र में अधिगमित या अर्जित की गई संरचना, विषयवस्तु, संकल्पनाओं एवं सिद्धांतों का व्यवहारात्मक परिस्थितियों में अनुप्रयोग करने से सम्बंधित है। इस उपागम की आधारभूत मान्यता है कि अधिगम एवं शिक्षण का मुख्य ध्येय है कि विद्यार्थियों के द्वारा विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों के माध्यम से अधिगमित या अर्जित ज्ञान व कौशल का नवीन परिस्थितियों में अनुप्रयोग करने की योग्यताओं का विकास करना है। इस उपागम में विद्यार्थी को ज्ञात सन्दर्भों के माध्यम से अज्ञात सन्दर्भों की ओर ले जाया जाता है। इस उपागम में अभिप्रेरणा के माध्यम से विद्यार्थियों के द्वारा वांछित ध्येय प्राप्त किए जाने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें शिक्षण प्रक्रिया को आनंददायक बनाने का प्रयास किया जाता है। इस उपागम में मानवीय पक्षों पर अधिक बल दिया जाता है इस कारण इसे मानवतावादी उपागम कहा जाता है।

iii. **प्रक्रिया उपागम-** इस उपागम में संरचनागत प्रक्रियाओं पर अधिक प्रदान की जाती है जो विद्यार्थियों के लिए किसी विषय या विषयवस्तु की संरचनागत विशेषताओं या विशिष्टताओं को जानने या खोजने या समझने में अति सहायक होता है। किसी भी विषय क्षेत्र से सम्बंधित विषयवस्तु का नियोजन व संयोजन के फलस्वरूप विकसित व व्यवस्थित संगठन एक निश्चित विचारधारा पर तर्कपूर्ण ढंग से तैयार किया जाता है। इसमें यह अपेक्षाएं निहित रहती है कि यदि विद्यार्थी विषय या विषयवस्तु से सम्बंधित किसी ज्ञान सामग्री की खोज या अन्वेषण करना चाहता है तो वह इस उपागम के माध्यम से इतना सक्षम बन जाता है कि वह ऐसा कर सकता है। इस

उपागम में निहित सभी प्रक्रियाओं में से प्रत्येक का अपना साधन मूल्य होता है। प्रक्रियाएं ज्ञान के साधन मूल्य के साथ-साथ पाठ्यचर्या के अंतिम उद्देश्य को स्वयं में समाहित रखती है। इस उपागम के अंतर्गत विषयवस्तु की सहायता से मानवीय गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इस उपागम में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

iv. **पाठ्यचर्या विकास का सामान्य प्रतिमान -** शिक्षा के विभिन्न आधारों पर जैसे- उद्देश्यों, विषयवस्तु, प्रक्रियाओं एवं परिस्थितियों के आधार पर, अनेकों प्रतिमानों का विकास किया गया है और पाठ्यचर्या विकास का प्रत्येक प्रतिमान अपना महत्व व विशिष्टतारखता है। विभिन्न प्रतिमानों में व्याप्त अन्तर को समाविष्ट करके शिक्षकों व अन्य पक्षों के सहयोग से आवश्यकता अनुरूप एक सामान्य आधार पर पाठ्यचर्या विकास का प्रयास किया गया। इसे ही पाठ्यचर्या का सामान्य प्रतिमान कहा जाता है। यह किसी विशिष्ट सिद्धांत पर आधारित न होकर एक सामान्य अवधारणा पर आधारित है। इसकी सामान्य विशिष्टताएं निम्न है-

- शिक्षकों एवं पाठ्यचर्या निर्मित करने वाले दल के द्वारा पाठ्यचर्या के विभिन्न के पक्षों एवं क्षेत्रों का सर्वेक्षण तथा उपलब्ध साधनों व संसाधनों का आंकलन करना।
- शैक्षिक उद्देश्यों का स्पस्ट परिभाषिकरण एवं निर्धारण करना।
- उद्देश्यों के सापेक्ष पाठ्य विषयों, पाठ्यवस्तु का चयन एवं निर्माण करना।
- पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन से पूर्व शिक्षकों, शिक्षाविदों एवं पाठ्यचर्या निर्माण कार्यदल द्वारा विचारगोष्ठियों एवं कार्यगोष्ठियों का आयोजन करना।
- पाठ्यचर्या की पाठ्यवस्तु का निरीक्षण एवं परीक्षण हेतु विद्यालय स्तर पर पूर्व परीक्षण।
- पाठ्यवस्तु के निरीक्षण एवं परीक्षण के आधार पर पाठ्य वस्तु व सामग्री का मूल्यांकन एवं आवश्यक संशोधन व परिमार्जन करना।
- अपेक्षित होने पर पाठ्यचर्या का व्यापक स्तर पर परीक्षण, मूल्यांकन एवं आवश्यक संशोधन व परिमार्जन किया जाना चाहिए।
- विकसित पाठ्यचर्या सामग्री का प्रकाशन तथा प्रसार एवं इसके समुचित उपयोग के लिए शिक्षकों का उन्मुखीकरण या सेवारत प्रशिक्षण का आयोजन करना।
- पाठ्यचर्या की सामग्री व विद्यार्थी अधिगम परिणामों की जाँच व परख हेतु मापन, मूल्यांकन एवं आंकलन की तर्कसंगत कसौटियों का निर्धारण करना। आदि

इसके अतिरिक्त अन्य भी पाठ्यचर्या के प्रतिमान है जो अपनी-अपनी विशिष्टताओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है जैसे- उद्देश्य प्रतिमान, टाइलर प्रतिमान, व्हीलर प्रतिमान, केरर प्रतिमान, टाबा प्रतिमान आदि। प्रत्येक प्रतिमान ने अपनी विवेचना एवं विशिष्टता के आधार पर पाठ्यचर्या विकास का दृष्टिकोण अपनाया है।

1.6 भारत में पाठ्यचर्या विकास का प्रारूप

भारत में पाठ्यचर्या विकास का कोई एक निश्चित व सामान्य प्रारूप अभी तक विकसित नहीं हो पाया है किन्तु पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में निश्चित आधारों एवं सोपानों का अनुपालन किया जाता है। शिक्षा को समवर्ती सूची में रखे जाने के कारण इससे सम्बंधित उत्तरदायित्वों का अनुपालन केन्द्र व राज्य द्वारा अपने-अपने परिप्रेक्ष्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर किया जाता है। इसीकारण केन्द्र व राज्य तथा विभिन्न राज्यों के एक स्तर के पाठ्यचर्या में बहुत विभिन्नता देखने को मिलती है। भारत में प्रचलित पाठ्यचर्या विकास के प्रतिरूप व प्रारूप को नीचे प्रदर्शित रेखीय चित्र से भली-भांति समझा जा सकता है-

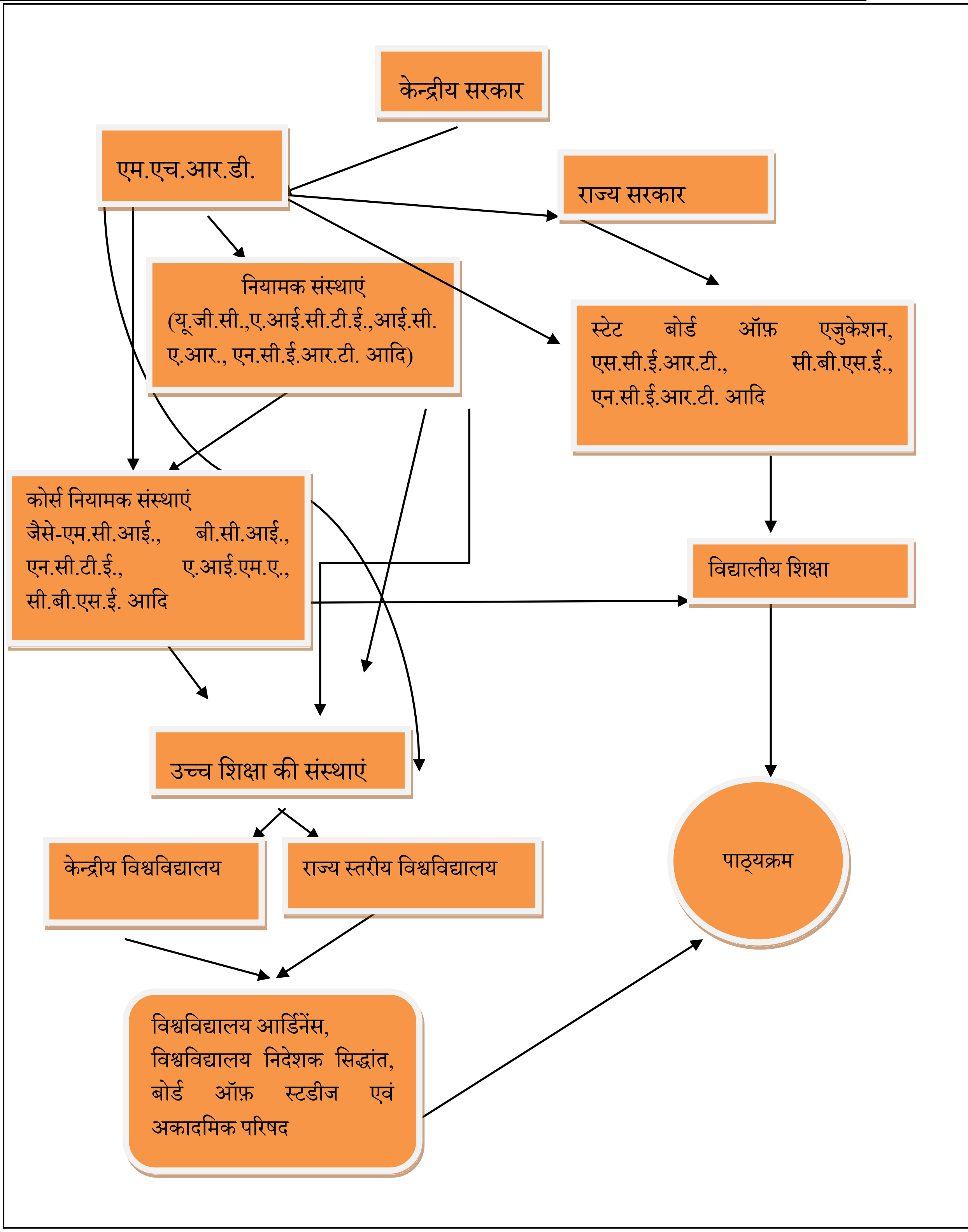
केन्द्रीय सरकार
एम.एच.आर.डी.
राज्य सरकार
नियामक संस्थाएं (यू.जी.सी.,ए.आई.सी.टी.ई.,आई.सी.ए.आर., एन.सी.ई.आर.टी. आदि)
स्टेट बोर्ड ऑफ़ एजुकेशन, एस.सी.ई.आर.टी., सी.बी.एस.ई., एन.सी.ई.आर.टी. आदि
कोर्स नियामक संस्थाएं जैसे-एम.सी.आई., बी.सी.आई., एन.सी.टी.ई., ए.आई.एम.ए., सी.बी.एस.ई. आदि
विद्यालीय शिक्षा
उच्च शिक्षा की संस्थाएं
केन्द्रीय विश्वविद्यालय
राज्य स्तरीय विश्वविद्यालय
पाठ्यक्रम
विश्वविद्यालय आर्डिनेंस, विश्वविद्यालय निदेशक सिद्धांत, बोर्ड ऑफ़ स्टडीज एवं अकादमिक परिषद

1.7 पाठ्यचर्या की आवश्यकता

पाठ्यचर्या किसी भी शिक्षण संस्था एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का हृदय है क्योंकि इसके आभाव में विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। औपचारिक शिक्षा में इसका अत्यंत महत्व होने के साथ-२ भौतिक और अभौतिक परिदृश्य में होने वाले परिवर्तनों को साक्षात् कराने में पाठ्यचर्या एक गत्यात्मक प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है। पाठ्यचर्या विस्तृत आशय में केवल विद्यालय में ही नहीं बल्कि समाज में व्यक्तियों के कुल सीखने के अनुभवों को संदर्भित करता है।

शिक्षा एवं शैक्षणिक व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन, सुधार व परिमार्जन लाने हेतु पाठ्यचर्या एक उद्देश्यपूर्ण, प्रगतिशील एवं व्यवस्थित माध्यम है। पाठ्यचर्या समाज एवं राज्य की आवश्यकताओं को पूर्ति करने एवं व्यक्तियों को निश्चित दिशा की ओर प्रवृत करने का सशक्त तरीका है जिसके माध्यम से कोई देश या राज्य या समाज विश्व में हो रहे बदलाव व विकास की अविरलता को व्यक्तियों तक पहुंचाने व जागरूक बनाने के साथ-साथ उन्हें समय के परिप्रेक्ष्य में उपयुक्त बनाने का प्रयास करता है।

प्रश्न यह है कि पाठ्यचर्या क्यों बनाया जाए या निर्मित किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि बिना पाठ्यचर्या के शिक्षा के लक्ष्यों को सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से प्राप्त कर पाना असंभव है एवं विद्यार्थी व शिक्षक इस असमंजस में पड़ सकते है कि कैसे शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाए और किन विषयों व क्रियाओं का आयोजन व नियोजन किया जाए। पाठ्यचर्या के माध्यम से किसी स्तर विशेष के लिए निर्धारित उद्देश्यों के अनुकूल विभिन्न विषयों, ज्ञान व क्रियाओं का क्रमबद्ध व व्यवस्थित रूप में नियोजन किया जाता है। किसी भी राष्ट्र का पाठ्यचर्या उस राष्ट्र के महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है जिसे राष्ट्र पाठ्यचर्या के माध्यम से विद्यालय या विश्वविद्यालय तक के विद्यार्थियों में पहुँचाने का प्रयास करता है। पाठ्यचर्या में उन विषयों, कौशल और क्षमताओं को समाहित किया जाता है जोकि भावी पीढ़ी या बच्चों को वयस्क बनने पर उनके लिए अपेक्षित होता है।एक प्रभावी पाठ्यचर्या शिक्षक, शिक्षार्थी, प्रशासक और सामुदायिक हितधारकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए एक सामान्य योजना और संरचना प्रदान करता है। पाठ्यचर्या अधिगम के परिणामों, निश्चित मानदंडों व मानकों और मूल दक्षताओं को निर्धारित करता है जो विद्यार्थी को अपने अकादमिक विकासक्रम में एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाने से पहले प्रदर्शित करना होता है।

यदि हम प्राचीन काल के समय पर विचार करे तो यह तथ्य उभर कर आता है कि उस समय के लोग भी अपनी नई पीढ़ी को आवश्यक ज्ञान एवं कौशल प्रदान करते थे जिसमें वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने का हुनर सीखते थे जैसे- मछली पकड़ना, जानवरों का शिकार करना आदि। इस समय न तो किसी औपचारिक शिक्षा का विधान था और न ही कोई निश्चित पाठ्यचर्या था फिरभी नई पीढ़ी ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक ज्ञान एवं कौशल को अर्जन किया और पुरानीं पीढ़ी के लोगों ने उनके सीखने में अपेक्षित सहायता करते थे। अनौपचारिक रूप में यह माना जा सकता है कि उस समय भी लोगो के बीच एक पाठ्यचर्या प्रचलन में था जिसका मुख्य ध्येय स्वयं को जीवित बनाए रखने के

लिए के अपेक्षित ज्ञान व कौशल में दक्ष बनाने से था और यही उस समय की शिक्षा का उद्देश्य रहा होगा। हालांकि विकासक्रम की अविरल धारा में मानवीय खोजों और आविष्कारों के फलस्वरूप प्राचीन काल के लोगो की जीवन शैली धीरे-धीरे बेहतर व विकसित होती गई और नतीजन शिक्षा आगे चलकर औपचारिक बन गई तथा एक निश्चित पाठ्यचर्या का स्वरुप भी विकसित हुआ जोकि धीरे-धीरे व्यवस्थित, योजनाबद्ध, उद्देश्यपूर्ण और प्रगतिशील होता गया।

पाठ्यचर्या के विकास का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसमें न केवल विद्यालय, शिक्षार्थी और शिक्षक के विषय अपितु सामान्य रूप से समाज के विकास के विषय भी समाहित रहते है। वर्तमान में अर्थव्यवस्थाएं ज्ञान आधारित हो गई है और किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने में शिक्षा का पाठ्यचर्या एक महत्वपूर्ण भूमिका को निभाता है। यह तत्कालिक विश्व की वस्तुस्थिति तथा समस्याओं का संभावित जवाब या समाधान प्रदान करने का प्रयास करता है जैसेकि पर्यावरण की स्थिति, राजनीति, सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्यों, गरीबी, भुखमरी, जलवायु परिवर्तन व टिकाऊ विकास आदि जैसे अनेकों मुददे।

1.8 पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में प्रतिभागिता

पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित प्रतिभागियों की प्रतिभागिता का कोई एक सामान्य प्रारूप नहीं है और न ही अंशधारिता का कोई निश्चयात्मक नियम है फिरभी विभिन्न नियामक संस्थाओं द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में पाठ्यचर्या विकास का एक निर्धारित प्रारूप अपनाने का प्रयास किया जाता है। विद्यालीय शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न नियामक संस्थाओं के दिशा-निर्देशों का अनुपालन करते हुए पाठ्यचर्या विकास का प्रयास किया जाता है। विश्वविद्यालय स्तर पर विश्वविद्यालय अपने निर्धारित दिशा-निर्देशों एवं केन्द्र या राज्य के मानदंडो के अनुरूप पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया को अपनाते जाता है। पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में सामान्य रूप निम्न व्यक्तियों की सहभागिता व प्रतिभागिता रहती है-

- पाठ्यचर्या समिति के अध्यक्ष, सदस्य एवं प्रारूपकार
- विषय विशेषज्ञ
- पाठ्यचर्या विशेषज्ञ एवं सलाहकार
- सामान्य प्रशासक
- शैक्षिक प्रशासक
- शिक्षक
- अनुसंधानकर्ताओं
- समुदाय

- माता-पिता
- शिक्षार्थी

अभ्यास प्रश्न

6. पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया को कितने सोपानों में विभाजित किया जाता है?
7. किस उपागम की यह आधारभूत मान्यता है कि प्रत्येक विषय की अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है?
8. पाठ्यचर्या के किस उपागम में विद्यार्थी को ज्ञात सन्दर्भों के माध्यम से अज्ञात सन्दर्भों की ओर ले जाया जाता है?
9. किसी भी शिक्षण संस्था एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का हृदय किसे कहा जाता है?
10. पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में विद्यालय स्तर पर किन दो हितधारकों की मुख्य भूमिका होती है?

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत पाठ्यचर्या की सामान्य अवधारणा, उसके अर्थ, पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु के अन्तर की व्याख्या की गई है। इसमें पाठ्यचर्या के विभिन्न आधारों तथा पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में अपनाए जाने वाले सोपानों की चर्चा की गई है। इस इकाई में पाठ्यचर्या कुछ प्रमुख उपागमों का वर्णन किया गया है और भारत में सामान्य रूप से पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया तथा उसमें प्रतिभाग करने वाले हितधारकों का वर्णन किया गया है एवं पाठ्यचर्या बनाए जाने की आवश्यकता को विवेचित किया गया है।

1.10 शब्दावली

1. **पाठ्यचर्या :** पाठ्यचर्या से आशय उन साधनों एवं सामग्रियों से है जिनके साथ विद्यार्थी इस प्रयोजन से अंतक्रिया करते है कि सुस्पस्ट शैक्षिक परिणामों की प्राप्ति की जा सके।
2. **उपागम:** इससे तात्पर्य शिक्षण की सम्पूर्ण अनुदेशानात्मक प्रक्रिया से है जोकि किसी निश्चित विचारधारा या दर्शन पर आधारित होता है।
3. **पाठ्यवस्तु:** इससे आशय किसी एक शैक्षणिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को प्रदान किए जाने वाले शिक्षण एवं क्रिया-कलापों के विषय में निश्चित रुपरेखा प्रस्तुत करने से है।

4. **पाठ्यचर्या के आधार:** इससे आशय उन प्रभावों से है जो किसी समाज की शिक्षा के स्वरुप एवं दिशा का निर्धारण करते है।

1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. Currere
2. मुनरों
3. दो, पाठ्य एवं पाठ्येत्तर क्रियाएं
4. पाठ्यचर्या निर्देशात्मक होता है जबकि पाठ्यवस्तु वर्णनात्मक होती है
5. मनोवैज्ञानिक आधार, दार्शनिक आधार एवं वैज्ञानिक आधार
6. चार सोपानों में
7. संरचना उपागम
8. मानवतावादी उपागम
9. पाठ्यचर्या को
10. शिक्षक एवं शिक्षार्थी की

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Stenhouse, L. (1975) An Introduction to Curriculum Research and Development, Heinemann, Landon
2. Wheeler, D. K. (1988) Curriculum Process, University of London Press, London
3. Hussain, A., Dogar, A. H., Azeem, M. & Shakoor A. (2011) Evaluation of Curriculum Development Process, International Journal of Humanities and Social Science, Vol. 1 No. 14 P. 263-271
4. Agrawal, J. C. (1990) Curriculum Reforms in India: World Overview, Doaba House Book Sellers and Publishers, Delhi.
5. Chaudhary, G. K. & Kalia R. (2015) Development Curriculum and Teaching Models of Curriculum design for Teaching Institute, International Journal of Pyshical Education ,Sport and Health, Vol. 1 No. 4 p. 57-59

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यचर्या के अर्थ को स्पस्ट करते हुए इसकी सामान्य अवधारणा को स्पस्ट कीजिए?
2. पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु के अन्तर को स्पस्ट कीजिए?
3. पाठ्यचर्या के आधारों का उनके संभावित प्रभावों के आधार पर विवेचना कीजिए?
4. पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के सोपानों का वर्णन कीजिए?
5. पाठ्यचर्या उपागम को स्पस्ट करते हुए संरचना उपागम की व्याख्या कीजिए?
6. पाठ्यचर्या उपागम के सामान्य उपागम की चर्चा कीजिए?
7. पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया में शामिल होने वाले प्रतिभागियों का वर्णन कीजिए?
8. औपचारिक शिक्षा में पाठ्यचर्या के विधान की विवेचना कीजिए?

इकाई 2- छात्राध्यापकों को पाठ्यचर्या के निर्माण में 'राज्य की भूमिका क्या है तथा क्या निर्मित पाठ्यचर्या को कक्षा-कक्ष शिक्षण हेतु अध्यापकों को दिया सही है के उत्तर समझने योग्य बनाना

Enabling Student Teachers to Comprehend the Answers of the Questions-What is the Role of State in the Making of Curriculum and is it Correct to 'Give' the Curriculum to the Teachers for Class-room teaching.

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यचर्या निर्माण में राज्य की भूमिका
2.4 पाठ्यचर्या
2.5 पाठ्यचर्या अध्यापकों के लिए अनिवार्य
2.6 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005
2.7 स्कूली शिक्षा, शिक्षक और पाठ्यचर्या
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा राष्ट्रिय महत्व का विषय है-शिक्षा नीतियों में शिक्षा को राष्ट्रिय महत्व का विषय माना हुआ है और यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा द्वारा ही लोकतंत्र को सुदृढ़ किया जा सकता है, राष्ट्रिय एकता को

सुदृढ़ किया जा सकता है, उत्पादन में वृद्धि राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है, उत्पादन मैं वृद्धि और राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है और राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इसका आधुनिकीकरण किया जा सकता है। शिक्षा की व्यवस्था केंद्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। भारत एक गणतंत्र राज्य है। इसमें कुछ विशेष केवल केंद्र के अधीन और कुछ विषय केवल राज्य सरकारों के अधीन हैं। यद्यपि औपचारिक रूप से यह बौबिट की परिभाषा में दिखाई दिया है, रचनात्मक अनुभव के रूप में पाठ्यचर्या की चर्चा को जॉन डेवी के कार्य में भी देखा जा सकता है (जो महत्वपूर्ण मामलों पर बौबिट से असहमत थे). हालांकि बौबिट और डेवी की "पाठ्यक्रम" के विषय में आदर्शवादी समझ शब्द के वर्तमान प्रतिबंधित उपयोगों से अलग है, पाठ्यक्रम लेखक और शोधकर्ता आम तौर पर इसे पाठ्यक्रम की एक समान तथ्यात्मक समझ के रूप में देखते हैं। विज्ञान के शिक्षण में इस तरह की तब्दीली की जनि चाहिए की यह हर बच्चे को अपने रोज के अनुभवों को जांचने और उनका विश्लेषण करने में सक्षम बनाएं। परिवेश सम्बन्धी सरोकारों और चिंताओं पर हर विषय में जोर दिए जाने की जरूरत हैं और यह ढेरों गतिविधियों और बाहरी दुनिया पर की गई परियोजनाओं के द्वारा होना चाहिए। इस प्रकार की परियोजनाओ के माध्यम से निकलने वाली सूचनाओं और समझ के आधार पर भारतीय पर्यावरण को लेकर एक सर्वसुलभ और पारदर्शी आकड़ा –संग्रह तैयार हो जाता है जो अत्यंत उपयोगी संसाधन साबित होगा । यदि विद्यार्थियों की परियोजनाये सुनियोजित हों तो उनसे ज्ञान सृजित होगा। बाल विज्ञान कांग्रेस की तर्ज पर एक सामाजिक आन्दोलन की काल्पना की जा सकती है जिससे पुरे देश में अन्वेशण की शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा जो बाद में पुरे दक्षिण एशिया में फैल सकता है ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई क अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. पाठ्यक्रम निर्माण में राज्यों की भूमिका को समझने में सक्षम होंगे।
2. स्कूली शिक्षा, शिक्षक और पाठ्यचर्या जैसे विषयों को जान पाएंगे।
3. पाठ्यचर्या अध्यापकों के लिए अनिवार्य है इसके वारे में जान पाएंगे ।

2.3 पाठ्यक्रम निर्माण में राज्यों की भूमिका

सरकार बदलते ही शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवाज उठती है। सांस्कृतिक मूल्यों में और अधिक ह्रास होता है, सामाजिक समता के स्थान पर वर्ग भेद बढ़ता है। धार्मिक सहिष्णुता के स्ताहन पर धार्मिक उन्माद बढ़ता है, और शैक्षिक अवसरों की समानता के स्ताहन पर शैक्षिक अवसरों में समानता बढती है । शिक्षा राष्ट्रिय महत्व का विषय है-शिक्षा नीतियों में शिक्षा को राष्ट्रिय महत्व का विषय माना हुआ है और यह

स्वीकार किया गया है कि शिक्षा द्वारा ही लोकतंत्र को सुदृढ़ किया जा सकता है, राष्ट्रिय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है, उत्पादन में वृद्धि राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है, उत्पादन मैं वृद्धि और राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है और राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इसका आधुनिकीकरण किया जा सकता है। शिक्षा की व्यवस्था केंद्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। भारत एक गणतंत्र राज्य है। इसमें कुछ विशेष केवल केंद्र के अधीन और कुछ विषय केवल राज्य सरकारों के अधीन हैं। इया शिक्षा नीति में शिक्षा की व्यवस्था करना केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त उतरदायित्व घोषित किया गया है। केंद्र के शैक्षिक उतरदायित्व हैं- राष्ट्रिय शिक्षा नीति का निर्माण करना, केन्द्रीय विश्वविधालयों और राष्ट्रिय महत्व की शिक्षा संस्थाओं का प्रवंध करना ,उच्च स्तर की विज्ञान एवं तकनिकी शिक्षा और अनुसन्धान का स्तर मान निश्चित करना, विदेशों में शैक्षिक एवं सांस्कृतिक समझोते करना, राज्यों को शैक्षिक नेत्रित्व प्रदान करना और उनके शैक्षिक कार्यक्रमों के सम्पादन हेतु आर्थिक सहायता देना। प्रान्तीय सरकारों के शैक्षिक उतरदायित्व हैं-केन्द्रीय शिक्षा नीति के अनुसार राज्य स्तर पर शिक्षा को,नियोजित करना , उसके लिए वित्त व्यवस्था करना ,शिक्षिक प्रशासनिक ढांचे पर नियन्त्रण रखना और शिक्षा के विभिन्न स्तरों की गुणवत्ता वनाये रखना।

शिक्षा पर केन्द्रीय बजट का ६% व्यय किया जायेगा- इस नीति में शिक्षा को राष्ट्रिय महत्व का विषय माना गया है। इसलिए केन्द्रीय बजट में ६% शिक्षा पर व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया है। दृष्टव्य है कि उस समय शिक्षा पर केन्द्रीय बजट का केवल २.९% ही व्यय किया जा रहा था। पाठ्यकरम निर्माण के सहभागिओं के अतिरिक्त राज्य शिक्षा विभाग, विभिन्न अनिसंधन संगठन एवं विशेष रूप सी स्थापित पाठ्यक्रम केंद्र भी पाठ्यक्रम विकाश के अभिकरण हैं। शिक्षा मुख्य रूप से राज्य का विषय है। तथा सभी राज्यों की अपनी कुछ स्थानीय आवश्यकताएं एवं आकांक्षाएं होती हैं। इसलिय राष्ट्रिय शिक्षा के समान कोर पाठ्यक्रम में भी स्थानीय मुद्दों को समाविष्ट करने का प्रावधान रखा गया है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण प्रक्रिया में राज्य शिक्षा विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वैसे भी पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु नार्थिक प्रवंध का भार राज्य सरकारों पर ही होता है। अत; राज्य शिक्षा विभाग के सहयोग के विना पाठ्यक्रम निर्माण संभव नही हो पाता है।

विभिन्न अनुसन्धान संगठनों द्वारा ही शैक्षिक कार्यक्रमों का सर्वेक्षण एवं मूल्याकन किया जाता रहता है । ये संगठन नवाचारों के प्रयोग की समीक्षा भी करते हैं। इसके साथ ही विभिन्न शोधों के निष्कर्षों से व्यक्तियों एवं समाज की आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं का भी ज्ञान होता है। जो पाठ्यक्रम निर्माण के लिए आत्यावाश्यक होते हैं। इस प्रकार अनुसन्धान संगठन पाठ्यक्रम निर्माण के अभिकरण के रूप में भी कार्य करते हैं।

वर्तमान समय में शिक्ल्षा के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है । भारत में राष्ट्रिय शिक्षा नीति, १९८६ में खुले शव्दों में स्वीकार किया गया है कि शिक्षा पर किया गया व्यय वर्तमान तथा भविष्य के लिए विनियोग है। अत: भारत में भी पाठ्यक्रम सुधर पर विशेष बल दिया जा रहा है। इसके लिए विभिन्न

स्तरों पर पाठ्यक्रम केन्द्रों की स्थापना की गई है। इन केन्द्रों का कार्य प्रचलित पाठ्यक्रमों का अध्ययन करके उनमें आवश्यक परिवर्तन करना तथा समयानुकूल नवीन पाठ्यक्रमों का निर्माण करना है NCERT में इसी उद्देश्य से अलग से 'पाठ्यक्रम विकास विभाग' की स्थापना की गई है। यह विभाग अपने दायित्वों की पूर्ती के लिया प्रयासरत भी है तथा इसके अच्छे परिणाम भी देखने को मिले हैं। अत; पाठ्यक्रम केंद्र पाठ्यक्रम निर्माण –प्रक्रिया में भुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा की व्यवस्था केंद्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त ________है।

2.4 पाठ्यक्रम

औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम (करिकुलम(विद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रदान किये जाने वाले पाठ्यक्रमों और उनकी सामग्री को कहते हैं। पाठ्यक्रम निर्देशात्मक होता है एवं अधिक सामान्य सिलेबस पर आधारित होता है जो केवल यह निर्दिष्ट करता है कि एक विशिष्ट ग्रेड या मानक प्राप्त करने के लिए किन विषयों को किस स्तर तक समझना आवश्यक है। । 9। 8 में इस विषय पर प्रकाशित प्रथम पुस्तक द *करिकुलम* में जॉन फ्रेंकलिन बौबिट ने कहा कि एक विचार के रूप में पाठ्यक्रम की जड़ें *रेस-कोर्स* के लिए लैटिन शब्द में है और पाठ्यक्रम का वर्णन ऐसे कार्यों एवं अनुभवों के रूप में किया है जिनके माध्यम से बच्चे अपेक्षित वयस्क के रूप में विकसित होते हैं ताकि *वयस्क समाज में सफलता प्राप्त* की जा सके. इसके अलावा, पाठ्यक्रम में केवल विद्यालय में होने वाले अनुभव ही नहीं बल्कि विद्यालय एवं उसके बाहर होने वाले गठन कार्य एवं अनुभव अपनी संपूर्णता में समाहित होते हैं; वे अनुभव जो अनियोजित और अनिर्दिष्ट रहे हैं और वे अनुभव भी जिन्हें समाज के वयस्क सदस्यों के उद्देश्यपूर्ण गठन की दिशा में जानबूझकर कर प्रदान किया गया है।

बौबिट के लिए पाठ्यक्रम एक सामाजिक इंजीनियरिंग का क्षेत्र है। उनके सांस्कृतिक अनुमान एवं सामाजिक परिभाषाओं के अनुसार उनके पाठ्यक्रम निर्माण के दो उल्लेखनीय लक्षण हैं:

1. वैज्ञानिक विशेषज्ञ अपने इस विशेष ज्ञान के आधार पर कि समाज के वयस्क सदस्यों में क्या *गुण होने चाहिए* एवं कौन से अनुभव ऐसे *गुण उत्पन्न करेंगे*, वे पाठ्यक्रमों का निर्माण करने हेतु योग्य होंगे तथा यही न्यायसंगत भी होगा और
2. पाठ्यक्रम को ऐसे कार्य-अनुभवों के रूप में परिभाषित है जो छात्र को अपेक्षित वयस्क बनने के लिए उसके पास होने चाहिए.

इसलिए, उन्होंने पाठ्यक्रम को लोगों के चरित्र का निर्माण करने वाले कार्यों एवं अनुभवों की ठोस वास्तविकता के स्थान पर एक आदर्श के रूप में परिभाषित किया है।बी पाठ्यक्रम संबंधित समकालीन विचार बौबिट के इन तत्वों को अस्वीकार करते हैं, परंतु इस आधार को यथावत रखते हैं कि पाठ्यक्रम अनुभवों का दौर है जो मानव को व्यक्ति बनाता है। पाठ्यक्रमों के माध्यम से वैयक्तिक गठन का व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर (अर्थात सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर) पर अध्ययन किया जाता है; उदाहरण के लिए पेशेवर गठन, ऐतिहासिक अनुभव के माध्यम से शैक्षिक अनुशासन). एक समूह का गठन उसके व्यक्तिगत प्रतिभागियों के गठन के साथ ही होता है। यद्यपि औपचारिक रूप से यह बौबिट की परिभाषा में दिखाई दिया है, रचनात्मक अनुभव के रूप में पाठ्यक्रम की चर्चा को जॉन डेवी के कार्य में भी देखा जा सकता है (जो महत्वपूर्ण मामलों पर बौबिट से असहमत थे). हालांकि बौबिट और डेवी की "पाठ्यक्रम" के विषय में आदर्शवादी समझ शब्द के वर्तमान प्रतिबंधित उपयोगों से अलग है, पाठ्यक्रम लेखक और शोधकर्ता आम तौर पर इसे पाठ्यक्रम की एक समान तथ्यात्मक समझ के रूप में देखते हैं।

अभ्यास प्रश्न

2. पाठ्यक्रम को ऐसे कार्य-अनुभवों के रूप में परिभाषित है जो छात्र को __________बनने के लिए उसके पास होने चाहिए।

2.5पाठ्यचर्या अध्यापकों के लिए अनिवार्य

यह तथ्य कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है ,इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या ,पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक शिक्षक को इस बात के लिये सक्षम बनाये कि वे बच्चो की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षायी अनुभव आयोजित करे ,ताकि सारे बच्चो को अवसर मिल पाये । शिक्षण का उद्देश्य बच्चे के सिखने की सहज इच्छा और युक्तियो को समृध्द करना होना चहिये । ज्ञान को सूचना से अलग करने की जरुरत है और शिक्षण को एक पेशेवर गतिविधि के रूप मे पहचानने की जरुरत है न कि तथ्यो के रटने और प्रसार के प्रशिक्षण के रूप में । सक्रिय गतिविधि के जरिये ही बच्चा अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है । इसलिये प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिये कि बच्चो को खुद को अभिव्यक्त करने में ,वस्तुयो का इस्तेमाल करने में ,अपने प्रकृतिक और सामाजिक परिवेश की खोजबीन करने में और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिले । अगर बच्चो,के कक्षा के अनुभवो को इस तरह आयोजित करना हो जिससे उन्हे ज्ञान सृजित करने का अवसर मिले तो इसके लिये स्कूल के विषयो और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों की फिर से संकल्पना की आवश्यकता होगी ।

स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों –भाषा ,गणित ,और समाज विज्ञान में –महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है। इस दृष्टी से कि शिक्षा आज की और भविष्य की जरूरतों के लिए ज्यादा प्रासंगिक बन सके और बच्चो को उस दबाव से मुक्त किया जा सके जो वे आज झेल रहे है। यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज इस बात की सिफारिश करता है कि विषयों के बीच की दीवारें नीची क्र दी जाये ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके और किसी चीज को समझने से मिलने वाली ख़ुशी हासिल हो सके। इसके साथ यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता ही ,जिनसे स्थानीय ज्ञान और पारम्परिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों के घर और समुदायिक परिवेश से जीवंत संबंध बनाने मे वाले स्फूर्तिदायक स्कूली माहौल को सुनिश्चित किया जा सके। भाषा में त्रिभाषा फार्मूले को लागु करने में फिर से प्रयास का सुझाव दिया गया है जिसमें आदिवासी भाषाओँ सहित बच्चो की मातृभूमि को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति देने पर जोर दिया है। प्रत्येक बच्चे में बहुभाषिक प्रवीणता विकसित करने के लिए भारतीय समाज के बहुभाषिक चरित्र को एक संसाधन के रूप में देखना चाहिए जिसमे अग्रेजी में प्रवीणता भी हासिल है यह तभी मुमकिन है जब भाषा की पुख्ता शिक्षाशास्त्र मातृभाषा के उपयोग पर आधारित हो। पढना ,लिखना और सुनना –ये क्रियाये पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रो में बच्चों की प्रगति में भूमिका निभाती हैं और इन्हें पाठ्यचर्या की योजना का आधार होना चाहिए। आरम्भिक कक्षाओं के पुरे दौर में पढने पर जोर देना जरुरी है जिससे हर बच्चे को स्कूली शिक्षा का ठोस आधार मिल सके।

गणित की शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे बच्चों के वे संसाधन समृद्ध हों चिंतन और तर्क में, अमुर्तनो की संकल्पना करने और उनका व्यवहार करने में ,समस्याओं को सूत्रबद्ध करने ओर सुलझाने में उनकी सहायता करें। उद्देश्यों का यह व्यापक फलक उस प्रासंगिक और अर्थपूर्ण गणित को पढ़ाकर तय किया जा सकता है जो बच्चों के अनुभवों में गुंथीं हुई ही। गणित में सफलता को हर बच्चे के अधिकार की तरह देखा जाना चाहिए। इसके लिए गणित के दायरे और विस्तृत करने की जरूरत है इस दुसरे विषयों से जोड़ने की जरुरत है। हर स्कूल को कंप्यूटर ,हार्डवेयर ,सोफ्टवेयर और कनेक्टिविटी मुहैया कराने जैसी ढांचागत चुनोतियों का सामना करने की जरुरत है।

विज्ञान के शिक्षण में इस तरह की तब्दीली की जनि चाहिए की यह हर बच्चे को अपने रोज के अनुभवों को जांचने और उनका विश्लेषण करने में सक्षम बनाएं। परिवेश सम्बन्धी सरोकारों और चिंताओं पर हर विषय में जोर दिए जाने की जरूरत हैं और यह ढेरों गतिविधियों और बाहरी दुनिया पर की गई परियोजनाओं के द्वारा होना चाहिए। इस प्रकार की परियोजनाओ के माध्यम से निकलने वाली सूचनाओं और समझ के आधार पर भारतीय पर्यावरण को लेकर एक सर्वसुलभ और पारदर्शी आकड़ा –संग्रह तैयार हो जाता है जो अत्यंत उपयोगी संसाधन साबित होगा। यदि विद्यार्थियों की परियोजनाये सुनियोजित हों तो उनसे ज्ञान सृजित होगा। बाल विज्ञान कांग्रेस की तर्ज पर एक सामाजिक आन्दोलन की काल्पना की जा सकती है जिससे पुरे देश में अन्वेशण की शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा जो बाद में पुरे दक्षिण एशिया में फैल सकता है।

सामाजिक विज्ञान में पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज द्वारा प्रस्तावित उपागम ज्ञान के क्षेत्रो की विशिष्ट सीमाओं को पहचानता है और साथ ही पानी जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों के लिए समाकलन पर जोर देता है। हाशिए पर ढकेल दिए गए समूहों की दृष्टी से समाज विज्ञान के अध्ययन का प्रस्ताव करते हुए नजरिये में एक पूरी तब्दीली की सिफारिश की गई है। सामाजिक विज्ञान के सारे पहलुओ में जेंडर के सन्दर्भ में न्याय और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के मसलों को लेकर जागरूकता तथा अल्पसंख्यक संवेदनाशीलता के प्रति सजकता होनी चाहिए। नागरिकशास्त्र को राजनीति विज्ञान के रूप में ढालना चाहिये और बच्चो के अतीत और नागरिकता अस्मिता की अवधारणा पर इतिहास के प्रभाव के महत्व को पहचानना चाहिए।

पाठ्यचर्या का यह दस्तावेज क्षेत्रो की तरफ ध्यान आकर्षित करता है जो इस प्रकार है: काम,कला और पारम्परिक दस्तकारियो ,स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा,एवं शान्ति। काम के सम्बन्ध में आरंभिक स्तर से शुरू करते हुए काम को अधिगम से जोड़ने के लिए कुछ बुनियादी कदम सुझाये गये है। उनके पीछे आधार यह है कि ज्ञान काम को अनुभव में रूपांतरित कर देता है और सहयोग ,सृजनात्मकता और आत्म निर्भरता जैसे मूल्यों की उत्पत्ति करता है। यह ज्ञान रचनात्मकता के नए रूपों की प्रेरणा भी देता है। वरिष्ठ कक्षाओं में स्कूल के बाहर के संसाधन को औपचारिक मान्यता देने की सिफारिश है ताकि उन बच्चो को लाभ पहुँच सके जो आजीविका से सीधे जुडी हुई शिक्षा का चुनाव करते है। स्कूल के बाहर की आजीविका संस्थायो को औपचारिक मान्यता की जरुरत है जिससे वे बच्चो को ऐसा स्थान उपलब्ध करवाये जहाँ बच्चे औजारों और दूसरे साधनों से काम करे। दस्तकारियो के मानचित्रीकरण की सिफारिश की गई है जिससे उन इलाको की पहचान की जा सके जहाँ बच्चो को स्थानीय कारीगरों के सहारे दस्तकारियो में प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

हर स्तर पर विषय के रूप में कला को जगह दिए जाने की सिफारिश की गई जिसमें गायन,नित्य,दृश्य कलाए और नाटक चारो पहलू शामिल हैं। पर यहाँ भी जोर परसपर –क्रियात्मक पद्धतियों पर होना चाहिए न कि प्रशिक्षण पर। क्योकि कला शिक्षण का उद्देश्य सौन्दर्यात्मक और वैयक्तिक चेतना को प्रोत्साहित करना है और विविध रूपों खुद को व्यक्त करने की क्षमता को बढ़ावा देना है। नागरिक पारंपरिक दस्तकारियां आर्थिक और सौन्दर्यपरक मूल्यों के अर्थ में स्कूली शिक्षा के लिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं यह तथ्य पहचाना जाना चाहिए।

स्कूलों में बच्चो की कामयाबी पोषण और सुनियोजित शारीरिक गतिविधियों के कार्यक्रमों पर निर्भर होती है। इसीलिए जरूरी संसाधन और स्कूल के समय को मध्यांहन भोजन कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने में लगाना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयासों की जरुरत होगी कि स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में शाला पूर्व अवस्था से लेकर आगे तक लडको की तरह ही लडकियों की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाये।

पूरी दुनिया में बढ़ती असहिष्णुता और मतभेदों को सुलझाने के तरीके के रूप में हिंसा की ओर बढ़ते रुझान को देखते हुए इस बात की सिफारिश की गई है कि शान्ति को राष्ट्रीय निर्माण की पूर्व शर्त

और एक सामाजिक संस्कार के रूप में समग्र मूल्य संरचना के तौर पर स्वीकार किया जाये जिसकी आज अत्यधिक प्रासंगिकता हियो एक लोकतान्त्रिक और न्यायपूर्ण संस्कृति में बच्चो के समाजीकरण के लिये शिक्षा की सम्भावनाओं को विभिन्न गतिविधियों के द्वारा हर स्तर पर ,और हर विषय में विषयों के विवेकपूर्ण चुनाव के जरिये साकार किया जा सकता है शांति के लिए शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में शामिल करने की सिफारिश की गई है

स्कूल के माहौल को पाठ्यचर्या के एक पहलू की तरह देखा गया है क्योकि यह बच्चों को शिक्षा के उद्देश्यों और सीखने की उन युक्तियो के लिए तैयार करती है जो स्कूल में सफलता के लिए जरुरी है। एक संसाधन के रूप में स्कूल के समय को लचीले ढंग से नियोजित किये जाने की जरूरत है। स्थानीय स्तर पर नियोजित लचीले स्कूली कलेंडर और समय सारणी की सिफारिश की गई है ताकि परियोंजना और प्राकृतिक और पारम्परिक धरोहर वाले स्थलों के लिए भ्रमण जैसी विविध प्रकार की गतिविधियों के लिए मौका मिल सके। इस बात की कोशिश करनी होगी किबच्चों के लिए सिखने केव अधिक संसाधन तैयार किया जाएँ ,खासकर स्कूल और शिक्षक के लिए संदर्भ पुस्तकालय हेतु स्थानीय भाषाओ में किताबे और सदर्भ सामग्रियां उपलब्ध हों और बच्चो की अंत:क्रियात्मक तकनीक तक पहुंच न हो कि प्रसारित तकनीक तक। यह दतावेज माध्यमिक स्तर पर विकल्पों में बहुलता और लचीलेपन के महत्व पर जोर देता है और बच्चों को बंद खांचों में डाल देने की स्थापित प्रवित्ति को हतोत्साहित करता है क्योकि इससे बच्चों के ,खास कर ग्रामीण इलाकों के बच्चों के अवसर सीमित हो जाते है

अभ्यास प्रश्न

3. स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों –भाषा ,गणित ,और समाज विज्ञान में महत्वपूर्ण ________का सुझाव दिया गया है।

2.6 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा-2005

1. यह विद्यालयी शिक्षा का अब तक का नवीनतम राष्ट्रीय दस्तावेज है।
2. इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के के शिक्षाविदों,वैज्ञानिकों,विषय विशेषज्ञों व अध्यापकों ने मिलकर तैयार किया है।
3. मानव विकास संसाधन मंत्रालय की पहल पर प्रो0 यशपाल की अध्यक्षता में देश के चुने हुए 23 विद्वानों ने शिक्षा को नई राष्ट्रीय चुनौतियों के रूप में देखा।

मार्गदर्शी सिद्धान्त

1. ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोडा जाय।
2. पढाई को रटन्त प्रणाली से मुक्त किया जाय।

3. पाठ्यचर्या पाठ्यपुस्तक केन्द्रित न रह जाय।
4. कक्षाकक्ष को गतिविधियों से जोडा जाय।
5. राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति आस्थावान विद्यार्थी तैयार हो।

प्रमुख सुझाव

1. शिक्षण सूत्रों जैसे-ज्ञात से अज्ञात की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर,आदि का अधिकतम प्रयोग हो।
2. सूचना को ज्ञान मानने से बचा जाय।
3. विशाल पाठ्यक्रम व मोटी किताबें शिक्षा प्रणाली की असफलता का प्रतीक है।
4. मूल्यों को उपदेश देकर नहीं वातावरण देकर स्थापित किया जाय।
5. अच्छे विद्यार्थी की धारणा में बदलाव आवश्यक है अर्थात् अच्छा विद्यार्थी वह है जो तर्क पूर्ण बहस के द्वारा अपने मौलिक विचार शिक्षक के सामने प्रस्तुत करता है।
6. अभिभावकों को सख्त सन्देश दिया जाय कि बच्चों को छोटी उम्र में निपुण बनाने की आकांक्षा रखना गलत है।
7. बच्चों को स्कूल से बाहरी जीवन में तनावमुक्त वातावरण प्रदान करना।
8. "कक्षा में शान्ति" का नियम बार-बार ठीक नहीं अर्थात् जीवन्त कक्षागत वातावरण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
9. सहशैक्षिक गतिविधियों में बच्चों के अभिभावकों को भी जोडा जाय।
10. समुदाय को मानवीय संसाधन के रूप में प्रयुक्त होने का अवसर दें।
11. खेल आनन्द व सामूहिकता की भावना के लिए है, रिकार्ड बनाने व तोडने की भावना को प्रश्रय न दे।
12. बच्चों की अभिव्यक्ति में मातृ भाषा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षक अधिगम परिस्थितियों में इसका उपयोग करें।
13. पुस्तकालय में बच्चों को स्वयं पुस्तक चुनने का अवसर दे।
14. वे पाठ्यपुस्तकें महत्वपूर्ण होती है जो अन्तःक्रिया का मौका दे।
15. कल्पना व मौलिक लेखन के अधिकाधिक अवसर प्रदान करावें।
16. सजा व पुरस्कार की भावना को सीमित रूप में प्रयोग करना चाहिए।
17. बच्चों के अनुभव और स्वर को प्राथमिकता देते हुए बाल केन्द्रित शिक्षा प्रदान की जाय।
18. सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मनोरंजन के स्थान पर सौन्दर्यबोध को प्रश्रय दे।
19. शिक्षक प्रशिक्षण व विद्यार्थियों के मूल्यांकन को सतत प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाय।
20. शिक्षकों को अकादमिक संसाधन व नवाचार आदि समय पर पहुंचाये जाये।

2.7 स्कूली शिक्षा, शिक्षक और पाठ्यचर्या

प्रो. यशपाल के अनुसार: हम बच्चों को क्या पठाते है, क्या सीखाना चाहते है और उन्हें किस दिशा में ले जाना चाहते है, इसमें स्कूली शिक्षा नीति और पाठ्यक्रम अहम भूमिका निभाते है. इसलिए जरुरी है कि शिक्षा नीति और पाठ्यक्रम बच्चों के सवालात और उनकी उत्सुकता पर निर्भर हो. NCF-2005 में हमने असली शिक्षा उसे माना जो केवल ऊपर से लेप करन वाली न होकर बच्चों के अनुभव-क्षेत्र और उसकी समझ को विस्तृत करे क्योंकि शिक्षा सूचना देना नहीं है. वह तभी सार्थक है जब वह बच्चे के व्यक्तित्त्व और उसके परिवेश के साथ एकाकार हो जाए और जिसमें ज्ञान का निर्माण वे स्वयं करें, अपने परिवेश को साथ लेकर. बच्चे काली स्लेट नहीं है जिसपर आप कुछ भी लिख दें! यहाँ हमें 'करीकुलम (पाठ्यचर्या)' और 'सेलेबस (पाठ्यक्रम)' में अतर करना बहुत जरुरी है. 'करीकुलम' यानि 'क्या' पढ़ाना है और 'सेलेबस' यानि 'कैसे' पढ़ाना है. 'सेलेबस' अलग-अलग परिवेश में अलग-अलग उदाहरणों पर आधारित हो सकता है. इसपर जिस गहराई से हमारे NCF-2005 में काम किया गया है ऐसा दुनिया के बहुत कम मुल्कों में हुआ है. जरुरी है कि पुस्तकों की जबान और उसके उदाहरण ऐसे हो जिसमें बच्चें ज्ञान का निर्माण अपने अनुभव-क्षेत्र (परिवेश) के माध्यम से विकसित कर सकें. कठिन शब्दों और घुमाफिराकर कहने की कोई जरूरत नहीं है.

पाठ्यक्रम ऐसा हो जो शिक्षा-सिद्धांतों और बच्चों के अनुभवों के बीच रिश्ता बनाए. उम्दा चीज 'प्रिंसीपल' है जो समझ सें आने चाहिए और यह तभी संभव है जब पाठ्यक्रम में बच्चों की जिंदगी से जुड़ी चीजें हो. हमारे यहाँ 'कॉमन-स्कूल-सिस्टम' लागू होना चाहिए. सभी स्कूल कम-से-कम केंद्रीय-विद्यालय-स्तर के तो हो ही, लेकिन विडंबना देखिए कि ऐसा हो नहीं रहा है. दरअसल पिछले 50-60 सालों में हमारे देश में हुआ यह कि अमीरों की संख्या अधिक हुई है और उन्हें अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ाने में शर्म आती है. हमारा मध्यवर्ग अधिक आत्मकेंद्रीत हुआ है. अधिकांश केंद्रीय संस्थानों, विश्वविद्यालयों के सदस्यों और शिक्षकों को भी वहाँ के परिसरों में स्थापित केंद्रीय-विद्यालयों में अपने बच्चों को पढ़ाने में शर्म आती है. ऐसा जेएनयू में भी हुआ है. जबकि इन संस्थानों के सदस्य और शिक्षक लगातार संवाद से स्थितियों को बेहतर बना सकते है.

'सूचना' और 'ज्ञान' में अंतर करना बहुत जरूरी है. केवल सूचना प्रौद्योगिकी या कम्प्युटर का इस्तेमाल ही 'ज्ञान' नही है. 'सूचना' में जोर 'रटने' पर होता है जबकि 'ज्ञान' में 'समझ' पर. अतः सूचना प्रौद्योगिकी या कम्प्युटर का सही इस्तेमाल जरूरी है. खुशहाल भारत के लिए विज्ञान शिक्षा अनिवार्य है. विज्ञान घर की रसोई में है, साईकिल, नदी-तालाब, पेड़ों और पक्षियों में है. जरूरत बच्चों को यह समझाने की है कि विज्ञान हर कहीं है. ताकि बच्चे उसे समझे ही नहीं बल्कि नई चीजों का, नए ज्ञान का निर्माण भी करे. यह सही है कि गाँवों में इसके लिए पर्याप्त सुविधाएँ नहीं है लेकिन जितनी बड़ी और प्रकृति-प्रदत्त प्रयोगशालाएँ उनके पास है ओर किसी के पास नहीं. केवल प्रयोगशालाएँ ही न हो, वह जीवन से भी जुड़े और इम्तिहान इतने कठिन न हो कि रटने के लिए प्रेरित करे. रटने की प्रवृति बच्चे की मौलिकता और रचनात्मकता की अद्भुत क्षमता को हमेशा के लिए खत्म कर देती है.

अगर आप 'क्रिएटीविटी' चाहते है तो आपको 'कोचिंग क्लासेज' पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए क्योंकि वह बच्चों की सृजनात्मकता को खत्म कर उन्हें एक ही साँचे में ढालने का काम करती है. उसके व्यक्तित्त्व का नाश करती है. मध्यवर्ग की महत्त्वाकाँक्षी मानसिकता कि 'मेरा बच्चा ही टॉप करे' ने इसे इतना बढ़ावा दिया है कि आज वह एक 'सामाजिक बुराई' की शक्ल अख्तियार कर चुका है. दरअसल हमारा मध्यवर्ग इतना आत्मकेंद्रित हो चुका है कि अब वह सबकुछ अपने हिसाब का ही चाहता है. इससे बचने के लिए 'ग्रेडिंग सिस्टम' को अपनाया जा रहा है और 'मिडिलक्लास' वाले अब भी चिल्ला रहे है कि 'ग्रेडिंग सिस्टम' क्यों? जहाँ तक शिक्षा नीति और पाठ्यक्रम में बदलाव का सवाल है तो बदलाव की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और यह एक अंतहीन प्रक्रिया है.

अगर आपका मूल-उद्देश्य 'समझ' पैदा करना है तो बदलाव की प्रक्रिया भी उसी से निकलेगी. लोग गलत चीजों पर 'प्रश्न' करेंगे और इससे पाठ्यक्रम के 'भगवाकरण' जैसी समस्याओं से भी मुक्ति मिलेगी. 'शिक्षा का अधिकार' केवल प्रशासनिक ढाँचे से ही लागू नहीं होगा. इसके लिए हम सबको लगना पड़ेगा. अधिकतर रूढ़िवादी बदलना ही नहीं चाहते क्योंकि उनके लिए शिक्षा का अर्थ है- "जैसा हमने पढ़ा." इससे दूर जाने का जरूरत है. अनुभव जरूरी चीज है. एक 'करीकुलम' एक 'इम्तिहान' से बचना जरूरी है. सबको एकजैसा, एकसमान बनाना सही नहीं है. गणित में 100 में 100 आ सकते है लेकिन हमें 'सभी को' साथ मिलाकर चलना है. फर्स्ट आने वाले केवल बाबु बन सकते है, अच्छे इंसान/नागरिक नहीं. अगर आप 'करीकुलम', ' पाठ्यक्रम', 'इम्तिहान' या किसी भी प्रणाली में आजादी नहीं रखेंगे तो वह यांत्रिक हो जाएगी. इसमें शिक्षकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है. उसे यह नहीं बताना चाहिए कि हमें सबकुछ आता है बल्कि उसे बच्चों के 'वंडर' और 'कयुरिओसिटी' का सकारात्मक इस्तेमाल करना आना चाहिए. त्री-स्तरीय-भाषा-फार्मूले को विकृत करना और मातृभाषा को सही से लागू न कर पाना समावेशी-समाज-निर्माण और लोकतंत्र के विरूद्ध है. बहरहाल जितना हुआ उसमें भी 60 साल लगे है.। हमारे समय की बदकिस्मती यह भी है कि मीडिया के असर से अच्छी चीज

अभ्यास प्रश्न

4. मानव विकास संसाधन मंत्रालय की पहल पर प्रो0 यशपाल की अध्यक्षता में देश के चुने हुए 23 विद्वानों ने शिक्षा को नई राष्ट्रीय __________ के रूप में देखा।

2.8 सारांश

पाठ्यक्रम ऐसा हो जो शिक्षा सिद्धांतों और बच्चों के अनुभवों के बीच-रिश्ता बनाए उम्दा चीज . 'प्रिंसीपल' है जो समझ से आने चाहिए और यह तभी संभव है जब पाठ्यक्रम में बच्चों की जिंदगी से जुड़ी

चीजें हो हमारे यहाँ .'कॉमनसिस्टम-स्कूल-' लागू होना चाहिए-विद्यालय-कम केंद्रीय-से-सभी स्कूल कम . स्तर के तो हो ही, लेकिन विडंबना देखिए कि ऐसा हो नहीं रहा है.

स्कूल के माहौल को पाठ्यचर्या के एक पहलू की तरह देखा गया है क्योकि यह बच्चों को शिक्षा के उद्देश्यों और सीखने की उन युक्तियो के लिए तैयार करती है जो स्कूल में सफलता के लिए जरुरी है। एक संसाधन के रूप में स्कूल के समय को लचीले ढंग से नियोजित किये जाने की जरूरत है। स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों –भाषा ,गणित ,और समाज विज्ञान में –महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है। इस दृष्टी से कि शिक्षा आज की और भविष्य की जरूरतों के लिए ज्यादा प्रासंगिक बन सके और बच्चो को उस दबाव से मुक्त किया जा सके जो वे आज झेल रहे है। शिक्षा पर केन्द्रीय बजट का ६% व्यय किया जायेगा- इस नीति में शिक्षा को राष्ट्रिय महत्व का विषय माना गया है। इसलिए केन्द्रीय बजट में ६% शिक्षा पर व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया है। दृष्टव्य है कि उस समय शिक्षा पर केन्द्रीय बजट का केवल २.९% ही व्यय किया जा रहा था। पाठ्यकरम निर्माण के सहभागिओं के अतिरिक्त राज्य शिक्षा विभाग, विभिन्न अनिसंधन संगठन एवं विशेष रूप सी स्थापित पाठ्यक्रम केंद्र भी पाठ्यक्रम विकाश के अभिकरण हैं। शिक्षा मुख्य रूप से राज्य का विषय है। तथा सभी राज्यों की अपनी कुछ स्थानीय आवश्यकताएं एवं आकांक्षाएं होती हैं। इसलिय राष्ट्रिय शिक्षा के समान कोर पाठ्यक्रम में भी स्थानीय मुद्दों को समाविष्ट करने का प्रावधान रखा गया है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण प्रक्रिया में राज्य शिक्षा विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वैसे भी पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु नार्थिक प्रवंध का भार राज्य सरकारों पर ही होता है। अत; राज्य शिक्षा विभाग के सहयोग के विना पाठ्यक्रम निर्माण संभव नही हो पाता है।

2.9 शब्दाबली

1. महत्वपूर्ण - अनिवार्य
2. आवश्यकताएं -जरूरतें
3. अल्पसंख्यक- कम मात्रा में
4. पृष्ठभूमि- मूल स्थान

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तरदायित्व
2. अपेक्षित वयस्क
3. परिवर्तनों

4. चुनौतियों

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दास ,आर० सी० (१९८४),करिकुलम एंड इवैल्यूएशन ,एन० सी० ई० आए० टी० .नयी दिल्ली
2. ओड० लक्ष्मीलाल.के (१९८८), शिक्षा के नूतन आयाम , राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी ,जयपुर।
3. वर्मा ,आर०. ऐ० (१९८७), शिक्षा तकनिकी , इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
4. कुलश्रेष्ठ .एस० पी० (२००७) शैक्षिक तकनिकी के मूल आधार, विनोद पुष्तक मंदिर ,आगरा।
5. www.n c e rt.nic.in

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के संप्रत्य से आप क्या समझते हैं?
2. पाठ्यक्रम निर्माण में विभिन्न सामाजिक समूहों की सहभागिता तथा असहभागिता बारे में विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए ।
3. पाठ्यक्रम निर्माण प्रक्रिया की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।
4. पाठ्यक्रम का अर्थ एवं दो परिभाषाएं देते हुए पाठ्यक्रम निर्माण में राज्य की भूमिका का आधुनिक शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है? व्यख्या कीजिए ।

इकाई 3 - पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम में सम्बन्ध, उदाहरणों सहित पाठ्यक्रम को पाठ्यपुस्तकों में अनुदित करने की प्रक्रिया तथा तकनीक की समझ पाठ्य-विवरण को पाठ्य-पुस्तक में हस्तांतरित करने की प्रक्रिया की समझ

Relationship between the Curriculum and Syllabus, Understanding the Process and Mechanism of Translating Syllabus in to Textbooks through Examples

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 पाठ्यक्रम का अर्थ
3.4 पाठ्यक्रम की परिभाषाए
3.5 पाठ्यक्रम धारणा की विशेषताएं
3.6 पाठ्यक्रम का महत्त्व
3.7 पाठ्यक्रम के प्रकार
3.8 पाठ्यक्रम के उद्देश्य
3.9 पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में समबन्ध और अंतर
3.10 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत
3.11 पाठ्यक्रम का विकास
3.12 पाठ्यक्रम के विभिन्न उपागम एवं पाठ्यक्रम का संगठन
3.13 पाठ्य विवरण को पाठ्य पुस्तक में रूपांतरित करने की प्रक्रिया
3.14 सारांश
3.15 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

"The curriculum is the sum total of the Experience of the pupil that he recevies through the manfold activites that go in the school, in the classroom , in the laboratory , in the workshop, in the plyground and in the numerous informed contacts between the teacher and pupil"

शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कुंजी है यह मानवीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को घेरती है। साहित्य का स्तर मानव विकास के स्तर पर गहरा प्रभाव रखता है।व्यक्ति के भौतिक तथा सांस्कृतिक आवश्कताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षाशार्त्री देश और काल की सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक, और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में शिक्षा के लक्ष्य निरधारित करते है। शिक्षक , शिक्षाशास्त्री द्वारा निरधारित लक्ष्यों को पाठ्यचर्या के माद्यम से मूर्त रूप देता है। हेनरी ज्यो ओटो के शब्दों में "पाठ्यचर्या वह साधन है जिसके द्वारा हम बच्चों को शिक्षा के लक्ष्यो को प्राप्त करने के योग्य बनाने की आसा करते है " इस प्रकार पाठ्यचर्या अध्यापक और शिक्षाशात्री के बीच एक कड़ी है शिक्षा के हित में इस कड़ी का बना रहना अनिवार्य है।

3.2 उदेश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. पाठ्यक्रम का अर्थ बता सकेंगे।
2. पाठ्यक्रम की विशेषताएं बता सकेंगे।
3. पाठ्यक्रम के विभिन्न सिधान्तों से अवगत हो सकेंगे।
4. पाठ्यक्रम एवं पाठ्य विवरण में क्या अंतर है यह जान सकेंगे।
5. पाठ्य-पुस्तक के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
6. पाठ्य विवरण से पाठ्य पुस्तक में विषय वस्तु हस्तांतरित करने की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
7. पाठ्यक्रम के बिभिन्न प्रकारों से परचित हो सकेंगे।

3.3 पाठ्यक्रम का अर्थ

शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन के रूप में पाठ्यक्रम का प्रयोग किया जाता है –सामान्य शब्दों में शिक्षा के उदेश्यों की प्राप्ति के लिए सुनियोजित ब्यवस्था की आवश्यकता होती है। यह व्यवस्थित या सुनियोजित व्यवस्था ही पाठ्यक्रम कहलाती है।

पाठ्यक्रम का शाब्दिक अर्थ -: पाठ्यक्रम अंग्रेजी शब्द करीकूलम का हिंदी रूपान्तर है। करीकुलम शब्द की उतपत्ति लेटिन भाषा के शब्द कुएरेर (currere) से हुई है, जिसका अर्थ है – दौड़ का मैदान (

race coure) l इस प्रकार पाठ्यक्रम में स्पर्धा यंवो लक्ष्य सिधि का भाव निहित रहता है l इस प्रकार हम कह सकते है की पाठ्यक्रम वह दौड़ का मैदान है जिस पर बालक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दौड़ता है l पाठ्यक्रम का और अधिक अर्थ स्पस्ट करने के लिए हमें पाठ्यक्रम की परिभाषा का विश्लेषण करना आवश्यक है।

3.4 पाठ्यक्रम की परिभाषाएं

क्रो व क्रो के अनुसार- पाठ्यचर्या में सिखने वाले या बालक के वे सभी अनुभव निहित होते है , जिन्हें वह विद्यालय या उसके बहार प्राप्त करता है l ये समस्त अनुभव एक कार्यक्रम में निहित किये जाते है , जो उसके मानसिक , शाररिक, संवेगात्मक, सामाजिक , अध्यात्मिक एव नैतिक रूप से विकसित होने में सहायता देता है l

शिक्षा आयोग " विद्यालय के पर्यवेक्षण में उसके अन्दर तथा बहार अनेक प्रकार के कार्य कलापों से छात्रों को विभिन्न अध्ययन – अनुभव प्राप्त होते है, हम विद्यालय पाठ्यचर्या की इन अध्ययन – अनुभवों की समिष्टी समझते है"

कनिघम -"पाठ्यचर्या कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक यंत्र है, जिससे वह अपनी समग्री (शिष्य) को अपने आदर्श (लक्ष्य) के अनुसार अपने कलागृह (विद्यालय) में मोड़ता हैं।"

सी वी गुड द्वारा सम्पादित शिक्षा कोष में पाठ्यचर्या की निम्नलिखित परिभाषाए दी गयी है–

1. अध्ययन के किसी प्रमुख क्षेत्रों में उपाधि प्राप्त करने के लिए निर्धारित किये गये क्रमबद्ध विषयों अथवा विषय समूह को पाठ्यचर्या के नाम से अभिहित किया जाता है, उदारणार्थ – शारीरिक शिक्षा की पाठ्यचर्या, सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या l
2. किसी परीक्षा को उतीर्ण करने अथवा किसी व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए किसी विद्यालय द्वारा छात्रों के लिए प्रस्तुत पाठ्यवस्तु की समग्र योजना को पाठ्यचर्या कहते हैं l
3. व्यक्ति को समाज में समायोजित करने के उद्देश्य से विद्यालय के निर्देशन में निरधारित शैक्षिक अनुभवों का समूह पाठ्यचर्या कहलाती है।

विभिन परिभाषा एवं विचार पाठ्यक्रम के उद्देश्य एवम महत्त्व को बताते है l निम्न बिन्दुओं के माध्यम से पाठ्यक्रम को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है-

- पाठ्यक्रम शिक्षक एवं विद्यार्थी के लिए एक साधन के रूप में होता है जिसका प्रयोग कर वे शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों एवम उदेश्यों की प्राप्ति करते हैं l

- पाठ्यक्रम के अंतर्गत उन समस्त अनुभवों को शामिल किया जाता है जो एक विद्यार्थी अधिगम उदेश्यों के रूप में पाता है पाठ्यक्रम को केवल कक्षा शिक्षण में सम्पादित की जाने वाली कुछ अधिगम इकाईयों, विषयों तक सिमित नही किया जा सकता।

सारांश के रूप में कहा जा सकता है "वे सभी प्रकार के अधिगम अनुभव चाहे वो पाठ्यक्रियाए हों अथवा पाठय-सहगामी क्रियाएँ विद्यालय द्वारा संचालित की जाती हों जिनका उद्देश्य विद्यालय के पूर्व निरधारित उदेश्यों की प्राप्ति हो पाठ्यक्रम कहलाता है। "

एडगर ब्रुस वेस्ली १९५० ने पाठ्यक्रम को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि –

"The curriclum consist or the content and activities which are employed for the attainment of the objectives of particular school subject it consist of rocognised simplyfied and purposefully selected portion of information and experience.

3.5 पाठ्यक्रम धारणा की विशेषताएं

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित प्रकार से है –

i. पाठ्यक्रम प्रधान आधार है , जो सम्पूर्ण ज्ञान का केंद्र बिंदु है।
ii. पाठ्यक्रम में प्रयोग, अभ्यास, क्रियाएं, व्यावसायिक परीक्षण,ज्ञान की प्राप्ति शामिल है।
iii. यह सभी वस्तुओं का निर्माण है जो अपनी कार्यशैली में सभी विद्यार्थियों के चारों तरफ घूमता है।
iv. पाठ्यक्रम विषय वस्तु का क्रमबद्ध रूप है जो विद्यार्थियों की जरूरतों को पूरा करता है।
v. पाठ्यक्रम अध्यापक के हाथ में एक ऐसा ओजार होता है जिससे अधिगम उदेश्यों की पूर्ती की जाती है।
vi. इसमें स्कूल की सभी अर्थपूर्ण क्रियाएं शामिल हैं जो कि योजनाबद्ध, संगठित और उपयोगी होती है।
vii. पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण अनुभव शामिल होता है जो शिक्षा के उदेश्यों की प्राप्ति हेतु स्कूल द्वारा प्रयोग किया जाता है।

1.6 पाठ्यक्रम का महत्त्व

स्थान एवं देशकाल परिस्तिथि के अनुसार शैक्षिक उदेश्यों में परिवर्तन होता रहता है उन परिवर्तित शैक्षिक उदेश्यों की प्राप्ति पाठ्यक्रम से ही संभव है। यह वाक्य ही अपने आप में पाठ्यक्रम के महत्त्व को दर्शाता है इस प्रकार पाठ्यक्रम का महत्व और बढ़ जाता है। निम्न बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में पाठ्यक्रम का महत्त्व देखा जा सकता है-

i. **ज्ञान प्राप्ती हेतु पाठ्यक्रम का महत्व -** पाठ्यक्रम विविध विषयों के ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की सहायता करता है।

ii. **योजनाबद्ध अधिगम प्रदान करने हेतु -**पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से योजनाबद्ध तरीके से अधिगम करने हेतु विषयवस्तु का प्रस्तुतिकरण करता है।

iii. **शिक्षा के उदेश्यों की प्राप्ति के लिए सहायक -** पाठ्यक्रम छात्रों एवं शिक्षक के द्वारा शिक्षा के उदेश्यों की प्राप्ति करने में सहायता प्रदान करता है।

iv. **लोकतान्त्रिक भावना का विकास -** पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों में समानता, सम्मान आदि लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

v. **शिक्षा में नये अनुभवों को शामिल करना-** शिक्षा निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है।पाठ्यक्रम शिक्षा के स्वभाव का प्रतिबिम्ब है। बदलते परिदृश्य में पाठ्यक्रम शिक्षा को गत्यात्मकता प्रदान करता है।

3.7 पाठ्यक्रम के प्रकार

बदलते परिदृश्य में पाठ्यक्रम को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

i. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम
ii. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम
iii. क्रिया क्रन्द्रित पाठ्यक्रम
iv. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम
v. उद्देश्य केन्द्रित पाठ्यक्रम
vi. एकीकृत पाठ्यक्रम

3.8 पाठ्यक्रम के उद्देश्य

एक अच्छे पाठ्यक्रम में निम्नलिखित उद्देश्य निहित होने चाहिए –

i. पाठ्यक्रम का मुख्य उदेश्य छात्रों का चहुंमुखी विकास करना होता है।

ii. पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रो की रूचि, योग्यताओं तथा क्षमताओं आदि का विकास करना होता है।

iii. पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में धर्म-निरपेक्षता एवं प्रजातंत्र की भावना को विकसित करने का लक्ष्य पूरा किया जाता है।

iv. पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रो में सामाजिक गुणों एवं इमानदारी, सत्यता, सद्भाव का करना होता है।

v. पाठ्यक्रम हमेशा ऐसा होना चाहिए, जिससे छात्र अपने जीवन के मूल्यों का निर्माण करना स्वयं सीख जाये।

vi. पाठ्यचर्या के द्वारा छात्रों में अंतर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास होना चाहिए।

vii. पाठ्यचर्या का मुख्या उद्देश्य अच्छे नागरिकों का निर्माण करना होना चाहिए।

3.9 पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में सम्बन्ध और अंतर

वास्तविक परिस्थितियों में कभी कभी पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या(syllabus) शब्दों का प्रयोग भ्रम पैदा कर देता है परन्तु इन दोनों शब्दों में व्यापक अंतर भी है और सम्बन्ध भी है, जहाँ तक दोनों शब्दों के बीच सम्बन्ध का विषय है तो पाठ्यक्रम का निर्माण पाठ्यचर्या से पूर्व हो जाता है। पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम को उसके निर्माण के उदेश्यों की प्राप्ति में एक साधन के रूप में देखा जा सकता है, दोनों ही शब्दों का महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा के उदेश्यों की प्राप्ति करना है। बिना पाठ्यक्रम के पाठ्यचर्या का निर्माण संभव नहीं है। इस प्रकार बारीकी से विश्लेषण करने पर पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम में सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर इन दोनों शब्दों में व्यापक अंतर भी है। यह अंतर विभिन्न बिन्दुओं जैसे पाठ्यक्रम के अर्थ, क्षेत्र, उदेश्यों के आधार पर हो सकता है। निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अंतर को स्पष्ट किया जा रहा है –

अंतर का आधार	पाठ्यक्रम	पाठ्यचर्या या पाठ्य-विवरण
मूल	पाठ्यक्रम एक लैटिन शब्द है।	सिलेबस एक ग्रीक शब्द है।
अर्थ	पाठ्यक्रम एक दस्तावेज है कि एक विषय में शामिल अवधारणाओं के सभी हिस्से शामिल है।	पाठ्यचर्या समग्र सामग्री, एक शिक्षा प्रणाली या एक कोर्स में पढ़ाया जाता है।
प्रत्यय	यह अत्यंत व्यापक एवं वृहद् है।	यह पाठ्यक्रम की तुलना में संकुचित एवं विशिष्ट है।
क्षेत्र	पाठ्यक्रम का क्षेत्र पाठ्य एवं सह पाठ्य सामग्री दोनों से सम्बंधित है।	जबकि पाठ्य विवरण का सम्बन्ध विभिन्न इकाई ,उप इकाई एवं किसी विशिष्ट कक्षा के किसी विशिष्ट विषय से होता है।

अंश	पाठ्यक्रम के अंतर्गत पाठ्य विवरण समाहित होता है।	पाठ्य विवरण पाठ्यक्रम का एक अंश (भाग) होता है।
उद्देश्य	इसका प्रमुख उदेश्य शैक्षिक उदेश्यों की प्राप्ति के लिए वयवस्था, साधन प्रदान करना है।	जबकि पाठ्य विवरण इन उदेश्यों की पूर्ति के लिए सहायता प्रदान करता है।
द्वारा निर्धारित	परीक्षा बोर्ड	सरकार या स्कूल, कॉलेज या संस्थान के प्रशासन।

इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या में और भी अंतर निम्न है –

पाठ्यक्रम की अवधारणा पाठ्य विवरण की तुलना में अधिक व्यापक है । इसमें विद्यार्थी हर प्रकार का अनुभव प्राप्त करते है । पाठ्यक्रम के अंतर्गत क्षेत्र एवं प्रयोग बिलकुल स्पष्ट होता है जिसके द्वारा मानव वयवहार के विभिन्न आयामों का विकास शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है जबकि स्पष्ट रूप से पाठ्य विवरण का क्षेत्र, उदेश्य पाठ्यक्रम की तुलना में संक्षिप्त होता है ।
बौद्धिक विषयों की समग्री को पाठ्य वस्तु या अंतर्वस्तु कहा जाता है । कक्षा के शिक्षण की सुविधा के लिए जब हम इस विषय वस्तु या पाठ्यचर्या को व्यवस्थित कर लिया जाता है तो उसे हम पाठ्य विवरण कह सकते हैं । रोबर्ट दोत्तेर्ण ने पाठ्यचर्या तथा पाठ्य विवरण के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया है-
"सिलेबस विद्यालय वर्ष के दोरान विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा छात्रों को दिए जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करता है, जबकि करिक्युलम यह प्रदर्शित करता है कि शिक्षक किस प्रकार की भौतिक क्रियायों द्वारा सिलेबस की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा । दुसरे शब्दों में, सिलेबस शिक्षण की पाठ्य-वस्तु का निर्धारण करता है और करिक्युलम उसे देने के लिए प्रयुक्त विधि का ।"
पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या में जो मूल अंतर है वह यह है कि पाठ्यचर्या में शिक्षा के उद्देश्य, किस प्रकार के विषय पढ़ाए जाएँ, सामग्री चुनाव करने के क्या सिद्धान्त काम में लें, शिक्षण विधि के कौन-से सिद्धान्त काम में लें, मूल्यांकन के लिए कौन-से सिद्धान्त काम में लें और किस प्रकार की सामग्री काम में लें ; इसके ऊपर कुछ दिशा-निर्देश लिखे होते हैं। इन्हें आगे कैसे विस्तारित करेंगे, इसके कुछ उदाहरण हो सकते हैं। इस दस्तावेज को पाठ्यचर्या कहते हैं। इसके आधार पर जब ज्यादा विस्तृत दस्तावेज बनाएँगे वह पाठ्यक्रम होगा। मान लीजिए, आपने एक विषय लिया गणित। अब आप यह तय करते हैं कि गणित की पढ़ाई पाँच साल के बच्चे के लिए कहाँ से शुरू हो, पहले क्या पढ़ाएँ और उसके बाद क्या पढ़ाएँ, फिर आगे क्या पढ़ाएँ। पहली कक्षा में गिनती कहाँ तक सिखाएँ और दूसरी में कहाँ तक पढ़ाएँ; यह जो विस्तार और क्रम तथा सामग्री का काम है; इसे पाठ्यक्रम कहते हैं। यह माना जाता है कि इसका विस्तार करने का काम राज्यों या स्कूलों का है।

भारत में जो स्थिति है, वास्तव में, उसमें तीन शब्द काम में लेते हैं। पाठ्यचर्या की रूपरेखा जो सारे राष्ट्र के लिए मूल सिद्धान्तों का एक दस्तावेज है और जिसमें राजनैतिक और सामाजिक सरोकार, शिक्षा के

उद्देश्य, लोकतंत्र का शिक्षा से रिश्ता आदि मोटी-मोटी बातें होती हैं। फिर हर राज्य को एक पाठ्यचर्या बनानी होती है कि इस पाठ्यचर्या की रूपरेखा के आधार पर अब राजस्थान की क्या पाठ्यचर्या होनी चाहिए क्योंकि उनकी कुछ खास परिस्थितियाँ हो सकती हैं। अर्थात् पहले पाठ्यचर्या की रूपरेखा, फिर पाठ्यचर्या दस्तावेज और इसके बाद पाठ्यचर्या दस्तावेज के आधार पर पाठ्यक्रम बनाते हैं। फिर पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्यपुस्तक बनाते हैं और शिक्षक प्रशिक्षण करते हैं। तब जाकर कक्षा में विधिवत काम शुरू हो सकता है।

यह अलग बात है कि हम इस प्रक्रिया को कितनी छोटी कर देते हैं। आजकल क्या कर रहे हैं, यह भी भिन्न बात है। इस दृष्टि से देखें तो ये तीनों अवधारणाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं और इन पर अच्छी चर्चा होनी चाहिए, शिक्षकों को पता भी होना चाहिए और अपनी योजना में इसे काम में भी लेना चाहिए।

3.10 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत

पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख उद्देश्य होता है कि शिक्षण अधिगम के की उदेश्यों प्राप्ति पाठ्यक्रम की सहायता से की जा सके। अत: उदेश्यों की प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में पाठ्यक्रम निर्माण के सिधान्तो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।पाठ्यक्रम निर्माण के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत इस प्रकार से है –

i. क्रियाओं पर आधारित सिद्धांत –
ii. बाल केन्द्रित सिद्धांत
iii. क्रिया आधारित सिद्धांत
iv. प्रेरणा का सिद्धांत
v. मानवीय संबंधो के समझ का सिद्धांत
vi. सह-सम्बन्ध का सिद्धांत
vii. रुचि का सिद्धांत
viii. उपयोगिता का सिद्धांत
ix. आवश्यकता का सिद्धांत
x. व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धांत
xi. समय एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता का सिद्धांत
xii. लोच का सिद्धांत
xiii. अधिगम क्षमता का सिद्धांत
xiv. सामुदायिक सहभागिता का सिद्धांत

इन सिद्धांतो का विस्तृत विवरण निचे दिया जा रहा है जो कि इस प्रकार से है -

i. **बाल केन्द्रित सिद्धांत -** पाठ्यक्रम बाल केन्द्रित होना चाहिए जो बालक का सम्पूर्ण विकास कर सकें तथा जिसका निर्माण बालक की आयु, योग्यता, रूचि, क्षमता, मानसिक विकास एवं पूर्व अनुभवों को ध्यान में रखकर किया गया हो।

ii. **क्रियाओं पर आधारित** – बच्चे प्राकृतिक रूप से सक्रिय होते है, वो हमेशा उन अधिगम व्यवहारों पर अधिक रुचि रखते है जो क्रियाओं के माध्यम से किया जाता है, कर के सीखना इनके लिए आसान होता है । इस प्रकार पाठ्यक्रम के माध्यम से ऐसी विषय वस्तु, प्रकरण रखे जाये जो छात्रों को अधिक से अधिक अवसर प्रदान कर सके । अत: पाठ्यक्रम का निर्माण क्रियाओं को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए ।

iii. **प्रेरणा का सिद्धांत** – किसी पाठ्यक्रम का निर्माण बाल मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धांत, नियमो जैसे रुचि, क्षमता, अभिप्रेरणा, योग्यता का ध्यान रखकर होना चाहिए । पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्रों को अभिप्रेरित कर सकें । यदि पाठ्यक्रम छात्रों को अभिप्रेरित करने में असफल होता है तो वह अपने मूल उदेश्यों को प्राप्त करने में भी असफल हो जायेगा ।

iv. **मानवीय संबंधों की समझ का सिद्धांत** – शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य मानवीय संबंधों को बनाये रखने से सम्बंधित कौशलों एवं दृष्टिकोण का विकास करना है । अत: यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में व्यवसायिक क्रियायों के सफलतापूर्ण संचालन के लिए मानवीय संबंधों का ज्ञान होना आवश्यक है ।

v. **समन्वय का सिद्धांत** – यह नितांत आवश्यक है कि पाठ्यक्रम निर्माण में समन्वय के सिद्धांत का प्रयोग किया जाये ।पाठ्यक्रम के सफलता पूर्वक शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि इसमें विभिन्न विषयों जैसे अर्थशाश्त्र, गणित, सामाजिक विज्ञानं में संबंधों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का विकास किया जाये जो छात्रों के विकास में सहायक हो ।इस प्रकार एक विषय का सीधा संपर्क दुसरे विषय से करने की चेष्टा पाठ्यक्रम में होनी चाहिए ।

vi. **रुचि का सिद्धांत** – रुचि को सफलता की कुंजी कहा जा सकता है या यूँ कहें की रूचि के द्वारा ध्यान और अभिप्रेरणा दोनों को बढाया जा सकता है जो किसी भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की सफलता का महत्वपूर्ण कारक हो सकता है और यह स्वभाविक भी है कि जिस भी विषय वस्तु से छात्रों में रुचि उत्पन्न हो छात्र उस पर विशेष ध्यान देते हैं अतः पाठ्यक्रम में ऐसे विषय वस्तु का अधिगम अनुभव, प्रकरण सम्मलित करना चाहिए जो छात्रों में रुचि के स्तर को बढ़ा सके ।

vii. **उपयोगिता का सिद्धांत** – पाठ्यक्रम के इस सिद्धांत के अनुसार केवल उन विषय वस्तुओं, प्रकरण एवं अधिगम अनुभवों को शामिल किया जाना चाहिए जो छात्रों के लिए उपयोगी हो । जैसे – दैनिक क्रियाओं में उपयोगी , आर्थिक क्रियाओं के प्रयोग से सम्बंधित कोश्लों के विकास से सम्बंधित तथ्यों को भी शामिल किया जाये । उपयोगिता के सिद्धांत के सम्बन्ध में कथन यह है की साधारण मनुष्य यह चाहता है कि उसके बच्चे केवल ज्ञान के प्रदर्शन के लिए कुछ व्यर्थ की बातें न सीखें ,बल्कि समग्र रूप में वह यह चाहता है कि उनको वे बातें सिखाई जाएँ , जो भावी जीवन में उनके लिए उपयोगी हों ।

viii. **आवश्यकता का सिद्धांत** – वर्तमान बदलते परिदृश्य में पाठ्यक्रम का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है इसलिए पाठ्यक्रम निर्माण में बालक की वर्तमान और भविष्य दोनों आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। जिसमे बालक की रुचि एक सफल उपभोक्ता, तार्किक चिंतन को बढ़ाने वाले विषय वस्तु और अधिगम व्यवहार को सम्मलित करना चाहिए जो छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

ix. **व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धांत** – जैसा कि हम जानते हैं और मनोवाज्ञानिक सिद्धांत भी इस बात की पुष्टि करते है कि स्वभाविक रूप से प्रत्येक बालक हर एक दुसरे से योग्यता, क्षमता, रुचि, दृष्टिकोण, अधिगम क्षमता एवं अन्य विभिन्न सम्प्रत्यों पर एक दुसरे से भिन्न होते हैं। अतः पाठ्यक्रम निर्माण करते समय हमे इन विभिन्नताओं का भी ध्यान रखना चाहिए।

x. **समय एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता का सिद्धांत** – पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि जिस वर्ग या कक्षा के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है और जहाँ पर इसका संचालन किया जा रहा है वहां पर उनके पास उचित समय सारणी और अन्य संसाधन हैं भी या नहीं। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

xi. **लोचशीलता का सिद्धांत** – पाठ्यक्रम विकास में लचीलेपन के सिद्धांत पर विशेष ध्यान देना चाहिए, पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमे संसाधनों एवं समय के अनुसार परिवर्तन किया जा सके। वेस्ले एवं रान्सकी (१९७३) लिखते हैं कि

"curriculum may be regarded as a process and also as an ever changing product, it can be made and remade. It is of course a changing evolving procedure including contents and activities. The latter must inevitably differ from class to class and from students to students."

इसलिए पाठ्यक्रम के निर्माण एवं संगठन में लोचशीलता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए जिससे समय समय पर पाठ्यक्रम में यथा संभव परिमार्जन एवं परिवर्तन किया जा सके।

xii. **सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धांत** – यह बिलकुल सत्य है कि बालकों के विकास में समुदाय की अत्यंत भूमिका होती है और बालक समुदाय में उपलब्ध विभिन्न संसाधनों से अनेक प्रकार के अधिगम अनुभवों को सीखते है तथा दूसरी तरफ बालकों की शैक्षिक स्थिति एवं अधिगम अनुभव भी समुदाय को प्रभावित करते है।अतः इसलिए पाठ्यक्रम में सामुदायिक जीवन से सम्बंधित संबंधों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

xiii. **विकास की सतत प्रक्रिया का सिद्धांत** – क्रो व क्रो के शब्दों में वैज्ञानिक प्रगति, नविन व्यावसायिक अवसर राष्ट्रों के अधिक विस्तृत अंतर्संबंध, प्रगतिशील आदर्श और आकांक्षाएं यह मांग प्रस्तुत करती है कि शिक्षा के सिद्धांत और वयवहार का ज्ञान, कुशलता और दृष्टिकोण पर दिए

जाने वाले विभिन्न प्रकार के बलों के अनुकूल बताया जाये। इस कथन के अनुसार पाठ्यक्रम का यह स्वरूप विकासोन्मुखी होना चाहिए।

उपरोक्त वर्णित सिद्धांतो के अतिरिक्त भी अन्य सिद्धांत विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, जिसमे आवश्यकता एवं समय की मांग के अनुरूप परिमार्जित करने के भी सुझाव भी दिए गये हैं।

3.11 पाठ्यक्रम का विकास

किसी भी विषय में पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण चरणों, सावधानियों एवं सोपानो को ध्यान में रखना पड़ता है। राल्फ टाइलर (१९६९) ने पाठ्यक्रम निर्माण के लिए मुख्य रूप से चार सोपान बताये है-

i. उदेश्य को परिभाषित करना
ii. उदेश्यों से सम्बन्धित शैक्षिक अनुभव
iii. इन अनुभवों को संकलित तथा संगठित करना
iv. उदेश्यों का मूल्यांकन करना

1. **शिक्षण के उदेश्यों का निर्धारण -** पाठ्यक्रम के विकास में सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है कि सर्वप्रथम यह निश्चित कर लिया जाये कि किसी विशिष्ट कक्षा स्तर के लिए किस प्रकार के शैक्षिक उदेश्यों को रखना है। इन उदेश्यों से छात्रों में किस प्रकार के व्यवहारिक परिवर्तन आयेंगे। क्या इससे बालक के समस्त गुणों, पक्षों जैसे कि ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों को ध्यान में रखा गया है। इस प्रकार से पाठ्यक्रम के विकास के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि एक अच्छे एवं नियोजित पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा सके।
2. **उदेश्यों के अनुरूप विषय वस्तु का चयन** – इस स्तर पर पूर्व निरधारित उदेश्यों के अनुरूप यह प्रयास होना चाहिए कि ऐसे प्रकरण, विषय वस्तु एवं अधिगम अनुभव का चयन किया जाये जिससे इन उदेश्यों की प्राप्ति में सहायता मिल सके।
3. **विभिन्न विषय वस्तुओं का संगठन** – विषय वस्तु, प्रकरण एवं अधिगम अनुभवों के निर्धारण के बाद सबसे महत्वपूर्ण कदम इनका संगठन जिसमे इस बात का विशेष ध्यान दिया जाता है कि छात्रों के स्तर, विषय कस्तू का स्तर, क्रम, इकाई आदि का आयोजन मनोवैज्ञानिक सिधांतोके अनुरूप हो सकें।
4. **पाठ्यक्रम को लागु करने हेतु उचित दिशा-निर्देश** – पाठ्यक्रम विकास का कार्य यही समाप्त नही हो जाता, पाठ्यक्रम में वर्णित विभिन्न विषय वस्तु की प्रकृति के अनुसार सरलता पूर्वक अधिगम कार्य करने के लिए शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों से सम्बंधित एवं मार्गदर्शन आवश्यक होता है।
5. **मूल्यांकन की विभिन्न विधियाँ एवं तकनीकें** – एक अच्छे पाठ्यक्रम की यह विशेषता होनी चाहिए कि पाठ्यक्रम में वर्णित विभिन्न विषय वस्तु एवं पूर्व निरधारित उदेश्यों के मुल्यांकन हेतु उपयुक्त

मुल्यांकन प्रविधियों का सुझाव दिया जाये, जिसमे विषय का मूल्याकन किस प्रकार करना है ? कैसे परीक्षणों का प्रयोग किया जाये इत्यादि बातें सम्मलित हों।

3.12 पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न उपागम एवं पाठ्यक्रम का संगठन

प्रस्तावना – पाठ्यक्रम के विकास में चयनित प्रकरण, विषय वस्तु, अधिगम अनुभव का आयोजन उचित रूप से किया जाये तो अधिगम अनुभव प्रदान करने में सरलता होगी वेस्ली (१९९५) ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि-

"A good organization is one that faithfully include the material which have been selected as socially desirable and so arrange as to facilitate learning."

पाठ्यक्रम के संगठन में कुछ महत्वपूर्ण उपागमो का प्रयोग किया जा सकता है –

1. **सामायिक उपागम (Topical Approach)** - वैसे इस उपागम का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। जिसमे विभिन्न ऐसे प्रकरण रखे जाये जो सामयिक हों तथा यदि एक बार किसी विषय वस्तु का चुनाव किसी कक्षा या श्रेणी के लिए हो जाये तो पुनः यह प्रयास करना चाहिए कि उपर्युक्त विषय वस्तु उच्चतम एवं निम्नतम स्तर की कक्षा या श्रेणी में न हो। उदहारण के लिए अगर हम वाणिज्य विषय में कक्षा ११ के अंतर्गत व्यक्तिगत खाता को विषय वस्तु के रूप में रखते हैं तो हमे प्रयास करना चाहिए कि कक्षा के स्तर के अनुरूप उस विषय वस्तु से सम्बंधित कोई भी विषय सामग्री की पुनरावृति न हो। वैसे तो प्रत्येक उपागम का पाठ्यक्रम के विकास एवं संगठन में महत्वपूर्ण योगदान होता है।परन्तु सामायिक उपागम से अध्यापक और विद्यार्थियों को निम्न प्रकार से लाभ प्राप्त होता है –

- अध्यापक विषय वस्तु के कठिनाई स्तर के अनुसार उच्चतम श्रेणी एवं न्यूनतम श्रेणी में अधिगम अनुभव करा सकता है।
- केवल वर्तमान पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषय की चर्चा कर शेष को उच्चतम श्रेणी की कक्षा में चर्चा के लिए रखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त जब हम इस उपागम का व्यावहारिक रूप से प्रयोग करते है तो इसकी कुछ सीमाएं एवं दोष भी दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार से हैं –

- यह बिलकुल सत्य है कि कुछ प्रकरण अन्य प्रकरणों से सरल एवं कुछ कठिन होते है। अतः कक्षा के स्तर के अनुसार हमे इनका चुनाव करना चाहिए।
- इस उपागम के प्रयोग से यह कठिन है कि हम छात्रों के वातावरण एवं व्यावहारिक जीवन के अनुसार पाठ्यक्रम कर सकें।

2. **Concentric or Spiral Approach-** कांसन्त्रिक उपागम टोपिकल उपागम के प्रतिकूल चलती है। इस उपागम में हम प्रकरण को सम्पूर्ण रूप से शामिल नही कर सकते है बल्कि इसमें इस बात का विशेष ध्यान दिया जाता है कि छोटे स्तर की कक्षाओं में सरल विषय वस्तु रखी जाये एवं उच्च स्तर की कक्षाओं में कठिन। इसमें पाठ्यक्रम निर्माण एवं संगठन करते समय छात्रों की शैक्षिक एवं मानसिक स्थिति को ध्यान में रखा जाता है , इस उपागम को स्पाइरल अर्थात सर्पिलाकार उपागम के नाम से भी जाना जाता है।

   उपरोक्त तथ्यों से कोन्सन्त्रिक उपागम की प्रकृति का स्पष्ट पता चलता है जिससे किसी विशिष्ट कक्षा या श्रेणी में विषय वस्तु की शुरुआत अत्यंत न्यूनतम स्तर से की जानी चाहिए। तदोपरांत कठिनाई स्तर एवं उच्चतम स्तर तक इस उपागम में प्रत्येक प्रकरण या इकाई को अत्यंत छोटे से छोटे तथा अनेक उप इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है और इन उप इकाइयों को कठिनाई स्तर के अनुसार विभाजित किया जा सकता है

3. **इकाई उपागम (Unit Approach) -** पाठ्यक्रम के संगठन के लिए इकाई उपागम का प्रयोग भी किया जा सकता है। इकाई को परिभाषित करते हुए Quillen and Hanng (1961) ने लिखा है,

   " A unit refers to material organized around a common principle, process, culture or area of living and directed toward the achievement of significant outcome thus giving unity to learning experiences."

   इस प्रकार पाठ्यक्रम में किसी विशिष्ट कक्षा के लिए चयनित सामग्री का इस प्रकार संगठन करना चाहिए जिसमे प्रत्येक इकाई का एक दुसरे से सम्बन्ध हो तथा उस इकाई के संगठन में छात्रों की शैक्षिक स्थिति, रुचि एवं मानसिक स्तर का ध्यान रखा गया हो। इस प्रकार हम पाठ्यक्रम के संगठन में इकाई उपागम का प्रयोग कर सकते हैं।

   किसी विशिष्ट कक्षा या वर्ग के लिए पाठ्यक्रम के विकास में विभिन्न विषय वस्तुओं, अधिगम सामग्री एवं अधिगम अनुभवों के संगठन का कार्य बहुत कुछ पाठ्यक्रम विकास के समय उपलब्ध परिस्थितियों का सही विश्लेषण तथा पाठ्यक्रम के विभिन्न उपागमो का कोशल के साथ पाठ्यक्रम के संगठन में प्रयोग किया जाना चाहिए। इन उपागमो को पाठ्यक्रम की आवश्यकता के अनुसार उपागमो के गुण एवं दोषों का विश्लेषण कर इसका प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार एक अच्छे पाठ्यक्रम का निर्माण इन उपागमो की सहायता से किया जा सकता है।

3.13 पाठ्य विवरण को पाठ्य पुस्तक में रूपांतरित करने की प्रक्रिया Understanding the Process and Mechanism of Translating syllabus in to Textbook through Example

अब तक हमने पाठ्यक्रम, पाठ्य विवरण के अर्थ, उदेश्य, महत्त्व, सिद्धांत, अंतर एवं सम्बन्ध के बारे में अध्ययन किया। संक्षेप में पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिधान्तो का प्रयोग कर के ही पाठ्य विवरण को पाठ्यपुस्तक में रूपांतरित किया जाता है। इस अध्याय में हम पाठ्य विवरण को पाठ्य पुस्तक में विभिन्न शैक्षणिक बिन्दुओं,अधिगम अनुभवों, शिक्षण विधियों, पाठ्य पुस्तक का अर्थ, उसका विकास, पाठ्य पुस्तक का मुल्यांकन, पाठ्य पुस्तक में सम्मलित की जाने वाली विषय वस्तु को शामिल करने हेतु अथवा पाठ्य विवरण से पाठ्यपुस्तक में रूपांतरित की जाने वाली विषय वस्तु को किन किन सिधान्तों एवं आयामों का ध्यान रखना चाहिए इसका अध्ययन करेंगे -

"A good textbook written by a quqlified and competent specialist in the subject and produced with due regard to quality of priting, illustration and general get-up, stimulates the pupil's interest and helps the teacher concidrably in his work."

i. पाठ्य पुस्तक का अर्थ - पाठ्य पुस्तक शब्द ऐसे मुद्रित अधिगम सामग्री को प्रस्तुत करता है जिसको एक प्रमुख शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में शामिल किया जाता है। जो किसी शिक्षा बोर्ड द्वारा किसी विशिष्ट कक्षा के लिए तयार की जाती है। पाठ्य पुस्तक शिक्षक तथा छात्र दोनों की ही शिक्षण प्रक्रिया में मदद करती है । बेकन ने पाठ्य पुस्तक का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि पाठ्य पुस्तक कक्षा कक्ष के लिए निरधारित की गयी मुद्रित विषय सामग्री है जिसको पुस्तक का नाम दिया जाता है।

पाठ्य पुस्तक की परिभाषाएं

- लेंग के अनुसार, "पाठ्य-पुस्तक किसी अध्ययन की प्रमुख शाखा के लिए एक मानक पुस्तक है"।
- हाल कयुस्त के अनुसार, "पाठ्य-पुस्तक अनुदेशीय अभिप्रायों के लिए व्यवस्थित किया गया एक प्रजातीय चिंतन का अभिलेख है।"
- Encyclopadia of Education Research के अनुसार, "आधुनिक तथा प्रचलित अर्थ में पाठ्य पुस्तक सिखने वाला साधन है, जिसका प्रयोग विद्यालयों तथा कालेजों में अनुदेशन कार्यक्रम को परिपूरित करने के लिए किया जाता है। सामान्य अर्थ में पाठ्य पुस्तक मुद्रित होती है, इसकी जिल्द मजबूत होती है, यह अनुदेशन अभिप्राय से प्रयुक्त की जाती है और इसको सिखने वालों के हाथों में सोंपा जाता है।"

- American Text-book Publishers Institute के अनुसार “पाठ्य पुस्तक विद्यालय या कक्षा हेतु छात्र तथा शिक्षक के प्रयोग के लिए विशेष रूप से तैयार की जाती है, जिसमे एकाकी विषय या घनिशत रूप से सम्बंधित विषयों की पाठ्य वस्तु को प्रस्तुत किया जाता है।”

पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता एवं महत्त्व

वर्तमान समय में पाठ्य पुस्तक का महत्त्व किसी भी कक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण अधिगम समग्री के रूप में होता है। विशिष्ट कक्षा में क्या पढ़ाया जायेगा वो सब कुछ उस पाठ्य पुस्तक में मुद्रित होता है। शिक्षक अपनी पाठ योजना, प्रयोगात्मक कार्य, गृह कार्य पुस्तक से ही तैयार करता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के समस्त पक्ष चाहे वो शिक्षक, शिक्षार्थी अथवा मूल्यांकन की प्रक्रिया हो, समस्त एक अच्छी पाठ्य पुस्तक के आभाव में बेकार हो जाती है। प्रोफेसर कित्तिंग ने पाठ्य पुस्तक के महत्त्व का वर्णन करते हुए लिखा है, “पाठ्य पुस्तक शिक्षण समग्री का आधा अंग है।” पुस्तक शिक्षक का महत्त्व पूर्ण साधन है जिसके द्वारा वो छात्रों को ज्ञान अर्जन कराता है। इकाई की पूर्ण तयारी के लिए पाठ्य पुस्तक अत्यंत आवश्यक है। हर्ले आर डगलस ने पाठ्य पुस्तक के महत्त्व को इस प्रकार प्रदर्शित किया है, “शिक्षको के बहुमत ने अंतिम विश्लेषण के आधार पर पाठ्य पुस्तकों को वे ‘क्या और किस प्रकार पढ़ाएंगे ’ की आधारशिला बताया है।”

प्रोफेसर Bart तथा Burton ने पाठ्य पुस्तक के विषय में कहा है कि, “सयुंकत राज्य अमेरिका में पाठ्य पुस्तक एक महत्वपूर्ण शैक्षिक साधन है।”

इसके अतिरिक्त पाठ्य पुस्तक के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं के रूप में भी देखा जा सकता है –

i. शिक्षक एवं छात्रों को अपने कार्य के प्रति जागरूक करने के लिए।
ii. विषय की सीमा एवं विस्तार से अवगत करने के लिए।
iii. शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाने के लिए।
iv. छात्रों को स्वास्थ्य के लिए प्रेरित करने के लिए।
v. प्राप्त ज्ञान को स्थाई बनाने के लिए।
vi. गृह कार्य को सुगमता पूर्ण करने में सहायता देने के लिए।
vii. कक्षा शिक्षण के लिए आधार।
viii. सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री को इकाईओं में बाँटने के लिए।
ix. अध्यापकों एवं छात्रों के मार्गदर्शन के लिए।
x. शिक्षा में जागरूकता लेन के लिए।
xi. संचित ज्ञान एवं अनुभवों को नई पीढ़ी को हस्तांतरित करने के लिए।
xii. छात्रों की मोलिक चिंतन शक्ति एवं रचनात्मक शक्तियों को पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए।
xiii. हर समय उपलब्ध होने से अध्ययन के लिए प्रेरणा।

xiv. कम मूल्य पर समस्त अध्ययन सामग्री एक ही स्थान पर और वह भी क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध करने के लिए।

पाठ्य पुस्तक के कार्य

i. पाठ्य पुस्तक मुद्रित सामग्री के रूप में शिक्षक की सहायता करती है।
ii. पाठ्य पुस्तक विषय वस्तु को एक संरचित रूप प्रदान करती है।
iii. पाठ्य पुस्तक अनुदेशात्मक उदेश्यों के लिए अनुपूरक का कार्य करती है।
iv. पाठ्य पुस्तक शिक्षक के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।
v. पाठ्य पुस्तक एक स्व अधिगम सामग्री के रूप में कार्य करती है।
vi. पाठ्य पुस्तक एक तार्किक एवं विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है।
vii. पाठ्य पुस्तक एक प्रोयोगशाला के रूप में कार्य करती है।
viii. पाठ्य पुस्तक शैक्षिक अन्तः क्रिया को बढ़ाती है।

पाठ्य विवरण को पाठ्य पुस्तक में रूपांतरित करने की प्रक्रिया

एक अच्छी पाठ्य पुस्तक के विकास के लिए पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिधान्तो, उपागमो,आयामों एवं अच्छी पाठ्य पुस्तक की विशेषताओं को ध्यान में रखा जाता है, ताकि एक अच्छी पाठ्य पुस्तक का विकास या निर्माण किया जा सके। उदहारण के रूप में यदि सामाजिक-विज्ञान विषय की पाठ्य पुस्तक का विकास करना हो तो हमे सामाजिक-विज्ञान विषय के विभिन्न महत्वपूर्ण बिन्दुओं, सहायक सामग्री, छात्रों की रुचि एवं उनकी व्यकितगत विभिन्नता, सामाजिक-विज्ञान विषय का उदेश्य आदि बातों का ध्यान रखकर पाठ्य विवरण को पाठ्य पुस्तक में रूपांतरित या हस्तांतरित करना चाहिए। एक पाठ्य पुस्तक में मुख्य रूप से दो तरह की विशेषताएं होती है। जिसमे पहली होती है अकादमिक (academic) और भौतिक (physical)। अकादमिक के अंतर्गत विषय वस्तु का चयन, विषय वस्तु का संगठन, विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण, भाषा-संप्रेषण, अभ्यास कार्य आदि को सम्मलित किया जाता है और समय, मूल्य,स्थान आदि विशेषताएं पाठ्य पुस्तक की भौतिक विशेषताओं के अंतर्गत आती है। उदहारण के रूप में आइये पाठ्य चर्या से पाठ्यपुस्तक बनाने की प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम तथा पाठ्य चर्या में अंतर को व्यावहारिक रूप से समझते हैं –

पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या में जो मूल अंतर है वह यह है कि पाठ्यचर्या में शिक्षा के उद्देश्य, किस प्रकार के विषय पढ़ाए जाएँ, सामग्री चुनाव करने के क्या सिद्धान्त काम में लें, शिक्षण विधि के कौन-से सिद्धान्त काम में लें, मूल्यांकन के लिए कौन-से सिद्धान्त काम में लें और किस प्रकार की सामग्री काम में लें ; इसके ऊपर कुछ दिशा-निर्देश लिखे होते हैं। इन्हें आगे कैसे विस्तारित करेंगे, इसके कुछ उदाहरण हो सकते हैं। इस दस्तावेज को पाठ्यचर्या कहते हैं। इसके आधार पर जब ज्यादा विस्तृत दस्तावेज बनाएँगे वह पाठ्यक्रम होगा। मान लीजिए, आपने एक विषय लिया गणित। अब आप यह तय करते हैं कि गणित

की पढ़ाई पाँच साल के बच्चे के लिए कहाँ से शुरू हो, पहले क्या पढ़ाएँ और उसके बाद क्या पढ़ाएँ, फिर आगे क्या पढ़ाएँ। पहली कक्षा में गिनती कहाँ तक सिखाएँ और दूसरी में कहाँ तक पढ़ाएँ; यह जो विस्तार और क्रम तथा सामग्री का काम है; इसे पाठ्यक्रम कहते हैं। यह माना जाता है कि इसका विस्तार करने का काम राज्यों या स्कूलों का है।

भारत में जो स्थिति है, वास्तव में, उसमें तीन शब्द काम में लेते हैं। पाठ्यचर्या की रूपरेखा जो सारे राष्ट्र के लिए मूल सिद्धान्तों का एक दस्तावेज है और जिसमें राजनैतिक और सामाजिक सरोकार, शिक्षा के उद्देश्य, लोकतंत्र का शिक्षा से रिश्ता आदि मोटी-मोटी बातें होती हैं। फिर हर राज्य को एक पाठ्यचर्या बनानी होती है कि इस पाठ्यचर्या की रूपरेखा के आधार पर अब राजस्थान की क्या पाठ्यचर्या होनी चाहिए क्योंकि उनकी कुछ खास परिस्थितियाँ हो सकती हैं। अर्थात् पहले पाठ्यचर्या की रूपरेखा, फिर पाठ्यचर्या दस्तावेज और इसके बाद पाठ्यचर्या दस्तावेज के आधार पर पाठ्यक्रम बनाते हैं। फिर पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्यपुस्तक बनाते हैं और शिक्षक प्रशिक्षण करते हैं। तब जाकर कक्षा में विधिवत काम शुरू हो सकता है।

यह अलग बात है कि हम इस प्रक्रिया को कितनी छोटी कर देते हैं। आजकल कर क्या कर रहे हैं, यह भी भिन्न बात है। इस दृष्टि से देखें तो ये तीनों अवधारणाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं और इन पर अच्छी चर्चा होनी चाहिए, शिक्षकों को पता भी होना चाहिए और अपनी योजना में इसे काम में भी लेना चाहिए।

पाठ्य पुस्तक का विकास एक पाठ्य पुस्तक के विकास के लिए उपर्युक्त वर्णित विभिन्न विशेषताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए-

i. **पाठ्य पुस्तक विकास के लिए लेखक कर्ता का चयन-** किसी भी विषय पर पाठ्य पुस्तक के विकास के लिए ऐसे लेखक का चयन करना चाहिए जो उस विषय में अनुभवी तथा दक्ष हो । जिसके पास उस विषय से सम्बंधित तात्कालिक हुए अनुसंधानों, विकसित नये सम्प्रत्यो, शिक्षण विधियों का ज्ञान हो । इसके अतिरिक्त भाषा, सम्प्रेषण एवं लेखन कौशल की योग्यता हो ।

ii. **पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित-** पाठ्य पुस्तक निश्चित रूप से पूर्व निरधारित शिक्षा बोर्ड द्वारा पाठ्य विवरण के आधार पर विकसित होनी चाहिए ।

iii. **विषय सामग्री का उचित समावेशन एवं चयन -** पाठ्य विवरण से पाठ्य पुस्तक में विषय वस्तु के समावेशन पर इस बात का ध्यान देना चाहिए कि वह विषय वस्तु सार्थक हो, पाठ्यक्रम को पूर्ण कर रही हो, पर्याप्त हो, समेकित हो तथा विषय वस्तु दैनिक जीवन से सम्बंधित हो । क्युकी विषय वस्तु किसी भी पुस्तक की आत्मा एवं जीवन रेखा के रूप में होती है । इसके अतिरिक्त एक लेखक को पाठ्य विवरण से पाठ्य पुस्तक में पाठ्य विवरण के अनुसार विषय वस्तु का चयन करते समय निम्न बिन्दुओं को भी ध्यान में रखना चाहिए –

   - विषय वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो कक्षा के विद्यार्थिओं की योग्यता, क्षमता के अनुसार अनुकूल हो ।

- विषय वस्तु में इस बात का पर्याप्त प्रावधान हो कि छात्र अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार सिख सकें।
- विषय वस्तु में अत्त्याधुनिक शिक्षण विधियाँ, नवाचार आदि का उचित समावेशन हो।
- पाठ्य पुस्तक में उचित उदहारण, चित्रमय प्रदर्शन, मैप, daigram के साथ–साथ श्रव्य-दृश्य सामग्रियों के प्रयोग हेतु सुझाव होना चाहिए।
- पाठ्य पुस्तक में आवश्यक सुझाव एवं निर्देश होना चाहिए कि प्रयोगशालाओं का प्रयोग कैसे और कब करना है?
- पाठ्य पुस्तक में प्रत्येक अध्याय के अंत में उस विषय से सम्बंधित अभ्यास प्रश्न एवं मूल्यांकन के प्रश्न होने चिहिए।

विषय सामग्री का संगठन एवं एकीकरण - पाठ्य पुस्तक लेखक कर्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह विषय वस्तु को उचित इकाइयों एवं अध्यायों में वर्गीकृत करें, साथ ही साथ विषय वस्तु को विभिन्न पैराग्राफ में भी वर्गीकृत करें।

- पुस्तक लेखक को विषय सामग्री का वर्गीकरण करते समय मनोवैज्ञानिक उपागमो का प्रयोग करना चिहिए , साथ ही साथ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अध्याय, इकाई और विषय वस्तु के बीच उचित सह सम्बन्ध एवं एकीकरण हों।
- विषय वस्तु के प्रकरण इस प्रकार नियोजित किये जाएँ जिसमे शिक्षण सूत्रों जैसे – सरल से कठिन, मूर्त से अमूर्त आदि का समावेशन किया जा सके।
- विषय वस्तु के संगठन में लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह विषय वस्तु के आयोजन में पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न उपागमो का प्रयोग कर रहा है।

विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण -लेखक कर्ता को पाठ्य चर्या के अनुसार पुस्तक का विकास करते समय विषय का प्रस्तुतिकरण करते समय इस प्रकार प्रस्तुतिकरण करना चाहिए कि विषय वस्तु विद्यार्थियों को आकर्षित, अभिप्रेरित कर सके, साथ ही साथ लेखक कर्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विषय वस्तु का प्रस्तुतिकरण इस प्रकार किया जाये जिससे विद्यार्थियों में रुचि अंत तक बनी रहे।

शाब्दिक सम्प्रेषण और भाषा- एक अच्छी पुस्तक हमेशा से ही एक अच्छे सम्प्रेषण कर्ता के रूप में जानी जाती है। इसलिए लेखक कर्ता को चाहिए कि वो उचित शब्दावली एवं भाषा का प्रयोग विद्यार्थियों की रुचि एवं उनके मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर के करे। इसके अतिरिक्त लेखक कर्ता को संक्षिप्त एवं साधारण वाकया, मात्रात्मक त्रुटी एवं व्याकरण सम्बन्धी दोषों पुस्तक में न हो, इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

- पुस्तक की भाषा सरल होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी इसको समझ सकें।

अधिगम के अनुसार अभ्यास एवं प्रोजेक्ट कार्य – लेखक कर्ता को पुस्तक में वर्णित विषय सामग्री के अनुसार पर्याप्त मात्रा में अभ्यास एवं प्रोजेक्ट कार्य का समावेशन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त लेखक कर्ता को भौतिक विशेषताओं के अंतर्गत पुस्तक का आकर, मूल्य, सन्दर्भ, पेपर आदि पर भी ध्यान देना चाहिए।

3.14 सारांश

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा का प्रमुख उदेश्य बालक का सम्पूर्ण विकास करना होता है। प्राचीन काल से ही शिक्षा शास्त्री बालक के सम्पूर्ण विकास हेतु पाठ्यक्रम एवं शैक्षिक उदेश्यों का निर्धारण करते आ रहे हैं। शैक्षिक उदेश्यों के सम्बन्ध में एक बात स्पष्ट है कि उद्देश्य स्थान, परिस्थिति और समय के अनुसार बदलते रहते है। बदलते शैक्षिक उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु पाठ्यक्रम का निर्माण आवश्यक होता है। उपरोक्त इकाई में हमने पाठ्यक्रम को शैक्षिक उदेश्यों की प्राप्ति के साधन के रूप में अध्ययन किया। साथ ही साथ हम यह भी जान चुके हैं कि पाठ्यक्रम क्या है ? पाठ्यक्रम एवं पाठ्य विवरण में क्या अंतर है ? पाठ्य विवरण से पाठ्य पुस्तक का विकास कैसे किया जाता है, पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख सिद्धांत जैसे – बाल केन्द्रित, रुचि केन्द्रित, लोचशील, मनोवैज्ञानिक, समन्वय का सिद्धांत इत्यादि कुछ प्रमुख सिधान्तों का अध्ययन किया। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का मत्वपूर्ण स्थान है। पाठ्यक्रम एक साधन के रूप में होता है जिसका प्रयोग करके विद्यार्थी अपने लक्ष्य तथा शिक्षक अपने कार्यों का सम्पादन करते है। सामान्य रूप से उदेश्यों की प्राप्ति के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है पहला पाठ्यक्रम और दूसरा पाठ्य विवरण परन्तु दोनों में अंतर है पाठ्यक्रम को हम व्यापक तथा पाठ्य विवरण को संक्षिप्त रूप में देखते है। पाठ्य विवरण से पाठ्य पुस्तक का विकास एक दुरह कार्य है पाठ्यपुस्तक का विकास करते समय हमे पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिधान्तों एवं अच्छी पाठ्यपुस्तक की विशेषताओं जैसे – पुस्तक की भाषा सरल हो, पुस्तक चित्रात्मक शैली में विकसित की गई हो, पुस्तक लिखने में मनोवैज्ञानिक सिधांतों का प्रयोग किया गया हो, छात्रों की रुचि, उनकी योग्यता, व्यक्तिगत विभिन्नताओं आदि बातों का ध्यान रखा गया हो। का ध्यान रखना पड़ता है।

3.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. टायलर, आरडब्ल्यू (1949) *पाठ्यक्रम और शिक्षा के बुनियादी सिद्धांतों* , शिकागो: शिकागो विश्वविद्यालय
2. टाबा, एच (1962) *पाठ्यक्रम विकास: सिद्धांत और व्यवहार* , न्यू यॉर्क: हरकत ब्रेस और दुनिया।
3. एनसीईआरटी (1975), दस साल स्कूल के लिए पाठ्यक्रम - एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।

4. सरकार। भारत (1977), "पर दस साल के लिए पाठ्यक्रम की समीक्षा समिति की रिपोर्ट के स्कूल '(ईश्वर भाई पटेल समिति), शिक्षा और समाज कल्याण, नई दिल्ली।
5. लॉटन, डी एट अल (1978), सिद्धांत और पाठ्यक्रम अध्ययन का अभ्यास। Rutledge और केगन पॉल लंडन।
6. केली, ए वी (1983) *पाठ्यचर्या। सिद्धांत और व्यवहार* लंदन: पॉल चैपमैन।
7. एनसीईआरटी (1986), राष्ट्रीय एकता के दिशा निर्देशों के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन। शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण, नई दिल्ली की राष्ट्रीय परिषद।
8. सरकार। भारत (1986) की, राष्ट्रीय नीति शिक्षा-1986 और -1986 के कार्यक्रम पर, मानव संसाधन विकास, नई दिल्ली का प्रतिवेदन।
9. एनसीईआरटी (1988), प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या - एक फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
10. करिकुलम, सिल्लेबस एंड टेक्स्ट बुक। पोजीशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप, एन सी इ आर टी, नई देल्ही।
11. एनसीईआरटी (1988) प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक फ्रेमवर्क (संशोधित संस्करण) "एनसीईआरटी"।
12. रामपाल, अनीता (2000) गुणवत्ता की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम परिवर्तन: डीपीईपी में स्कूलों की एक स्टडी और केरल "यूनिसेफ" में गैर-डीपीईपी जिलों। का विशेष अद्ययन
13. एनसीईआरटी (2000), स्कूल शिक्षा, नई दिल्ली के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा।
14. डेविड स्कॉट (2003), पाठ्यक्रम अध्ययन: शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख विषयों, रुतलेग, लंदन, 2003।
15. निवेदिता & प्रवीन (2008) पाठ्यक्रम तथा विद्यालय प्रबंधन। विजय पब्लिकेशन, लुधियाना।
16. अग्रवाल जे सी (2010) टीचिंग ऑफ़ कॉमर्स। विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली।
17. मंगल एस के (2011) टीचिंग ऑफ़ सोशल स्टडीज। पी एच आई लर्निंग, प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देल्ही।

3.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम एवं पाठ्य चर्या में अंतर स्पष्ट करें ?
2. पाठ्यक्रम क्या है ? पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न सिधान्तों का उदाहरण की सहायता से व्याख्या कीजिए।
3. पाठ्यपुस्तक किसे कहते है ? एक अच्छी पाठ्यपुस्तक की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
4. पाठ्य चर्या से पाठ्यपुस्तक का विकास करने की प्रक्रिया का वर्णन करें।

इकाई 4 - शिक्षा के वैयक्तिक- सांस्कृतिक तथा आर्थिक मूल्यों एवं भारत के संविधान में प्रतिष्ठित विभीन मूल्यों की प्राप्ति हेतु पाठ्यचर्या एक साधन के रूप में

Curriculum as a Tool for the Attainment of Individual Aims, Socio- Cultural and Economic Aims of Education and the Various Aims Enshrined in the Constitution of India

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 पाठ्यचर्या - अर्थ, उद्देश्य एवं तत्व
4.4 शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की अवधारणा
    4.4.1 पाठ्यवस्तु एवं शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य
    4.4.2 शिक्षण विधियां/प्रविधियां एवं शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य
    4.4.3 शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य
4.5 शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की अवधारणा
    4.5.1 पाठ्यवस्तु एवं शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक लक्ष्य
    4.5.2 शिक्षण विधियां/प्रविधियां तथा शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्य
    4.5.3 शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक लक्ष्य
4.6 भारतीय संविधान में परिलक्षित विभिन्न लक्ष्य
    4.6.1 पाठ्यचर्या एवं संविधान में परिलक्षित लक्ष्य एवं आदर्श
4.7 सारांश

4.8 निबंधात्मक प्रश्न
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची एवं स्रोत

4.1 प्रस्तावना

आप पिछली इकाई यों में पाठ्यचर्या के अर्थ, इसकी निर्माण प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या तथा विषयवस्तु के मध्य संबंध के बारे में विस्तृत रूप से समझ चुके हैं। इसके अतिरिक्त हमें यह भी ज्ञात हो चुका है कि पाठ्यचर्या को विकसित करने में राज्य की क्या भूमिका होती है तथा किस प्रकार से पाठ्यचर्या में सम्मिलित विषयवस्तु को पाठ्यपुस्तकों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पाठ्यचर्या एक ऐसी संरचना है जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों को चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है। पाठ्यचर्या एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम बच्चों में अधिगम को बढ़ावा देते हैं ताकि विभिन्न शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। प्रस्तुत इकाई में हम यह सीखने एवं जानने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार से पाठ्यचर्या की सहायता से शिक्षा के विभिन्न वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम होंगेः

1. पाठ्यचर्या के उद्देश्यों एवं तत्वों को समझेंगे।
2. शिक्षा के व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की अवधारणा स्पष्ट करेंगे।
3. शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या की भूमिका का विवचेन करेंगे।
4. शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में पाठ्यचर्या की भूमिका की व्याख्या करेंगे।
5. भारतीय संविधान में निहित आदर्शों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने में पाठ्यचर्या की भूमिका की विवेचना करेंगे।
6. उन शिक्षण विधियों, शैक्षणिक तथा सह-शैक्षणिक गतिविधियों को सूचीबद्ध करेंगे जिनके माध्यम से शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

4.3 पाठ्यचर्या : अर्थ, उद्देश्य एवं तत्व

जैसा कि पिछले अध्यायों में आप जान चुके हैं कि पाठ्यचर्या का अर्थ 'छात्रों के कार्यक्षेत्र अथवा दौड़ के मैदान' है। 'मैदान' का अभिप्राय पाठ्यचर्या से और 'दौड़' का अर्थ छात्रों द्वारा अनुभव एवं उनकी

क्रियाओं से है। शिक्षक पाठ्यचर्या की सहायता से अपनी शिक्षण क्रियाओं का संपादन करता है जिसमें छात्र, अनुभव तथा क्रियाएं करके अपना विकास करता है और अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच जाता है। शिक्षक की दृष्टि से पाठ्यचर्या एक दिशा एवं साधन है जिसका अनुसरण करके शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। पाठ्यचर्या से अभिप्राय उन सभी क्रियाओं एवं परिस्थितियों से हैं जिनका नियोजन एवं सम्पादन विद्यालय द्वारा बालकों के विकास के लिए किया जाता है।

शिक्षण प्रक्रिया में, पाठ्यचर्या के माध्यम से ही शिक्षक तथा छात्र के मध्य अंतःक्रिया होती है। पाठ्यचर्या द्वारा ही शिक्षण की क्रियाओं को दिशा प्रदान की जाती है। शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यचर्या की पारस्परिक अंतःक्रियाओं द्वारा ही बालकों का विकास होता है। पाठ्यचर्या का मुख्य उद्देश्य विभिन्न शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति करना है।

किसी भी पाठ्यचर्या के चार मूल तत्व होते हैं-उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियां एवं शैक्षिणक व सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा मूल्यांकन। इन चार तत्वों में गहन संबंध होता है। फिलिप एच. टेलर के अनुसार, ''पाठ्यचर्या के अंतर्गत, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियां तथा उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है। इन तीनों पक्षों की अंतः प्रक्रिया को पाठ्यचर्या कहा जाता है। शिक्षण क्रियाओं, शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों द्वारा अधिगम परिस्थितियां उत्पन्न की जाती हैं जिनसे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाया जाता है। शिक्षण क्रियाओं, शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों का संपादन पाठ्यवस्तु के आधार पर किया जाता है, जिसका स्वरूप पाठ्यचर्या निर्धारित करता है। अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यचर्या के माध्यम से पाठ्यवस्तु, शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों का संपादन किया जाता है ताकि शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। शिक्षा के लक्ष्यों को हम मुख्यतः निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत कर सकते हैं।

i. शिक्षा के वैयक्तिक/व्यक्तिगत लक्ष्य
ii. शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक लक्ष्य
iii. शिक्षा के आर्थिक लक्ष्य
iv. शिक्षा के संवैधानिक एवं राष्ट्रीय लक्ष्य

अब हम शिक्षा के उपरोक्त लक्ष्यों के बारे में जानेंगे। इसके साथ हम विस्तृत रूप में यह समझने का प्रयास करेंगे कि पाठ्यचर्या के माध्यम से किस प्रकार शिक्षा के विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

4.4 शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की अवधारणा

यह समझने के लिए पाठ्यचर्या किस प्रकार से शिक्षा के वैयक्तिक या व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक सुदृढ़ माध्यम है, हमें शिक्षा के वैयक्तिक लक्ष्यों का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा के वैयक्तिक लक्ष्यों से अभिप्राय ऐसे लक्ष्यों से हैं जिसमें शिक्षा द्वारा व्यक्ति की व्यक्तिगत रूचियों, क्षमताओं तथा विशेषताओं के विकास को प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति

को आत्मानुभूति करवा सके। शिक्षाशास्त्री कांट के अनुसार, ''शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है, जिसमें उसकी क्षमता है।'' प्लैटो के अनुसार, ''शिक्षा बालक के शरीर और आत्मा में पूर्णता को विकसित करती है जिसके वह योग्य है।'' शिक्षा के विभिन्न वैयक्तिक या व्यक्तिगत लक्ष्यों को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है।

i. संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना
ii. व्यक्ति का शारीरिक विकास करना
iii. व्यक्ति का मानसिक विकास करना
iv. तर्क शक्ति एवं निर्णय शक्ति का विकास करना
v. व्यक्ति का संवेगात्मक विकास करना
vi. व्यक्ति का चरित्र निर्माण करना
vii. व्यक्ति के अंदर छुपी हुई प्रतिभाओं का विकास करना
viii. व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना

उपरोक्त सभी लक्ष्य व्यक्ति के चहुमुखी या सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। इन सभी लक्ष्यों के अनुसार वैयक्तिकता को जीवन का आदर्श माना जाता है। शिक्षाविद् नन् के अनुसार, शिक्षा की किसी भी योजना का महत्व उसकी उच्चतम वैयक्तिक श्रेष्ठता का विकास करने की सफलता से आंका जाना चाहिए। व्यक्ति के महत्व पर बल देते हुए नन् का कथन है कि, मानव जगत में प्रत्येक अच्छाई, व्यक्तिगत पुरुषों और स्त्रियों के स्वतंत्र कार्यों द्वारा आती है। इसलिए शिक्षा पद्धति को इस सत्य के अनुरूप बनाना चाहिए। इसी संदर्भ में रूसो ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट स्वभाव को लेकर जन्म लेता है। हम बिना सोचे समझे विभिन्न-विभिन्न रूचियों वाले बालकों को एक ही प्रकार के कार्यों में जुटा देते हैं। ऐसी शिक्षा उनकी विशेषताओं को नष्ट करके एक निर्जीव समानता की छाप लगा देती है। हमें शिक्षा के माध्यम से ऐसी दशाएं उत्पन्न करनी चाहिएं जिससे वैयक्तिकता का पूर्ण विकास हो सके तथा व्यक्ति मानव जीवन को अपना मौलिक योगदान दे सके। शिक्षण संस्थानों में ऐसी परिस्थितियां या दशाएं उत्पन्न करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण भूमिका पाठ्यचर्या द्वारा निभाई जाती है। यह केवल पाठ्यचर्या एवं उसके क्रियान्वयन द्वारा ही संभव है कि हम बालकों के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करवा सकें तथा उनके अंदर छिपी हुई प्रतिभाओं एवं क्षमताओं को उजागर कर सकें। शिक्षा के विभिन्न व्यक्तिगत या वैयक्तिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक उचित पाठ्यचर्या एवं उसका सही क्रियान्वयन किया जाना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए हमें पाठ्यचर्या और उसके विभिन्न अवयवों के बारे में समझ होनी चाहिए। इन सब बिदंुओं पर आप पिछले अध्यायों में विस्तृत रूप से जान चुके हैं। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि पाठ्यचर्या किस प्रकार से शिक्षा के व्यक्तिगत या वैयक्तिक लक्ष्यों की प्राप्ति का एक माध्यम होता है। जैसा कि आप यह जान चुके हैं कि पाठ्यचर्या में शैक्षिक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियों, शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों तथा क्रियाओं, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का नियोजन तथा क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या के आधार पर ही किया

जाता है। अब हम इसी को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या द्वारा शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति के संबंध में जानने का प्रयास करेंगे।

4.4.1 पाठ्यवस्तु एवं शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य

पाठ्यवस्तु पाठ्यचर्या का एक महत्वपूर्ण तत्व है। पाठ्यवस्तु से तात्पर्य शिक्षण विषय की रूपरेखा एवं उसमें सम्मिलित उपविषयों से है। पाठ्यवस्तु का संबंध बालक के संपूर्ण विकास से होता है जिसमें व्यक्तिगत विकास भी निहित है। विद्यालय में विभिन्न शिक्षण क्रियाओं तथा पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का बालक के ज्ञानात्मक विकास से गहरा संबंध होता है। पाठ्यवस्तु के शिक्षण के दौरान विभिन्न क्रियाओं तथा गतिविधियों का आयोजन किया जाता है ताकि व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सके। अतः यह बहुत आवश्यक है कि विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु में ऐसे उपविषयों तथा प्रकरणों को शामिल किया जाए जिसके माध्यम से शिक्षा के वैयक्तिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद मिल सके।

उदाहरण के लिए, गणित की पाठ्यवस्तु के शिक्षण के माध्यम से हम छात्रों में तर्कशक्ति का विकास करना चाहते हैं। विज्ञान विषय में सम्मिलित विभिन्न उपविषयों द्वारा हम छात्रों के मध्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण, निर्णयशक्ति, वैज्ञानिक अभिरूचि, आलोचनात्मक सोच इत्यादि विकसित करना चाहते हैं। यह सभी उद्देश्य शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों जैसे मानसिक विकास एवं बालकों की छुपी हुई प्रतिभाओं को विकसित करने से संबंधित एवं आधारित है। इसलिए पाठ्यवस्तु में ऐसे उपविषयों एवं प्रकरणों को शामिल किया जाना चाहिए जिनके शिक्षण के माध्यम से बालकों के ज्ञान, समझ, दृष्टिकोण, तर्कशक्ति, निर्णयशक्ति इत्यादि को विकसित किया जा सके। इसी प्रकार, शिक्षक द्वारा पाठ्यवस्तु के संपादन एवं सही क्रियान्वयन के लिए, विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं तथा शैक्षणिक गतिविधियों का भी आयोजन किया जाता है। इन क्रियाओं तथा गतिविधियों में भाग लेने से बालकों की व्यक्तिगत विशेषताओं का विकास होता है। इसी के साथ-साथ उनमें संवेगात्मक विकास तथा नैतिक मूल्यों का भी विकास होता है। यह उनके संपूर्ण व्यक्तित्व विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है। विभिन्न पाठ्य-सहगामी क्रियाओं तथा सह-शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से छात्रों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायता प्राप्त होती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यवस्तु में सम्मिलित विभिन्न उपविषयों एवं उनके संपादन एवं सुचारू क्रियान्वयन के लिए आयोजित की जाने वाली विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं तथा शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा के वैयक्तिक या व्यक्तिगत लक्ष्यों को सही अर्थों में प्राप्त किया जा सकता है। यदि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर, अलग-अलग विषयों के लिए पाठ्यवस्तु का निर्धारण, नियोजन एवं कार्यान्वयन सही ढंग से नहीं होगा तो शिक्षा के वैयक्तिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यवस्तु का निर्धारण, बालकों की विकास अवस्थाओं, आवश्यकताओं, अभिरूचियों, अभिप्रेरणा स्तर इत्यादि के आधार पर किया जाना चाहिए। पाठ्यवस्तु ऐसी होनी चाहिए जिससे बालक अधिगम की प्रक्रिया में रूचि लें। पाठ्यवस्तु का संपादन, शिक्षक द्वारा ऐसी शिक्षण विधियों को अपनाकर किया जाना चाहिए जिसमें छात्र आनंदित एवं अभिप्रेरित महसूस करें।

इन सब के माध्यम से हम छात्रों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यवस्तु एवं उसका संपादन शिक्षा के वैयक्तिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम है।

4.4.2 शिक्षण विधियां/प्रविधियां एवं शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य

शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यवस्तु का संपादन करने हेतु शिक्षक को विभिन्न शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का उपयोग करना पड़ता है। यह शिक्षण विधियां/प्रविधियां, अधिगम-परिस्थितियों को उत्पन्न करती हैं जिससे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किए जाते हैं। छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन, शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अपना योगदान देते हैं। अतः यह अतिआवश्यक है कि शिक्षक द्वारा शिक्षण विधियों/प्रविधियों का चयन इस प्रकार से किया जाए ताकि व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का चयन, विषय एवं पाठ्यवस्तु की प्रकृति के आधार पर करना चाहिए। छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने के लिए शिक्षक को किन्हीं उपविषयों में भाषण विधि का प्रयोग करना चाहिए तो कुछ उपविषयों में उनकी प्रकृति के आधार पर चर्चा विधि, प्रश्नोत्तर विधि, या कार्यकलाप-केंद्रित शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरण के लिए, इतिहास विषय में भाषण विधि या कहानी के द्वारा शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जबकि विज्ञान जैसे विषय में कार्यकलापों के माध्यम से शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति से, व्यक्तिगत शिक्षा के लक्ष्य जैसे छात्र के मानसिक विकास को हासिल करने में सहायता मिलती है।

4.4.3 शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य

शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विभिन्न शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां, पाठ्यचर्या का एक अभिन्न अंग हैं। जिनके माध्यम से शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। एक शिक्षक अपने विषय को पढ़ाने के दौरान या उसके उपरांत विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियां जैसे वाद-विवाद, प्रश्नोत्तरी शैक्षणिक भ्रमण इत्यादि आयोजित कर सकता है। इन गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों जैसे तर्कशक्ति व निर्णय शक्ति का विकास करना, छुपी हुई प्रतिभाओं को विकसित करना इत्यादि को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है।

इसी प्रकार से सह-शैक्षणिक गतिविधियां भी शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होती हैं। विभिन्न खेल-कूद गतिविधियों के द्वारा न केवल छात्रों का शारीरिक विकास होता है अपितु इनसे छात्रों के संवेगात्मक विकास में भी सहायता मिलती है। विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों जैसे नृत्य, नाटक, लधु नाटिकाएं, समूहगान इत्यादि द्वारा छात्रो में छुपी हुई प्रतिभाओं को विकसित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन गतिविधियों द्वारा छात्रों में मानवीय मूल्यों का भी विकास होता है जिससे

उनके चरित्र निर्माण में सहायता होती है तथा व्यक्तित्व में निखार आता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक सुदृढ़ माध्यम है।

4.5 शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की अवधारणा

आप यह भली-भांति जानते हैं कि शिक्षा और समाज में अटूट संबंध है। शिक्षा, हमारे समाज एवं संस्कृति की रीढ़ की हड्डी है। यदि हम पुराने समय पर नज़र डालें तो हम देखेंगे कि जब भी किसी समाज ने शिक्षा की व्यवस्था की है, उसने सबसे पहले अपनी आवश्यकताओं एवं आदर्शों को सामने रखा है। इसका अर्थ है कि जिस समाज में जैसे आदर्श होंगे, वहां की शिक्षा भी उन्हीं आदर्शों के अनुरूप होगी। यही कारण है कि जब किसी समाज के आदर्श या सांस्कृतिक मूल्य बदल जाते हैं, तो वहां की शिक्षा भी बदले हुए आदर्शों के अनुसर बदल जाती है। दूसरे शब्दो में, शिक्षा के सामाजिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्य बदलते सामाजिक परिवेश के साथ परिवर्तित होते हैं। अर्थात् शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक लक्ष्य, समाज द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं। शिक्षा के विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

i. सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का विकास
ii. राष्ट्रीयता का विकास करना
iii. सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण एवं विकास
iv. छात्रों में नागरिकता के गुण विकसित करना
v. छात्रों को सामाजिक विकास में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करने के योग्य बनाना।

शिक्षा के इन सामाजिक-सांस्कृतिक लक्ष्यों का सार यह है कि शिक्षा की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा मनुष्य समाज का सच्चा सामाजिक घटक बन सके। मनुष्य का जन्म, विकास और पोषण समाज में ही होता है। अतः उसे समाज में रहने योग्य बनने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। समाज में रहकर व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आता है जिसके फलस्वरूप उसकी विभिन्न शक्तियों का विकास होता है।

उपरोक्त सामाजिक-सांस्कृतिक शैक्षिक लक्ष्यों के अतिरिक्त, शिक्षा के आर्थिक लक्ष्य भी हैं। शिक्षा के यह आर्थिक लक्ष्य, हालांकि सामाजिक लक्ष्यों का ही अंग हैं, परंतु वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इन्हें अलग से समझना अत्यंत आवश्यक है। विश्व में औद्योगिक क्रांति के बाद जहां धीरे-धीरे समाजवाद की जड़ें कमज़ोर हुई, वहीं आर्थिक विकास की होड़ शुरू हुई। इस आर्थिक विकास की होड़ के कारण शिक्षा का महत्व बढ़ा और आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका को एक महत्वपूर्ण लक्ष्य का दर्जा दिया गया। वर्तमान समय में भी यदि देखा जाए तो शिक्षा द्वारा कौशल विकास पर बहुत अधिक बल दिया जा रहा है। शिक्षा को मनुष्य की आर्थिक कुशलता तथा उन्नति के मुख्य माध्यम के रूप माना जा रहा है। अतः शिक्षा के आर्थिक लक्ष्यों को अलग से समझना तथा उनकी प्राप्ति के लिए प्रयास करना बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा के आर्थिक लक्ष्यों को मुख्यतः निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता हैः

i. राष्ट्र के आर्थिक विकास में योगदान देना।
ii. छात्रों को व्यवसाय के लिए तैयार करना।
iii. उत्पादन एवं सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि।
iv. लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
v. छात्रों में कार्यकुशलता विकसित करना।
vi. राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं को समाधान प्रदान करना।
vii. सहयोग एवं सहकारिता की भावना जागृत करना।

शिक्षा के उपरोक्त आर्थिक लक्ष्यों का उचित अध्ययन करने एवं समझने के उपरांत आप यह जान जाएंगे कि यह लक्ष्य, सही मायने में शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों का ही अंग हैं। हम अपने बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं जो उनमें सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त उनमें कार्यकुशलता, सहकारिता की भावना तथा देश के आर्थिक विकास के प्रति सकारात्मक भावना विकसित कर सके। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिनसे राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान, छात्रों में नागरिकता का विकास एवं देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए सहयोग की भावना जागृत हो सके। इसके लिए पाठ्यचर्या में यथोचित विषय, उपविषय, शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा पाठ्य-सहगामी क्रियाओं को सम्मलित करना चाहिए। एक उपयुक्त पाठ्यचर्या द्वारा ही शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार से पाठ्यचर्या , शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक सशक्त एवं सुदृढ़ माध्यम है।

4.5.1 पाठ्यवस्तु एवं शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक लक्ष्य

विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु के माध्यम से शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले सामाजिक विज्ञान (सामाजिक अध्ययन) विषय में ऐसे विभिन्न उपविषय शामिल होते हैं जिनके शिक्षण-अधिगम द्वारा शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक लक्ष्यों को हासिल करने का प्रययास किया जाता है। इन उपविषयों में इतिहास के उपविषय जैसे प्राचीन किलों का ज्ञान, स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय स्वतंत्रता में विभिन्न समाज सुधारकों तथा नेताओं का योगदान इत्यादि को शामिल किया जाता है। इसी प्रकार से शिक्षा के लक्ष्य जैसे नागरिकता का विकास करना, राष्ट्रीयता का विकास करना इत्यादि को प्राप्त करने के लिए हम छात्रों को नागरिक शास्त्र विषय में लोकतंत्र, हमारे राष्ट्रीय प्रतीक, सरकार का गठन, अधिकार एवं कर्तव्य इत्यादि के बारे में सिखाते हैं।

शिक्षा के आर्थिक लक्ष्यों जैसे व्यवसाय के लिए तैयार करना, राष्ट्र के आर्थिक विकास में योगदान देना इत्यादि को प्राप्त करने के लिए विद्यालय के विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु में ऐसे उपविषय एवं कार्यकलाप सम्मिलित किए जाते हैं जिससे छात्रों को भविष्य के लिए विभिन्न रोजगारों हेतु तैयार किया जा सके। पाठ्यपुस्तक में ऐसे उपविषय तथा कौशल ज्ञान शामिल किया जाना चाहिए जिससे आज का छात्र कल का उपयोगी नागरिक बन सके। पाठ्यवस्तु के माध्यम से छात्रों में कार्यकुशलता का विकास

किया जाना आवश्यक है। इससे न केवल भविष्य में उत्पादन एवं सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होगी अपितु राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं को भी सुलझाने में सहायता प्राप्त होगी। निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यवस्तु के माध्यम से शिक्षा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

अब हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि विभिन्न शिक्षण विधियों/प्रविधियों द्वारा किस प्रकार से शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

4.5.2 शिक्षण विधियां/प्रविधियां तथा शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्य

शिक्षक द्वारा अपनाई जाने वाली विभिन्न शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों के माध्यम से भी शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। छात्रों में सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का विकास करने के लिए शिक्षक, शिक्षण विधियों जैसे चर्चा विधि, परियोजना विधि, अभिनय विधि इत्यादि का प्रयोग कर सकता है। इन विधियों से छात्रों में सहयोग की भावना, एक दूसरे के विचारों को सम्मान प्रदान करना, कठिन परिश्रम करना इत्यादि सामाजिक मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। ड्रामा, लघु एकांकी, अभिनय जैसी शिक्षण प्रविधियों को अपनाकर छात्रों में सांस्कृतिक मूल्यों, राष्ट्रीयता के गुणों को विकसित किया जा सकता है। शिक्षक को कक्षा शिक्षण के दौरान सैद्धांतिक विषयक ज्ञान के अतिक्ति कार्यकलाप आधारित ज्ञान भी प्रदान करना चाहिए ताकि छात्रों में कार्यकुशलता को विकसित किया जा सके। इसके द्वारा ऐसे नागरिकों का निर्माण हो सकेगा जिससे राष्ट्र के उत्पादन में वृद्धि होगी तथा राष्ट्र की विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान हो सकेगा। इससे छात्रों में सहयोग की भावना को विकसित भी किया जा सकता है। अतः सारांश में यह कहा जा सकता है कि शिक्षक द्वारा अपनाई जाने वाली विधियां/प्रविधियां, शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का सशक्त माध्यम हैं।

अब हम शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, विद्यालय में आयोजित की जाने वाली विभिन्न शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों की भूमिका के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

4.5.3 शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियां तथा शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक लक्ष्य

विद्यालय में आयोजित की जाने वाली विभिन्न सह-शैक्षणिक गतिविधियां जैसे वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रार्थना सभा, खेलकूद प्रतियोगिताओं के माध्यम से छात्रों मे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। इन गतिविधियों द्वारा छात्रों में नागरिकता के गुणों को विकसित करने के अलावा उनमें सामाजिक एवं आर्थिक विकास के प्रति सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करने की योग्यता को भी विकसित किया जा सकता है। अतः यह कहा

जा सकता है कि शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में सहायता प्राप्त होती है।

अब हम भारतीय संविधान में निहित विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने में पाठ्यचर्या की भूमिका की विवेचना करेंगे। परन्तु इससे पहले हमें भारतीय संविधान में परिलक्षित विभिन्न लक्ष्यों को जानना अत्यंत आवश्यक है।

4.6 भारतीय संविधान में परिलक्षित विभिन्न लक्ष्य

वर्तमान भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को जानने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज का जो ढांचा भारतीय संविधान द्वारा दर्शाया गया, उसे भली-भांति समझा जाए। किसी भी राष्ट्र का संविधान एक ऐसा दर्पण होता है जिसमें उस राष्ट्र की विशेषताएं प्रतिबिंबित होती हैं। हमारे देश के संविधान की प्रस्तावना में भारतीय समाज का रूप प्रदर्शित किया गया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश के विकास के लिए संविधान में निम्नलिखित लक्ष्यों को परिलक्षित किया गया है:

i. प्रजातांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करना।
ii. पंथ निरपेक्षता का बढ़ावा देना।
iii. समानता को बढ़ावा देना।
iv. समाजवाद को बढ़ावा देना।
v. सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय उपलब्ध करवाना।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में परिलक्षित इन लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए, नागरिकों को संविधान में विभिन्न मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसी के साथ-साथ नागरिकों के मूल कर्तव्यों का भी स्पष्ट विवरण भारतीय संविधान में किया गया है। संविधान में निहित नीति-निर्देशक सिद्धांत, हमारी प्रजातांत्रिक प्रणाली का एक मुख्य अंग है जो केन्द्र एवं राज्य सरकारों को नीति, नियम एवं कानून बनाने के लिए दिशा-निर्देशकों के रूप में कार्य करते हैं। सारांश में यदि हम कहें तो यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में निहित प्रमुख मूल्य, समानता, भाईचारा, सभी के लिए सामाजिक न्याय, पंथनिरपेक्षता एवं समाजवाद हैं। इन संवैधानिक मूल्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान में अलग-अलग अनुसूचियों एवं धाराओं में विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। इन संवैधानिक प्रावधानों में अनेक प्रावधान ऐसे हैं जो शिक्षा एवं नागरिकों को शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित करने से संबंधित हैं। भारतीय संविधान में यह भी जिक्र किया गया है कि विभिन्न संवैधानिक लक्ष्यों एवं मूल्यों को प्राप्त करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस संदर्भ में हम अब यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार से शिक्षा एवं पाठ्यचर्या के माध्यम से भारतीय संविधान में परिलक्षित लक्ष्यों एवं आदर्शों को प्राप्त किया जा सकता है।

4.6.1 पाठयक्रम एवं संविधान में परिलक्षित लक्ष्य एवं आदर्श

विद्यालय, शिक्षक एवं पाठ्यचर्या का संविधान में निहित लक्ष्यों एवं आदर्शों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने में महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है जो विभिन्न सामाजिक आदर्शों तथा संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का सशक्त माध्यम है। लोकतंत्र में विद्यालय से यह आशा की जाती है कि यह अपने इस उत्तरदायित्व को सही ढंग से निभाए। इस संदर्भ मे विद्यालय द्वारा छात्रों को प्रवेश के लिए समान अवसर, योग्यता क आधार पर अध्यापकों की नियुक्ति, अध्यापकों को विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता इत्यादि संवैधानिक मूल्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार से शिक्षक भी छात्रों में संवैधानिक मूल्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति का एक सशक्त माध्यम है। शिक्षक अपनी शिक्षण-अधिगम विधियों/प्रविधियों, विभिन्न शैक्षणिक/सह-शैक्षणिक गतिविधियों तथा अपने दैनिक व्यवहार के माध्यम से छात्रों में विभिन्न संवैधानिक मूल्यों एवं आदर्शों का विकास करवा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक छात्रों के साथ पक्षपातरहित बर्ताव करे तथा सभी छात्रों को विचारों की अभिव्यक्ति के समान अवसर उपलब्ध करवाए। विद्यालय एवं शिक्षकों को चाहिए कि विभिन्न शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों में छात्रों को भाग लेने के समान अवसर दिए जाएं। छात्रों में लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिए विद्यालय में सदनों का गठन, कक्षाओं के मॉनिटर चुनने इत्यादि कार्यों में लोकतांत्रिक प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए। विद्यालय में संसद, विधानसभा इत्यादि की चुनाव प्रक्रिया का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करने के लिए संबंधित गतिविधियां आयोजित करवाई जानी चाहिएं। पाठ्यचर्या में मुख्यतः सामाजिक विज्ञान विषय में इसीलिए ऐसे उपविषयों को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया हैं। जो लोकतंत्र, मौलिक अधिकार, कर्तव्यों, चुनाव प्रक्रिया इत्यादि पर आधारित होते हैं इसके अतिरिक्त समाजवाद, पंथनिरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय से संबंधित उपविषयों को भी विद्यालय के पाठ्यचर्या में शामिल किया गया है। पाठ्यचर्या में सम्मिलित इन उपविषयों का अधिक महत्व दिया जाना, छात्रों में संवैधानिक मूल्यों एवं आदर्शों को विकसित करने का एक प्रमुख माध्यम है। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यचर्या में शामिल इस पाठ्यवस्तु के शिक्षण के दौरान शिक्षक सही शिक्षण-अधिगम विधियों का उपयोग करे। इसके साथ-साथ विद्यालय में तथा कक्षा-शिक्षण के दौरान यथोचित शैक्षणिक तथा सह-शैक्षणिक गतिविधियों का भी आयोजन किया जाए। उपयुक्त शिक्षण विधियों तथा गतिविधियों के माध्यम से ही छात्रों में संवैधानिक मूल्यों एवं आदर्शों को विकसित किया जा सकता है। अतः निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि विद्यालय एवं विद्यालय में शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाने वाला पाठ्यचर्या , भारतीय संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक बहुत सुदृढ़ एवं सशक्त माध्यम है।

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने यह समझने का प्रयास किया कि किस प्रकार से पाठ्यचर्या के माध्यम से शिक्षा के व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। आप

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् यह जान चुके हैं कि पाठ्यचर्या में निहित पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियों/प्रविधियों तथा शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से हम छात्रों के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास तथा संवैधानिक आदर्शों का विकास करवा सकते हैं। इसके अतिरिक्त पाठ्यचर्या विभिन्न राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा देश के संवैधानिक, सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या की सरंचना एवं उसका निष्पादन उचित ढंग से किया जाए।

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यचर्या के प्रमुख उद्देश्य एवं तत्व कौन-कौन से हैं?
2. शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, पाठ्यवस्तु में किन उपविषयों को शामिल किया जाना चाहिए?
3. शिक्षा के विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों पर प्रकाश डालिए।
4. ''वर्तमान विद्यालयी पाठ्यचर्या , छात्रों में सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों को विकसित करने में असफल सिद्ध हुआ हैं।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क दीजिए।
5. उन शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए जो आप एक अध्यापक के रूप में शिक्षा के आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने विद्यालय में आयोजित करवाना चाहेंगे।
6. पाठ्यचर्या के माध्यम से, हमारे संविधान में निहित समाजवाद एवं सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है? व्याख्या करें।
7. उन शिक्षण विधियो एवं प्रविधियों का वर्णन करें जिनके माध्यम से शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों को वर्तमान परिदृश्य में प्राप्त किया जा सकता है।

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची एवं स्रोत

1. गुप्ता, एस० तथा अग्रवाल, जे० सी० (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा. नई दिल्ली: शिप्रा प्रकाशन.
2. पाठक, पी० डी० (2005). भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.
3. शर्मा, आर० ए० (2007). सामाजिक विज्ञान शिक्षण. मेरठ: आर० लाल बुक डिपो.
4. Pandey. R.S. (2002). Teacher in Developing Indian Society. Agra : Vinod Pustak Mandir

5. Safaya, R.N. & Shaida, B.D. (2005). Modern Theory and Principles of Education. New Delhi: Dhanpat Rai Publishing Company.
6. Srivastava, H.S. (2006). Curriculum and Methods of Teaching. New Delhi: Shipra Publications.
7. Garima and Srivastava, Sanjay (2001). Constitution of India. New Delhi: Ramesh Publishing House.